खैरलांजी की घटना और अम्बेडकर की मूर्ति का अपमानः इनके निहितार्थ

भारत की एक बहुत बड़ी समस्या को उद्घाटित करते हुए और एक गम्भीर चेतावनी देते हुए वर्ष 2006 चला गया।

बीते साल की अन्तिम तिमाही ने भारत की सबसे बड़ी सामाजिक समस्या–दलित समस्या के विस्तार और गहराई का अहसास करा दिया।

महाराष्ट्र के भण्डारा जिले के एक गाँव खैरलांजी में एक दलित परिवार के साथ कल्पनातीत अमानवीय व्यवहार किया गया। नंगा घुमाया जाना, बलात्कार और फिर पीट-पीट कर हत्या। परिवार के पाँच सदस्यों में से केवल एक जिन्दा बच पाया। यह सब करने वाले कुनबी जाति के लोग थे, जो स्वयं एक पिछड़ी जाति है लेकिन दलितों से ऊपर है। दलितों के प्रति उनका नजरिया वैसा ही है, जैसा सवर्ण ऊपरी जातियों का। घटना के बाद पुलिस निष्क्रिय रही। हर तरह से दलित परिवार को दोषी ठहराने का प्रयास किया गया। हो-हल्ला और तोड़-फोड़ के बाद जब मामले ने तूल पकड़ा तो मुकदमा दर्ज किया गया। ऐसे मामलों में क्या होता है, यह हर कोई जानता है। सरकारी आँकड़ों के मुताबिक देश में हर बीस मिनट में ऐसी एक घटना होती है। पुलिस निष्क्रिय रह कर सवर्णों का साथ देती है। सरकारी तन्त्र और प्रशासन तरह-तरह के छल-प्रपंच से सवर्णों का साथ देता है और आग को बुझाने की कोशिश करता है। राजनीतिक पार्टियों के नेता मौका-मुआयना करते हैं, लम्बे-चौड़े बयान देते हैं, एक-दूसरे पर दोषारोपण करते हैं और अन्ततः मामला कचहरी की फाइलों में उलझ कर रह जाता है। ज्यादातर घटनाओं का तो पता भी नहीं चलता। गाँव के स्तर पर, थाने के स्तर पर, तहसील के स्तर पर, जिले के स्तर पर उन्हें दबा दिया जाता है। बात बिना रिपोर्ट किये ही रह जाती है। लेकिन कोई-कोई घटना किन्हीं कारणों से तूल पकड़ लेती है और प्रान्तीय स्तर पर, देश के स्तर पर चर्चा का विषय बन जाती है। खैरलांजी की घटना के साथ ऐसा ही हुआ।

खैरलांजी की घटना के साथ ही कानपुर में और अन्य कई जगहों पर, अम्बेडकर की प्रतिमा के अनादर की भी घटनाएँ हुईं। इसी दौरान पेरियार रामास्वामी की प्रतिमा का भी अपमान किया गया। प्रतिमाओं के अनादर की घटनाएँ थोड़े-थोड़े अन्तराल पर देश के विभिन्न हिस्सों में हुईं। पता नहीं, यह सुनियोजित देशव्यापी षड्यन्त्र था या छिटपुट होने वाली घटनाएँ!

ये सभी घटनाएँ मिलकर एक हो गयीं और उन्होंने दलित समुदाय की संवेदनशील भावनाओं पर कुल्हाड़ी चला दी। महाराष्ट्र और देश के अन्य हिस्सों में दलित समुदाय विरोध करता हुआ सड़कों पर उतर आया। बसें फूँकी गयीं। ट्रेनें फूँकी गयीं। कई दिनों तक कई इलाकों में कामकाज ठप्प रहा। कर्फ्यू रहा। दलित नेताओं की गिरफ्तारियाँ हुईं। मन्त्री, मुख्यमन्त्री, और देश के बड़े-बड़े नेताओं के बयान आये। दलितों के साथ हमदर्दी जतायी गयी और घड़ियाली आँसू बहाये गये। अखबारों में लेख लिखे गये। दलित समस्या के समाधान के लिए हजारों नुस्खे पेश किये गये। जितने मुँह, उतनी बातें।

एफ.आई.आर. दर्ज हुई, सी.बी.आई. को जाँच सौंपी गयी। निष्क्रिय कमीशन सक्रिय हो गये। और अन्त में, धीरे-धीरे मामला शान्त हो गया।

आजाद भारत की सरकार उसकी व्यवस्था, उसकी संसद पिछले साठ सालों से दलित-समस्या के समाधान में लगी हुई हैं। न जाने कितने कानून बनाये जा चुके हैं, कितनी कल्याणकारी योजनाएँ शुरू की जा चुकी हैं, लेकिन यह

समस्या मूलत: ज्यों की त्यों बनी हुई है। इस समस्या को हल करने के लिए जितने कमीशन बैठाये गये, सभी इसी बात की तस्दीक करते हैं।

* * *

भारतीय समाज के ढेर सारे ऐसे कलंक हैं जिनके बदनुमा दाग धुलने और मिटने के बजाय और चटख होते जा रहे हैं। इन कलंकों में सबसे बदनुमा है जातियों की व्यवस्था। सवर्ण, पिछड़ी जाति, दलित और इसके भीतर सैकड़ों जातियाँ व उपजातियाँ। सबकी एक दूसरे से दूरी और अलगाव। देश के पैमाने पर दलित जाति के लोग परम्परा से जिस पेशे में लगे हुए थे, उसमें सिर पर पखाना ढोने से लेकर मरे जानवरों की खाल-उतारना और इसी तरह के अन्य बहुतेरे काम शामिल हैं। यह भारतीय समाज को शर्मसार कर देने के लिए काफी है। इसके साथ ही, भारतीय समाज में औरतों की समस्या भी एक विकराल समस्या है–उसके अस्तित्व का पूरा नकार और इसीलिए उसे जिन्दा जला देने का धार्मिक प्रावधान। इसके अलावा हमारे समाज में बच्चों की स्थिति, राष्ट्रीयताओं की स्थिति, धार्मिक अल्पसंख्यकों की स्थिति तथा आदिवासियों व अन्य घुमन्तू जातियों की स्थिति–इन सबको मिलकर देखा जाये तो भारतीय समाज एक खण्ड-खण्ड खण्डित समाज की तस्वीर पेश करता है। यह न तो कोई एक राष्ट्र है, न इसकी कोई अपनी एकता है। सत्ता और सम्पत्ति के शीर्ष पर बैठे मुट्ठीभर लोग निर्णय करते हैं और सब कुछ उन्हीं के लिए समर्पित है या उनके विदेशी गोरे मालिकों के लिए।

यहाँ पर हम दलित समस्या पर ही अपने विचार केन्द्रित करेंगे। इस समस्या को विस्तार से और गहराई में समझने के लिए आधुनिक भारत के इतिहास का सरसरी तौर पर नजर डालेंगे।

शुरुआत थोड़ा और पहले जाकर करते हैं। मध्ययुग में, भारत के उत्तर-दक्षिण-पूरब-पश्चिम, हर दिशा में, जिस सन्त-परम्परा का सूत्रपात हुआ था वह भारत के लोकतन्त्र, समानता और भाईचारे के पक्ष में तथा जाति व्यवस्था व वर्ण व्यवस्था के खिलाफ एक सशक्त विद्रोह था। उसने हिन्दू समाज के ढोंग-पाखण्ड, अन्धविश्वास, धार्मिक रूढ़ियों और कुरीतियों की धज्जियाँ उड़ाई थीं, उन्हें चुनौती दी थी और स्थापित व्यवस्था को ललकारा था। यह आन्दोलन भारतीय समाज पर एक अमिट छाप छोड़ गया। लेकिन इसकी कमी रही कि यह समस्या की जड़ पर कुठाराघात नहीं कर सका, उसे समाप्त नहीं कर सका। वह कर भी नहीं सकता था, उस युग की चेतना की सीमाएँ थीं। उनका रंगमंच सीमित था। फिर भी, आज समूचे भारत के जनपक्षधर और इंसाफपसन्द लोग, दलित और पिछड़ा वर्ग, सभी उसे याद करते हैं।

अंग्रेजों के आने के पहले भारत में एक सामन्ती व्यवस्था मौजूद थी। इसी के अनुरूप जातियों की व्यवस्था और मध्ययुगीन मूल्य तथा उन्हें जिन्दा रखने वाली संस्थाएँ मौजूद थीं। उस समय की समाज-व्यवस्था पर अंग्रेजों द्वारा एक नयी समाज-व्यवस्था आरोपित की गयी जो उपनिवेशवादियों के वर्ग हितों का संरक्षण करती थी। अंग्रेजों का हित पुरानी व्यवस्था में खलल डालने या परिवर्तन करने में नहीं था। उनका हित सवर्णों के ऊपरी तबकों से मिलकर ऐसे लोगों से एकता कायम करने में था, जो उनके हितों की सेवा करें। इसी में उन लोगों का अपना हित भी सिद्ध होता था। आरोपित समाज-व्यवस्था में जिस भूमि-व्यवस्था का जन्म हुआ उसके शीर्ष पर सवर्ण थे। जो शिक्षा-व्यवस्था कायम हुई उसके पायदान से लेकर शीर्ष तक हर कहीं सवर्ण थे। शासन तन्त्र के हिस्सेदार अंग्रेजों के बाद सवर्ण ही थे। इस तरह, जातियों की समस्या ज्यों की त्यों बनी रही। ज्योतिबा फुले और अम्बेडकर जैसे प्रखर विचारकों ने इसे बदलने का प्रयास किया। देश के अलग-अलग हिस्सों में ऐसे बहुत सारे लोग पैदा हुए जो जातियों की समस्या के विरोध में खड़े हुए और जिन्होंने जाति-व्यवस्था के खिलाफ जनजागरण और संघर्ष किया। कहीं कम तो कहीं ज्यादा, इसका प्रभाव भी पड़ा। कुछ परिवर्तन भी हुए। लेकिन ये सारे प्रयास सुधार की सीमाओं को लाँघ नहीं सके और आज भी यह समस्या मूलत: कायम है।

सुधार आन्दोलन, संसद-विधानसभाओं द्वारा पारित कानून, आरक्षण; कल्याणकारी योजनाओं आदि ने दलित समुदाय के भीतर से कुछ लोगों को ऊपर उठाया। पढ़ाई-लिखाई और आरक्षण के कारण कुछ लोगों को छोटी-बड़ी नौकरियाँ मिल गयीं। इनके बीच से सांसद और विधायक होने लगे। भारत के एक राष्ट्रपति भी दलित थे। आज सुप्रीम कोर्ट के मुख्य न्यायाधीश भी दलित हैं। बहुत सारी पार्टियों के चोटी के नेता दलित हैं। इनके भीतर के कुछ मुट्ठीभर लोगों के पास कारें हैं, बंगले हैं और धन-सम्पत्ति भी अर्जित हो गयी है। लेकिन जाति-समस्या मूलत: ज्यों की त्यों बनी हुई है।

खैरलांजी की घटना और अम्बेडकर व पेरियार की

प्रतिमाओं का अपमान भारतीय समाज के भीतर चल रही लावे की तरह गर्म, एक ऐसी अन्तर्धारा की ओर संकेत है, जो इस समाज को तहस-नहस कर सकती है। दलित, पिछड़ी व अन्य पिछड़ी जातियों के गरीब लोगों के असन्तोष की धूँ-धूँ करती आग और उसका धुआँ भारतीय समाज को क्षत-विक्षत कर सकता है तथा इसका विनाश कर सकता है, यदि इस समस्या का सही समाधान न हुआ। दलितों व पिछड़ी जाति के गरीबों के बीच से एक ऐसा वर्ग जरूर पैदा हुआ है जो अपने को व्यवस्था के साथ समाहित कर चुका है तथा उसका अंग बन गया है। इसमें नौकरशाह भी हैं और राजनीतिक पार्टियों के नेता भी, डाक्टर-वकील भी हैं और अन्य स्वतन्त्र पेशों वाले लोग भी। इनकी संवेदनाएँ उन लोगों के साथ हैं जहाँ से वे आये हैं, लेकिन उनके आर्थिक हित व्यवस्था के साथ हैं। यह वर्ग सुधारों का सबसे बड़ा हिमायती है। इनमें से बहुतों को यह उम्मीद है कि व्यवस्था के भीतर से जाति-समस्या का कोई समाधान निकल आयेगा। लेकिन दलित और पिछड़ी आबादी का बहुलांश, जो शोषित, उत्पीड़ित और प्रताड़ित है, इस व्यवस्था के भीतर जाति-समस्या के समाधान के बारे में नहीं सोचता।

सवर्णों का बहुलांश, चाहे वह सामान्य गरीब ही क्यों न हो, दलितों के बारे में वही नजरिया रखता है जो उसके भीतर के धनी और सुविधाभोगी लोग रखते हैं। पुलिस महकमे का एक बहुत बड़ा हिस्सा सवर्णों के बीच से ही आता है। सवर्णों के गरीब पुलिस में सिपाही होते हैं और अमीर अफसर होते हैं। ज्यादातर राजनीतिक पार्टियाँ भी सवर्णों व मध्य जातियों के सम्पन्न लोगों से भरी पड़ी हैं। दलित जातियों के लोग दाल में नमक के बराबर भी नहीं हैं। दलितों की पार्टियाँ, जैसे रिपब्लिकन पार्टी, बहुजन समाज पार्टी और इनके विभिन्न धड़े, व्यवस्था की लक्ष्मणरेखा को स्वीकार कर चुकी हैं और सुधार से आगे की बात सोचती भी नहीं हैं।

* * *

अम्बेडकर एक प्रखर विचारक और विद्वान व्यक्ति थे। वे विद्रोह की प्रतिमूर्ति थे। हिन्दू समाज में जो कुछ सड़ा-गला है, जो कुछ त्याज्य है—और इस धर्म में शायद ही कोई चीज हो जो स्वस्थ हो और त्याज्य न हो—उसके वे प्रबल विरोधी थे और उसे नष्ट कर देना चाहते थे। इसके लिए वे आजीवन प्रयासरत रहे। लेकिन वे भी सुधार की लक्ष्मणरेखा को पार नहीं कर सके।

वे हिंसा द्वारा परिवर्तन के प्रबल विरोधी बने रहे। भला अम्बेडकर जैसे प्रखर चिन्तक से क्या यह बात छिपी थी कि व्यवस्था दलितों पर जो हिंसा करती है और जितना उनका खून बहता है वह हिन्द महासागर को भी लाल करने के लिए काफी है? वे यह क्यों नहीं समझ सके कि व्यवस्था द्वारा की गयी इस हिंसा का प्रतिकार दलितों द्वारा की गयी क्रान्तिकारी हिंसा ही हो सकती है? आधुनिक विश्व की सारी क्रान्तियों के इतिहास का ज्ञाता यह क्यों नहीं समझ सका कि कोई भी क्रूर, स्वेच्छाचारी और निरंकुश व्यवस्था क्रान्तिकरी हिंसा के अलावा किसी भी भाषा को नहीं समझती। गाँधी जैसा चतुर राजनीतिज्ञ भी खुले और प्रत्यक्ष तौर पर बोल्शेविक क्रान्ति का विरोध करने से परहेज करता था। लेकिन दलितों के रहनुमा अम्बेडकर बोल्शेविक क्रान्ति के विरोधी थे। क्या अम्बेडकर से यह बात छिपी रही होगी कि जारशाही और कुलीनतन्त्र का विनाश करके रूस की मेहनतकश जनता अपने लिए नयी व्यवस्था स्थापित करने का प्रयास कर रही है और क्या यह प्रयास प्रशंसनीय नहीं था? सामाजिक अपमान, सामाजिक बराबरी, लोकतान्त्रिक समानता और ऐसी ढेर सारी बातें अम्बेडकर की अन्तश्चेतना में मजबूती से अंकित थीं। फिर भी सुधार की लक्ष्मणरेखा को न लाँघ पाने और क्रान्तिकारी राजनीति का विरोधी बने रहने के पीछे एक ही कारण हो सकता है—अमरीका और इंग्लैण्ड में उनकी पढ़ाई-लिखाई तथा प्रवास। अमरीका व इंग्लैण्ड में बोल्शेविक क्रान्ति और कम्युनिज्म के खिलाफ चलाये जा रहे कुप्रचार व कुत्साप्रचार से वे बहुत ज्यादा प्रभावित थे। इसीलिए वे दलित-समस्या की जड़ तक नहीं पहुँच सके, और न ही उसका स्थायी समाधान प्रस्तुत कर सके।

अम्बेडकर के प्रति श्रद्धा रखने वाले लोग, उनका आदर करने वाले लोग, उनके विचारों को स्वीकार करने वाले राजनेता और अम्बेडकरपन्थी पार्टियाँ अम्बेडकर के इसी चिन्तन ओर क्रियाशीलता की सीमाओं में बँधे रह गये हैं।

चैत्यभूमि और दीक्षाभूमि में उमड़ने वाला जनसैलाब एक तरफ तो इस बात को इंगित करता है कि यह समुदाय अम्बेडकर को कितना आदर और श्रद्धा से देखता है। दूसरी ओर, उस जनसैलाब को देखकर यह भी कहा जा सकता है कि अम्बेडकर दलित समुदाय के मसीहा बन चुके हैं, उन्हें देवप्रतिमा बना दिया गया है और सोने के फ्रेम में मढ़ कर उनकी पूजा की जाने लगी है। शासकवर्गों के राजनीतिक

रहनुमा अम्बेडकर की देव प्रतिमा पर ही हर साल श्रद्धा-सुमन चढ़ाते हैं। शासकवर्गों की यह परम्परा रही है कि वे व्यवस्था के विद्रोहियों को सोने के फ्रेम में मढ़कर उन्हें पूजा की वस्तु बना देते हैं, उन्हें निष्प्राण और निर्जीव बना देते हैं, उनकी आत्मा और सारतत्व को बाहर निकाल देते हैं और व्यवस्था के हित में उनका इस्तेमाल करते हैं।

वे दलितों के नेता अंम्बेडकर को देवप्रतिमा में बदल चुके हैं, उन्हें निष्प्राण बना चुके हैं और उनकी पूजा करने लगे हैं। यह एक शोचनीय स्थिति का सूचक है। दलितों का विशाल समूह और आम जनता, जो अशिक्षित और निर्धन है, असहाय व कंगाल है, शोषित व उत्पीड़ित है, जिसकी हजारों सालों से आह निकलती रही है, जो आजाद भारत में भी साठ सालों तक छली जाती रही है, जिसे अपनी मुक्ति का मार्ग नहीं सूझ रहा है, वह अम्बेडकर को मसीहा बना दे, देवप्रतिमा बना दे, उनकी पूजा करे तो बात समझ में आती है क्योंकि इसी भावभूमि पर देवप्रतिमाएँ पैदा होती हैं। जब तक इन परिस्थितियों का उन्मूलन नहीं कर दिया जायेगा तब तक असहाय लोगों को देवप्रतिमाओं की जरूरत रहेगी। लेकिन यदि पढ़े-लिखे दलित नौजवानों, दलित पार्टी के राजनीतिक नेताओं या ऐसे ही अन्य लोगों को देवप्रतिमा की जरूरत है तो दलित समुदाय के रहनुमाओं को इस पर गम्भीरतापूर्वक विचार करना चाहिए।

अम्बेडकर को जिन्दा रहने दो। उन्हें मत मारो। उन्हें प्राणहीन, जीवनरहित मत बनाओ। उनके विद्रोह, उनकी क्रान्तिकारिता, उनके स्वस्थ विचारों को अंगीकार करो और आगे बढ़ो। समस्या के सही समाधान की तलाश करो और अम्बेडकर के बचे-खुचे कामों को पूरा करो। समता, समानता और बन्धुत्व के उनके सपने को पूरा करो और उसे पूरा करने के नये मार्ग की तलाश करो। यही अम्बेडकर के प्रति सही श्रद्धांजलि होगी।

* * *

दो शब्द धर्म-परिवर्तन के बारे में। अम्बेडकर द्वारा धर्म-परिवर्तन किये जाने के बाद भी जाति व वर्ण-व्यवस्था की समस्या का नाश नहीं हो सका। धर्म परिवर्तन के बाद मुसलमान को मस्जिद में एक साथ प्रार्थना करने का अधिकार मिल जाता है, ईसाई को चर्च में एक साथ प्रार्थना करने का अधिकार मिल जाता है, जैन, बौद्ध, सिख-सभी धर्मों में कुछ न कुछ अधिकार मिल जाता है जो हिन्दू धर्म में नहीं मिलता। लेकिन जिसके लिए धर्म-परिवर्तन किया जाता है, वह है समाज में बराबर की हैसियत। दलित को ईसाई होने के बाद भी, बौद्ध होने के बाद भी, मुसलमान होने के बाद भी दलित के रूप में ही देखा जाता है। सवर्णों में से धर्म-परिवर्तन करने वाले लोग भी अपनी खास पहचान बनाये रखते हैं। इस तरह, धर्म-परिवर्तन के बाद भी विभिन्न जातियों का अस्तित्व नष्ट नहीं हो जाता। उनमें आपस में शादी-ब्याह भी बड़े पैमाने पर नहीं हो पाता और दलित किसी न किसी तरह के भेदभाव के शिकार होते हैं। यह जीवन का यथार्थ और सच्चाई है।

हिन्दू धर्म में दलितों को मन्दिर में प्रवेश की अनुमति नहीं है। हालाँकि यह ढोंगी और पाखण्डी हिन्दू समाज एवं इसके धर्माचार्य कुछ एक अपवादों को छोड़कर गोरे लोगों को मन्दिरों में जाने की इजाजत देते हैं और इससे गौरवान्वित भी महसूस करते हैं। हिन्दू और पूरा भारत गोरों का गुलाम रहा है। भला अपने मालिकों की बिरादरी को मन्दिरों में जाने से वे कैसे रोक सकते हैं!

धर्म-परिवर्तन के बाद दलितों की आर्थिक हैसियत में कोई परिवर्तन नहीं होता है। इसके चलते उनकी सामाजिक हैसियत भी कमोबेश पुरानी ही बनी रहती है। आर्थिक हैसियत ही सामाजिक हैसियत का आधार होती है। इसमें बदलाव के बिना सामाजिक हैसियत में कोई परिवर्तन नहीं होता है। इसी समस्या को हल करने के लिए बौद्धों-ईसाइयों को भी आरक्षण देने की आवाज उठ रही है। धर्म-परिवर्तन इस समस्या का हल नहीं कर सकता।

धर्म अपने जन्म के समय मौजूद समाज की कोख से ही पैदा होता है, समाज के बदलने के साथ-साथ इसके बाह्य रूपों में निरन्तर परिवर्तन होते रहते हैं। धर्म जिस रूप में व्यवहृत होता है उसी से जनता का वास्ता होता है। वही उसके अच्छे-बुरे का निर्धारक होता है। किताबों में लिखा धर्म जनता के लिए विशेष मायने नहीं रखता। बौद्ध धर्म 1949 के पहले तिब्बत में किस रूप में व्यवहृत होता था, उसकी दर्दनाक कहानी इतिहास में दर्ज है। बड़े लामाओं का पखाना सत्तू में मिलाकर प्रसाद के रूप में दिया जाता था। बहुत ही कीमती और दुर्लभ ग्रन्थों के पन्ने फाड़ कर भक्तों को प्रसाद के रूप में बाँट दिये जाते थे। छोटे लामाओं को बड़े लामा के घुटने से ऊपर देखने के अपराध में अपनी आँखें गँवानी पड़ती थीं।

एक ही धर्म का अलग-अलग स्थानों पर अलग स्वरूप

होता है। जापानी बौद्ध और भारतीय बौद्ध में काफी अन्तर है। यूरोप के ईसाई और भारत के ईसाई में काफी अन्तर है। धर्म समाज की सीमाओं को लाँघ नहीं सकता। उसकी सारी विकृतियों को ढोता हुआ ही वह कायम रहता है। समाज और धर्म अविच्छिन्न रूप से जुड़े हुए हैं। यदि समाज में स्वेच्छाचारिता और निरंकुशता होगी, तो धर्म में भी होगी, चाहे वह कोई भी धर्म हो। समाज में ऊँच-नीच होगी तो धर्म में भी होगी, चाहे वह कोई भी धर्म हो। अम्बेडकर जैसे चिन्तक और अध्येता का इन सवालों को गहराई से न समझ पाना एक ही बात को दर्शाता है कि उन पर पश्चिम के पूँजीवाद-साम्राज्यवाद का प्रभाव बहुत गहरा था। उनकी अंतश्चेतना में मान-सम्मान का पहलू गहराई से धँसा हुआ था। लेकिन इसका आर्थिक पहलू गहराई से धँसा हुआ नहीं था। अम्बेडकर और उनके अनुयायियों द्वारा बौद्ध धर्म अंगीकार करना एक तरह का पलायन था। स्वस्थ और सशक्त विद्रोही पलायनवादी नहीं होता, वह जिसके खिलाफ विद्रोह करता है उसे ध्वस्त करने, समूल नष्ट करने की लड़ाई लड़ता है।

कबीर, दादू, मलूका और उत्तर-दक्षिण-पूरब-पश्चिम के अनेक महान सन्तों और सन्त कवियों में इन से कहीं ज्यादा प्रखरता देखी जा सकती है। उन्होंने धर्म की धज्जियाँ उड़ाईं और उसके खिलाफ मरते दम तक लड़ते रहे। बहुत से सन्तों और उनके अनुयायियों को जिन्दा जलाया गया। बहुत से सन्तों की किताबें जला दी गयीं जिससे उनका साहित्य आज उपलब्ध नहीं है। कबीर ने हिन्दू और मुसलमान, दोनों ही धर्मों की धज्जियाँ उड़ायीं, उनके ढोंग-पाखण्ड को नंगा किया और ईश्वर का वह स्वरूप प्रस्तुत किया, जो सबकी पहुँच के भीतर था और सबका था। वह मुसलमानों का जमाना था, इस्लाम की तूती बोलती थी। इसके बावजूद उन्होंने न तो इस्लाम धर्म कबूल किया और न ही हिन्दू धर्म। इसके लिए उन्हें अकल्पनीय यन्त्रणाएँ दी गयीं। उन्हें सामाजिक अपमान और बहिष्कार झेलना पड़ा। फिर भी मन, वचन और कर्म से मृत्यु-पर्यन्त वे लड़ाई लड़ते रहे। इस ढोंग को उजागर करने के लिए कि मोक्ष के लिए काशी में मरना जरूरी नहीं, वे काशी से मगहर जाकर मरे। नानक भी अपने जीवन पर्यन्त हिन्दू धर्म के ढोंग-पाखण्ड के खिलाफ लड़ते रहे। बाद में सिख धर्म का प्रवर्तन हुआ। उन्होंने पलायन के बारे में नहीं सोचा। आज यह बात बहुत छोटी लग सकती है, लेकिन कल्पना शक्ति के सहारे मध्ययुग में जाकर उनकी क्षमता और शक्ति को समझने का प्रयास किया जाय तो उन सन्त कवियों की महानता समझी जा सकती है। समूचे दलित समुदाय को, पिछड़े वर्ग के लोगों को, शोषित-उत्पीड़ित और बदहाल लोगों को, तथा उनके रहनुमाओं को इस पर गम्भीरता से विचार करना चाहिए कि धर्म-परिवर्तन क्या जाति-वर्ण समस्या का कोई समाधान है? क्यों न ऐसा किया जाय कि समस्या की जड़ खोदकर निकाल दी जाय और उसमें तेजाब डाल दिया जाय ताकि भविष्य में इसके दुबारा उग आने की सम्भावना समाप्त हो जाये।

भारत के हिन्दू-मुसलमान-सिख-ईसाई-बौद्ध– सभी धर्मों के शोषितों, उत्पीड़ितों और गरीबों के संघर्ष के झण्डे पर यही लिखा होना चाहिए– ''भागो नहीं, दुनिया को बदलो।''

* * *

दलित समस्या मूलत: जनवाद की समस्या है। महान सन्त कवियों से लेकर आज तक वर्ण व्यवस्था के खिलाफ किये गये सारे संघर्ष इसी के इर्द-गिर्द होते रहे हैं। जनवाद की समस्या भूमि-समस्या के साथ अविच्छिन्न रूप से जुड़ी हुई है। इसलिए, जनवांद की समस्या का समाधान, समता, आजादी, बन्धुत्व की समस्या का समाधान इन मुद्दों पर अलग से संघर्ष करके नहीं किया जा सकता। भूमि-समस्या के समाधान के साथ ही इस समस्या का पूरी तरह समाधान हो सकता है।

फ्रान्सीसी क्रान्ति में और अमरीका के गृहयुद्ध में इस समस्या के समाधान का प्रयास हुआ। फ्रान्स में तो इसका समाधान हो गया, लेकिन अमरीका में यह आज भी किसी न किसी रूप में बनी हुई है। अमरीकी गृहयुद्ध में पराजित होने के बाद भी नस्लवाद को बनाए रखने में रेस्टोरेशनिस्ट (पुनर्स्थापनावादी) काफी हद तक सफल रहे। नस्लवाद ने जनवाद की समस्या को काफी पेचीदा बना रखा था और वह आज भी वहाँ मौजूद है। रूसी भूदास, वहाँ के शोषित-उत्पीड़ित लोग अक्टूबर क्रान्ति के बाद ही इस समस्या को हल कर सके। चीन का शोषित-उत्पीड़ित समाज भी भूमि-सम्बन्धों में मौलिक परिवर्तन करके ही जनवाद की समस्या का समाधान कर सका। जनवाद और जमीन दोनों ही के लिए संघर्ष साथ-साथ होते हैं। भारत की दलित समस्या का समाधान भी मूलत: इसी रास्ते से होगा। इस ऐतिहासिक कार्यभार के विलम्बित और स्थगित होते जाने के कारण इसके स्वरूप में भारी बदलाव आ गया है लेकिन फिर भी जमीन का संघर्ष अपनी बदली

हुई अन्तर्वस्तु के साथ ही सही, आज भी जनवाद के सवाल से अविच्छिन्न रूप से जुड़ा हुआ है।

क्रान्ति सम्पन्न करने का काम सुगम नहीं होता। शासक वर्गों की हिंसा का जवाब क्रान्तिकारी संघर्ष ही हो सकता है। हमारे देश में शासकों की प्रत्यक्ष और परोक्ष हिंसा के फलस्वरूप साल भर में जितनी हत्याएँ होती हैं उतनी आधुनिक विश्व की सभी महत्वपूर्ण क्रान्तियों को मिला लिया जाये तो भी नहीं हुई हैं। क्रान्तिकारी संघर्षों के दौरान एक आपरेशन, एक शल्य-चिकित्सा होती है, जिसमें बहुत थोड़ा रक्त बहाकर शरीर को स्वस्थ किया जाता है। क्रान्ति एक धाय होती है, जो नये शिशु के जन्म में सहायक होती है। नये शिशु के जन्म में बहुत थोड़ा और दूषित रक्त ही शरीर से बाहर निकलता है। शासक वर्ग, उसके चिन्तक-विचारक, उसके राजनीतिक रहनुमा, उसके छापेखाने– सभी व्यवस्था की हिंसा पर पर्दा डालने और क्रान्तिकारी संघर्ष को बदनाम करने का निरन्तर प्रयास करते रहते हैं और जनता के बड़े हिस्से के मन में भ्रम पैदा करते हैं। इससे मुक्त होने की जरूरत है।

सम्पत्ति के सम्बन्धों में मौलिक परिवर्तन करने, नीचे को ऊपर और ऊपर को नीचे करने, जमीन और उत्पादन के सभी साधनों पर मेहनतकशों का अधिकार स्थापित करने का काम अनुनय-विनय से नहीं किया जा सकता। दुनिया का इतिहास बताता है कि हमेशा इसे केवल तलवार के बल पर ही सम्पन्न किया गया है।

आज जरूरत है एक ऐसी क्रान्ति की जो सम्पत्ति के सम्बन्धों में मौलिक परिवर्तन कर दे, दलितों और अन्य शोषित-उत्पीड़ित तबकों के लोगों का राज कायम करे, जो भारत की आर्थिक-सामाजिक संरचना को पूर्णतः बदल दे। ऐसी क्रान्ति सम्पन्न होने के बाद ही जाति और वर्ण व्यवस्था का कलंक भारतीय समाज से मिट पायेगा।

दलित समस्या पर विचार करते हुए शहीद भगत सिंह ने कहा था, ''तुम असली सर्वहारा हो...संगठनबद्ध हो जाओ। उठो, और वर्तमान व्यवस्था के विरुद्ध बगावत खड़ी कर दो। धीरे-धीरे होने वाले सुधारों से कुछ नहीं बन सकेगा। सामाजिक आन्दोलन से क्रान्ति पैदा कर दो तथा राजनीतिक और आर्थिक क्रान्ति के लिए कमर कस लो।''

इतिहास अपनी जरूरत के लिए अपने नेताओं को पैदा करता है। एक बार फिर वह अपने नये नेताओं को पैदा करेगा जो इस काम को सम्पन्न करने में सक्षम होंगे। ▣

1 फरवरी, 2007

आई.आई.टी. में विदेशियों के लिए आरक्षण

मानव संसाधन विकास मन्त्रालय ने देश के सभी सात आई. आई. टी. (भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान) में पोस्ट ग्रेजुएट पाठ्यक्रमों में 25 प्रतिशत और शिक्षकों की भर्ती में 10 प्रतिशत स्थान विदेशियों के लिए आरक्षित करने को कहा जिसे सातों निदेशकों की दिसम्बर 2006 में हुई बैठक में सर्वसम्मति से मंजूर कर लिया गया। फैसले को उचित ठहराने के लिए उन्होंने विदेशियों के परिसर में आने के ढेर सारे फायदे भी गिनवाये।

उच्च शिक्षण संस्थानों में अपने देश के दलितों-पिछड़ों को आरक्षण दिये जाने पर धरती आसमान एक कर देने वाली अभिजातों की सन्तानें, उनको हवा देने वाले ब्राह्मणवादी मीडियाकर्मी और बुद्धिजीवी विदेशियों को आरक्षण दिये जाने पर मौन क्यों है? इस खबर को प्रचारित-प्रसारित करने के बजाय मीडिया ने इसे दबाया क्यों?

ये लोग तब भी चुप थे जब सरकार ने बेतहाशा फीसें बढ़ाकर शिक्षा को पैसे वालों के लिए आरक्षित किया था।

नयी उत्पादन प्रणाली*, नया आरोपित समाज, नयी गुलामी

■ दिगम्बर

विगत पन्द्रह सालों में भारतीय अर्थव्यवस्था में बहुत ही महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए हैं। ये परिवर्तन तात्कालिक और दूरगामी, दोनों ही महत्व रखने वाले हैं तथा भारत की सामाजिक-आर्थिक संरचना, उसकी संस्कृति, राजनीति और भारतीय जनजीवन के सभी क्षेत्रों को प्रभावित करने वाले हैं।

यहाँ हम इन परिवर्तनों का एक संक्षिप्त लेखा-जोखा प्रस्तुत करेंगे तथा इनकी प्रकृति और देश पर पड़ने वाले तात्कालिक और दूरगामी प्रभावों की चर्चा करेंगे।

'80 के दशक के उत्तरार्द्ध में विश्व के राजनीतिक पटल पर होने वाली महत्वपूर्ण घटनाओं के फलस्वरूप विश्वस्तर पर वर्ग-शक्तियों के सन्तुलन में भारी बदलाव आये हैं। परिणामस्वरूप पूरी दुनिया में पूँजी का वर्चस्व कायम हुआ है और श्रम को पीछे हटना पड़ा है। अमरीका के नेतृत्व में साम्राज्यवादी समूह की शक्ति बहुत ज्यादा बढ़ी है और दुनियाभर के मजदूर, किसान और अन्य मेहनतकश आवाम की ताकत कमजोर हुई है।

वर्ग-शक्ति सन्तुलन में हुए इस परिवर्तन के कारण साम्राज्यवादी वैश्वीकरण का रास्ता सुगम हो गया और पूँजी के अति संचय का संकट झेल रहे साम्राज्यवादी देशों को विश्व का एक विशाल भूभाग हाथ लग गया। इसने पूँजी के अति संचय की समस्या को हल करने में काफी हद तक मदद पहुँचायी।

वैश्वीकरण आधुनिक विश्व की एक स्वाभाविक गति है। पूँजी और पूँजीवाद के विस्तार के इतिहास को दुनिया जानती है। आधुनिक विश्व में उत्पादक शक्तियों के विकास के शुरुआती दौर से ही वैश्वीकरण की स्वाभाविक प्रक्रिया लगातार जारी रही है। हालाँकि उपनिवेशवाद और साम्राज्यवाद की पैदाइश के साथ यह स्वाभाविक प्रक्रिया बाधित हुई, लेकिन फिर भी, लँगड़ाते हुए ही सही, यह निरन्तर चलती रही।

समाजवाद के आविर्भाव के साथ एक समानान्तर विश्व-व्यवस्था उठ खड़ी हुई और ज्यों-ज्यों समाजवाद का विस्तार होता गया, साम्राज्यवादी पूँजी के विस्तार का क्षेत्र संकुचित होता गया। समाजवाद की स्वाभाविक सहयोगी राष्ट्रीय मुक्ति की धारा ने भी इस विस्तार पर रोक लगाने में मदद पहुँचायी। एक तरफ विश्व पूँजीवाद और साम्राज्यवाद और दूसरी ओर समाजवाद के बीच एक लम्बे संघर्ष में, जिसका फलक बहुत ही विस्तृत रहा है, समाजवाद सामयिक तौर पर पराजित हुआ और राष्ट्रीय मुक्ति संघर्षों की धारा भी अपनी ऐतिहासिक परिणति तक पहुँच गयी। इसी के साथ साम्राज्यवादी वैश्वीकरण का रास्ता साफ हो गया।

इतिहास के इस मोड़ पर अमरीका के नेतृत्व में साम्राज्यवादी समूह ने अपनी नयी विश्व रणनीति तैयार की और तीसरी दुनिया पर एक नयी गुलामी थोप देने का षड्यन्त्र शुरू किया। साम्राज्यवादी खेमे के भीतर अलग-अलग देशों की शक्ति के मुताबिक उनकी महत्वाकांक्षाएँ और मंसूबे भले ही अलग-अलग हों, लेकिन तीसरी दुनिया पर आर्थिक नव औपनिवेशिक गुलामी थोप देने और अपने साम्राज्यवादी हितों के संरक्षण के मामले में उनकी आपस में मिलीभगत है। अमरीका की महत्वाकांक्षा आज की दुनिया पर एक नये "रोमन साम्राज्य" की स्थापना करना है। जर्मनी, फ्रांस, ब्रिटेन, कनाडा, इटली और जापान इसमें अपना हिस्सा चाहते हैं। लेकिन बेल्जियम, डेनमार्क और फिनलैण्ड तथा आइसलैण्ड जैसे साम्राज्यवादी देश भी पूँजीवाद-साम्राज्यवाद को मजबूत बनाने तथा तीसरी दुनिया पर नयी गुलामी को कायम करने के सवाल पर एकमत हैं। रूस की भी यही इच्छा है। चीन भी इसी कतार में खड़ा है। आने वाले समय में ये देश भी

* उत्पादन प्रणाली के बारे में विशेष टिप्पणी पृष्ठ 13 पर

साम्राज्यवादी समूह का हिस्सा बन सकते हैं। लेकिन यह बात याद रखनी होगी कि साम्राज्यवादी देशों के बीच, लुटेरों के बीच आपसी अन्तरविरोध (contention) ही स्थायी होता है, समझौता (collusion) नहीं।

साम्राज्यवादी समूह अपने संकीर्ण वर्ग-स्वार्थों और अपनी प्राथमिकताओं के अनुरूप तीसरी दुनिया के देशों की पहले से ही मौजूद समाज व्यवस्था पर एक नयी समाज व्यवस्था आरोपित कर रहा है। तीसरी दुनिया की यह नयी समाज व्यवस्था– नयी उत्पादन प्रणाली और नयी गुलामी, इन देशों के इजारेदार सरमायादार गुटों के स्वार्थों और उनके आर्थिक हितों के अनुकूल है और उन्हें स्वीकार्य है। एक नयी विश्व रणनीति लागू करने का प्रयास किया जा रहा है जिसे साम्राज्यवादियों और उनके बुद्धिजीवी प्रवक्ताओं ने ''वाशिंगटन आम सहमति'' नाम दिया है। इसका मतलब है तीसरी दुनिया के देशों और राष्ट्रों की स्वतन्त्रता की समाप्ति और उनके ऊपर एक आर्थिक नव औपनिवेशिक उत्पादन प्रणाली का थोपा जाना। इसका मतलब है नग्न और निर्लज्ज पूँजी का प्रलयकारी ताण्डव–सब कुछ मुनाफे के लिए, सब कुछ पूँजी के लिए, सब कुछ साम्राज्यवादी समूह और उसकी सनक के लिए। इसका मतलब है तीसरी दुनिया के आदमी को जानवर के बराबर ला खड़ा करना तथा साथ ही अपने देश के मजदूरों को भी बेरहमी से लूटना, उनका दमन-उत्पीड़न करना।

दूरदर्शी पूँजीवादी राजनेता, दार्शनिक, अर्थशास्त्री और विभिन्न क्षेत्रों में काम करने वाले बुद्धिजीवी साम्राज्यवादी समूह की इस नयी विश्व रणनीति को विश्व पूँजीवादी व्यवस्था के विस्तार और स्थायित्व के लिए गलत समझते हैं और समय-बा-समय अपनी आलोचनाएँ व सुझाव पेश करते रहते हैं। लेकिन इजारेदार सरमायादार गिरोह और उनके राजनीतिक बुद्धिजीवी प्रवक्ता, जिनका उन पूँजीवादी समाजों पर आधिपत्य कायम है, वे इन सुझावों पर कान नहीं देते।

तीसरी दुनिया के ज्यादातर देशों के शासक वर्ग साम्राज्यवादी समूह की अधीनता को स्वीकार करते जा रहे हैं। उनमें कुछ अपवाद भी हैं और उनका स्वर मुखर भी है। वेनेजुएला के ह्यूगो शावेज और उनके जैसे अन्य लोग ऐसे ही अपवादों की श्रेणी में आते हैं।

जहाँ तक भारत की बात है, **'60 के दशक के मध्य से ही निरन्तर संकटग्रस्त यहाँ का शासक वर्ग '80 के मध्य तक आते-आते लड़खड़ा कर गिरने लगा था। तभी विश्व-पटल पर होने वाली महत्वपूर्ण घटनाओं ने दुनिया के पैमाने पर एक नया समीकरण पैदा किया और एक नया शक्ति-सन्तुलन कायम हुआ। साम्राज्यवादी वैश्वीकरण की पछुआ बयार बहने लगी। हमारे शासक वर्गों को जैसे कि इसका इन्तजार ही था। उन्होंने यत्किंचित आशंका, हिचकिचाहट, संशय और दुविधा के बाद इसे स्वीकार करना ही उचित समझा। उनके वर्गीय हित इसे स्वीकार करने से ही पूरे हो सकते थे और उनकी पूँजी की वृद्धि भी तभी हो सकती थी। उन्होंने साम्राज्यवादी समूह के सरमायादारों का सहयोगी (collaborationist) होना** स्वीकार कर लिया। भारत के विशाल बहुमत का हित कभी भी उनके लिए कोई अर्थ नहीं रखता था। उनका अपना संकीर्ण वर्गीय हित ही सब कुछ था। लेकिन आज की स्थिति पहले से भिन्न है। भारत के विशाल बहुमत को पूर्णतः त्याग कर और साम्राज्यवादी समूह का शत्रु-सहयोगी बन कर उन्होंने अपनी गति और नियति को साम्राज्यवादी समूह से जोड़ लिया। इस तरह, वे अलगाववादी बन गये। भारतीय जनता का संघर्ष पहले भी यहाँ के पूँजीवादियों के विरुद्ध था लेकिन अब यह साम्राज्यवादी समूह और इन शत्रु -सहयोगियों के विरुद्ध बन गया है।

भारतीय समाज पर एक नयी उत्पादन प्रणाली, एक नयी समाज व्यवस्था आरोपित की जा रही है। जिसमें यहाँ का शासक वर्ग पूरी तरह से मददगार है। यह उत्पादन प्रणाली हजारों विकृतियों को जन्म देने वाली है, तात्कालिक और दूरगामी दुष्परिणाम पैदा करने वाली है। और भारतीय समाज के स्वस्थ और सही विकास को बाधित करने तथा उसे पीछे धकेल देने वाली है। यह पूरी तरह साम्राज्यवादी समूह की आवश्यकताओं, प्राथमिकताओं और मंशाओं को पूरा करने वाली है तथा उनके चन्द भारतीय सहयोगियों के लिए ही लाभकारी है।

इसके बारे में हम यहाँ तफसील से विचार करेंगे। सबसे पहले भारत के इतिहास पर नजर दौड़ाना जरूरी होगा। इसे मोटे तौर पर तीन चरणों में बाँटा जा सकता है। पहला चरण ईस्ट इण्डिया कम्पनी के भारत में आने से शुरू होकर उसके आधिपत्य कायम करने, ब्रिटिश सरकार द्वारा ईस्ट इण्डिया कम्पनी से सत्ता अपने हाथ में लेने तथा 1857 के अन्तिम प्रतिरोध-युद्ध और प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम से होते हुए 1947 में आजादी तक के दौर का है। दूसरा चरण टाटा-बिड़ला योजना (1944) पर आधारित नेहरू के 'समाजवादी' पूँजीवाद का दौर है, जो 1947 से शुरू हुआ और 1985-90 तक

चला। तीसरा चरण 1990 के बाद शुरू होता है, जो अभी भी जारी है।

ईस्ट इण्डिया कम्पनी के आने से पहले भारत एक सामन्ती समाज था जिसमें पूँजीवाद के विकास की परिस्थितियाँ और सम्भावनाएँ मौजूद थीं। भारतीय समाज कृषि से दस्तकारी और उद्योग तक की यात्रा करने में समर्थ था। इस बात के काफी प्रमाण मौजूद हैं और देश के ज्यादातर इतिहासविद् इससे सहमत हैं।

डच, फ्रांसीसी, पुर्तगाली और अंग्रेज– सभी भारत में व्यापार करने आये थे। कालान्तर में भारत में अपनी राजनीतिक सत्ता कायम करने को लेकर उनके बीच प्रतिस्पर्द्धा शुरू हो गयी। इस होड़ में ईस्ट इण्डिया कम्पनी आगे निकल गयी। अंग्रेज समूचे भारत पर अपना अधिकार कायम करने में सफल हो गये। अपने दो सौ वर्षों के शासन के दौरान ईस्ट इण्डिया कम्पनी और ब्रिटिश सरकार की नीतियों में समय-समय पर परिवर्तन होते रहे, लेकिन भारत को सुनियोजित तरीके से लूटने-खसोटने और ब्रिटेन को समृद्ध बनाने का काम उनके शासन के अन्त-अन्त तक जारी रहा।

ईस्ट इण्डिया कम्पनी और ब्रिटिश सरकार ने भारत की सामन्ती अर्थव्यवस्था पर एक नयी व्यवस्था– औपनिवेशिक व्यवस्था आरोपित की जो मूलत: ब्रिटिश सरमायादारों के हितों को ध्यान में रखकर तैयार की गयी थी। इस औपनिवेशिक व्यवस्था की प्राथमिकताएँ अंग्रेजों ने अपनी जरूरतों के अनुसार तय की थीं। दो सौ साल के लम्बे शासन काल में उनकी प्राथमिकताएँ और आवश्यकताएँ बदलती रहीं और उन्हीं के अनुरूप इस नयी अर्थ-व्यवस्था में भी थोड़े-बहुत परिवर्तन होते रहे।

अंग्रेजों के शासन काल में भारतीय अर्थव्यवस्था राजनीति और राजनीतिक संस्थाएँ, शिक्षा प्रणाली और संस्कृति, सब कुछ ब्रिटिश उपनिवेशवादियों के स्वार्थों और जरूरतों के अनुरूप ढाले गये। इन नीतियों के वस्तुगत और परोक्ष परिणाम के रूप में एक खास तरह के पूँजीवाद के बीज पड़े। पुराना सामन्ती समाज अर्द्धसामन्ती (मूलत: और मुख्यत: सामन्ती) समाज में परिवर्तित हुआ। सामन्ती उत्पादन प्रणाली की जगह एक नयी उत्पादन प्रणाली का जन्म हुआ जिसे अर्द्धसामन्ती-औपनिवेशिक उत्पादन प्रणाली कहना सटीक होगा। मुट्ठीभर राजा-महाराजा, नवाब, जागीरदार, सामन्त, जमीन्दार, इस व्यवस्था के सामाजिक आधार बने। कालान्तर में एक दलाल पूँजीपति वर्ग भी पैदा हुआ जो अंग्रेज पूँजीपतियों के लिए कच्चामाल जुटाने और उनके तैयार मालों को भारत के बाजार में बेचने का काम करता था। इसके साथ ही पढ़े-लिखे लोगों का एक अंग्रेज परस्त तबका पैदा हुआ। वकील, बैरिस्टर, प्रोफेसर, व्यापारी और मध्यम दर्जे के सरकारी कर्मचारी अंग्रेजों के प्रति पूर्णत: आस्थावान बने रहे क्योंकि उनका स्वार्थ पूरी तरह ब्रिटिश उपनिवेशवादियों के साथ जुड़ा हुआ था।

ब्रिटिश उपनिवेशवादियों ने इस देश का क्या हाल बना दिया, इसे बयान करने के लिए एक ही तथ्य काफी है। 1750 में दुनिया के कुल औद्योगिक उत्पादन में भारत का हिस्सा 24.5%था। और ब्रिटेन का हिस्सा 1.9% था। 1900 में ब्रिटेन का हिस्सा बढ़कर 18.5% हो गया जब कि भारत का हिस्सा घटकर 1.7% रह गया। अंग्रेज जब भारत छोड़कर भागने के लिए मजबूर हुए तब तक हमारा सम्पन्न देश भुखमरी और अकालों के देश में बदल गया था। उस काल की विरासत भले ही हमें स्वीकार नहीं, लेकिन आज भी हम उसे ढोने के लिए मजबूर हैं। गुलामी का बदनुमा दाग अभी मिटने भी नहीं पाया था कि एक नयी गुलामी ने दस्तक दे दी।

ऊपर 1750 और 1900 के बीच अर्थव्यवस्था में बदलाव का जो आँकड़ा दिया गया है वह इस बुनियादी बात की ओर इशारा करता है कि किसी राष्ट्र का, किसी समाज का, किसी समुदाय का या व्यक्ति का या किसी जीवित वस्तु का स्वस्थ विकास उसकी आन्तरिक गति से ही निर्धारित होता है। यदि उसकी आन्तरिक गति बाधित हो

अमरीका के कहने से

पश्चिम बंगाल के पूर्व वित्तमन्त्री अशोक मित्रा ने अपनी पुस्तक 'ए प्रेटलर्स टेल' (गपोड़ी के किस्से) में बताया है कि नरसिम्हाराव की सरकार में मनमोहन सिंह को अमरीका के कहने पर वित्तमन्त्री बनाया गया था और वित्तमन्त्री बनने के पहले से ही वह मन्त्रालय में जाने लगे थे। मित्रा बताते हैं, ''वाशिंगटन ने सरकार में वित्तमन्त्री के पद के लिए दो नाम प्रस्तावित किये थे। जब पहले आदमी ने सारी बातों पर विचार करने के बाद इस निमन्त्रण को ठुकरा दिया तब नरसिम्हाराव ने सूची में दिये गये दूसरे आदमी से पूछा और वह खुशी से तैयार हो गया।''

जाय, क्षीण हो जाय या रुक जाय, तो उसका स्वस्थ विकास सम्भव नहीं हो पाता। विरोध-विकास का यह नियम सार्वभौमिक है। बाह्य गतियाँ किसी वस्तु के स्वस्थ विकास में मददगार भी हो सकती हैं और बाधक भी। यह सब कुछ इस बात पर निर्भर करता है कि आन्तरिक गति के साथ उस बाह्य कारण का क्या सम्बन्ध है।

भारतीय समाज पर ब्रिटिश उपनिवेशवादियों द्वारा बड़े ही सुनियोजित तरीके से जो नयी उत्पादन प्रणाली थोपी गयी वह यहाँ के विकास में बाधक बनी। इसके विपरीत, ब्रिटेन के समाज की आन्तरिक गति स्वस्थ बनी रही और उपनिवेशों की लूट, उसकी आन्तरिक गति को तेज़ करने में मददगार साबित हुई। परिणामस्वरूप ब्रिटिश समाज सम्पन्न और वैभवशाली बना, ब्रिटेन एक शक्तिशाली देश बना।

अंग्रेज़ों ने भारतीय समाज के विकास की आन्तरिक गति को बाधित नहीं किया होता तो निश्चय ही हमारा देश स्वस्थ और स्वाभाविक पूँजीवाद के रास्ते पर आगे बढ़ता। सम्भव था कि इस विकास में कुछ देर होती। इसमें पचास या सौ साल या कितने साल लगते, यह कहना मुश्किल है, लेकिन देर-सवेर जब भी यह प्रक्रिया शुरू होती, वह स्वस्थ, सशक्त और स्थायी होती और उसकी रफ्तार भी काफी तेज होती। लेकिन ऐसा नहीं हो सका जिसका दुष्परिणाम हम आज तक भुगत रहे हैं।

ईस्ट इण्डिया कम्पनी द्वारा भारत पर प्रभुत्व स्थापित करने के बाद से लेकर 1947 में राजनीतिक आजादी मिलने तक के इस प्रथम चरण में भारतीय समाज में दो बुनियादी अन्तरविरोध मौजूद रहे। पहला, उपनिवेशवाद के साथ भारतीय जनता का अन्तरविरोध और दूसरा भारतीय सामन्तवाद के साथ भारतीय जनता का अन्तरविरोध। लेकिन इस पूरे दौर में पहला अन्तरविरोध ही प्रधान अन्तरविरोध बना रहा और भारतीय जनता के सभी संघर्ष मुख्यत: ब्रिटिश उपनिवेशवादियों के खिलाफ ही केन्द्रित रहे।

अब हम दूसरे चरण, 1947 में राजनीतिक आजादी हासिल करने से लेकर आज तक के 60 वर्षों के विकासक्रम की कुछ महत्वपूर्ण बातों की चर्चा करेंगे।

नेहरू के समाजवाद की अन्तर्वस्तु

1944 में निर्धारित टाटा-बिड़ला योजना से पूरी तरह मेल खाती थी। यह योजना देश के बड़े पूँजीपतियों ने अपनी वर्गीय सीमाओं और उस समय की राष्ट्रीय परिस्थितियों के अनुरूप पूँजीवादी विकास के लिए बनायी थी। देश में पूँजीवाद विकसित होने की एक अनिवार्य और बुनियादी शर्त थी, उग्र (रेडिकल) भूमि सुधार, एक मुकम्मिल भूमि क्रान्ति। यह भूमि क्रान्ति भारत की तकदीर और तस्वीर बदल देती। उत्पादक शक्तियों के हाथ-पाँव में सदियों से पड़ी बेड़ियाँ टूट जातीं और पूरे समाज में असीम ऊर्जा का संचार होता। इस विस्फोट के फलस्वरूप मध्ययुग का अन्त हो जाता और अर्द्धसामन्ती, औपनिवेशिक उत्पादन प्रणाली का समूल नाश हो जाता। कृषि से दस्तकारी और उद्योग तक की यात्रा पूरी होती। उद्योग-धन्धों का तेजी से विकास और विस्तार होता। देहात की एक बड़ी आबादी को उद्योगों में सार्थक जीविकोपार्जन का मौका मिलता। लोगों की क्रयशक्ति बढ़ने के चलते एक विशाल बाजार पैदा होता जो औद्योगिक उत्पादन को और अधिक गति प्रदान करता। सभी हाथ सार्थक और उत्पादक कामों में लगते जिससे विपुल सामाजिक सम्पदा का निर्माण होता। इन आर्थिक बदलावों के परिणामस्वरूप एक नये समाज का निर्माण होता। राजनीतिक, सामाजिक, शैक्षणिक और सांस्कृतिक जीवन में नयी-नयी संस्थाओं का जन्म होता। सामाजिक जीवन की रग-रग में सही मायने में जनवादी मूल्यों की स्थापना होती। आधा आसमान—स्त्री पूरी तरह आजाद होती। दलित समस्या और सामाजिक अन्याय का कहीं नामो-निशान नहीं होता। अलगाववादी और बिखराववादी ताकतों के पनपने की जमीन ही नहीं होती। तब सच्चे अर्थों में एक सम्पन्न भारत, एक स्वाधीन और स्वावलम्बी भारत अस्तित्व में आता।

लेकिन ऐसा कुछ भी नहीं हुआ। इसकी आन्तरिक गति कमजोर बनी रही तथा उत्पादक शक्तियों की विपुल ऊर्जा और विकास की सम्भावना क्षरित होती रही। आजादी के बाद भी हमारे देश के शासकों ने एक विकलांग और विकृत पूँजीवाद का ही पोषण-संवर्धन किया जिसे गमला कैपिटलिज्म (फ्लावर पॉट पूँजीवाद) भी कह सकते हैं, क्योंकि इसकी जड़े न तो गहराई तक जा सकीं और न ही विस्तार पा सकीं।

एक ही साथ तीन नौकरियाँ

योजना आयोग के उपाध्यक्ष मोण्टेक सिंह अहलूवालिया इस पद के साथ-साथ वर्ल्ड बैंक कमीशन ऑन डेवलपमेण्ट एण्ड पावर्टी और यू एस इंस्टीट्यूट ऑफ इण्टरनेशनल फाइनेंस से भी जुड़े हुए हैं।

शासक वर्गों के क्षुद्र वर्गीय स्वार्थों से निर्धारित होने वाली उनकी गलत नीतियों के परिणामस्वरूप संकट गहराता गया। यहाँ का पूँजीपति वर्ग पहले से ही कमजोर था और किसी भी तरह की जनक्रान्ति से भयाक्रान्त रहता था। यही कारण है कि वह पूँजीवादी-जनवादी कार्यभारों को पूरा करने के बारे में सोच भी नहीं सकता था। वैसे भी तीसरी दुनिया का पूँजीपति वर्ग कहीं भी इस काम को मुकम्मिल तौर पर पूरा नहीं कर सका है। तीसरी दुनिया का सबसे बड़ा दुर्भाग्य भी यही है। इतिहास के इस दूसरे चरण में भारतीय समाज में भारतीय पूँजीवाद और सामन्तवाद के साथ भारत की व्यापक जनता के अन्तरविरोध ही बुनियादी अन्तरविरोध बने रहे। चूँकि सत्ता बड़े पूँजीपतियों और बड़े भूस्वामियों के हाथ में रही इसलिए इस दौर में पूँजीपति और भूस्वामी वर्ग के संश्रय के खिलाफ मजदूर-किसान और व्यापक मेहनतकश जनता का अन्तरविरोध ही प्रधान अन्तरविरोध बना रहा।

पहले से ही गहराते आन्तरिक संकट और 1985-90 के बीच विश्व स्तर पर होने वाले महत्वपूर्ण परिवर्तनों ने यहाँ के शासक वर्गों और उनके रहनुमाओं को किंकर्त्तव्यविमूढ़ बना दिया। वे अपना आत्मविश्वास खो बैठे । 1947 के बाद राजनीतिक आजादी और अनुकूल परिस्थितियों का फायदा उठाकर भारत में यथासम्भव स्वतन्त्र और स्वावलम्बी पूँजीवाद विकसित करने की उनकी महत्वाकांक्षा हमेशा के लिए दफन हो गयी। अपनी पूँजी के विस्तार और भारत के भावी विकास के लिए उन्होंने साम्राज्यवादी समूह द्वारा प्रस्तोतित और प्रस्तावित नीतियों को स्वीकार किया। उनका कहना है कि साम्राज्यवादी समूह ही भारत का विकास कर सकता है और उसके आगे आत्मसमर्पण करने के अलावा कोई दूसरा रास्ता नहीं है। उनका स्वार्थ और साम्राज्यवादी समूह के सरमायादारों का स्वार्थ एक हो गया और वे उनके वफादार सहयोगी बन गये। उन्होंने देश की बहुसंख्यक जनता के साथ यहाँ के आम लोगों के साथ पूरी तरह विश्वासघात किया और अपने आप को उनसे अलग कर लिया। विदेशी सरमायादारों के साथ साँठ-गाँठ करके उन्होंने अपनी पूँजी का बेतहाशा विस्तार किया है, अपने लिए अलग बस्तियाँ बनायीं हैं, बैंक, मल्टीप्लेक्स, शॉपिंग माल, पाँच सितारा होटल, अत्याधुनिक अस्पताल और राजसी ठाट-बाट वाले स्कूल-कॉलेज, तथा अय्याशी के नये-नये अड्डों का निर्माण किया है। अपने विदेशी आकाओं के साथ मिल कर वे अपने ही देश की जनता को निर्लज्जता और नग्नतापूर्वक लूट-खसोट रहे हैं तथा विरोध करने पर लाठी-गोली का ताण्डव रचा रहे हैं। महान चिन्तकों ने ठीक ही कहा है कि पूँजी की राष्ट्रीयता और देशभक्ति मण्डी में होती है, उसके लाभ और मुनाफे में होती है।

अन्तरराष्ट्रीय परिस्थितियों और उनके चलते विश्व समीकरण में हुए बदलावों ने साम्राज्यवादी समूह और उसके सरगना अमरीका को पूरी दुनिया में अपने साम्राज्यवादी वर्चस्व और निर्बाध लूट के मंसूबों को पूरा करने का अनुकूल अवसर प्रदान किया। अपने इन्हीं मंसूबों को ध्यान में रखकर वे विश्व-बैंक, मुद्राकोष और विश्व व्यापार संगठन जैसे लूट और शोषण के उपकरणों के जरिये पूरी दुनिया में साम्राज्यवादी वैश्वीकरण की मुहिम चला रहे हैं। इसे ही दुनिया भर में ''वाशिंगटन आम सहमति'' के नाम से जाना जाता है।

इसी साम्राज्यवादी रणनीति के तहत आज भारत में पहले से मौजूद विकलांग पूँजीवाद के ऊपर, गमला पूँजीवादी समाज के ऊपर, एक नयी व्यवस्था– आर्थिक नव उपनिवेशवादी व्यवस्था आरोपित की जा रही है। इसका उद्देश्य साम्राज्यवादी समूह और इनके सहयोगी भारतीय सरमायादारों की आवश्यकताओं और प्राथमिकताओं को पूरा करना है। भारतीय जनता की आवश्यकताओं की पूर्ति या भारत के विकास से इसका कोई लेना-देना नहीं है। यह भारतीय समाज के विकास की आन्तरिक गति को बल नहीं प्रदान करता बल्कि उसकी रही-सही आन्तरिक गति को भी कुचल डालता है।

यह नयी व्यवस्था ईस्ट इण्डिया कम्पनी और ब्रिटिश उपनिवेशवादियों द्वारा लादी गयी व्यवस्था से भिन्न है। इन दोनों व्यवस्थाओं के बीच देश और काल का काफी अन्तर भी है। यह नयी व्यवस्था सर्वग्रासी और कहीं ज्यादा विनाशकारी है। भारत के सरमायेदार यहाँ की संसदीय राजनीतिक पार्टियाँ, समूचा सरकारी तन्त्र और बुद्धिजीवियों का एक बहुत बड़ा तबका, जिसमें कल तक नेहरू के समाजवाद का गीत गाने वाले लोग भी शामिल हैं, इस व्यवस्था के प्रबल समर्थक हैं क्योंकि इसी से उनका स्वार्थ सिद्ध होता है। इस आरोपित व्यवस्था में साम्राज्यवादी समूह के सामाजिक आधार हैं–इस देश के बड़े सरमायादार, बड़े व्यापारी, बड़े ठेकेदार, शेयर-दलाल और सट्टेबाज, राजनीतिक पार्टियों के चोटी के नेता, बड़े अपराधी और माफिया, नौकरशाह, बहुराष्ट्रीय निगमों के प्रबन्धक, कुछ अपवादों को छोड़कर सभी शीर्षस्थ बुद्धिजीवी, कलाकार तथा लाखों की पगार पाने वाले शीर्षस्थ मीडियाकर्मी और पत्रकार। इन सबकी कुल आबादी बमुश्किल 5 करोड़ है।

बेशक ब्रिटिश साम्राज्यवादियों के सामाजिक आधार की तुलना में इनकी संख्या कहीं ज्यादा है, लेकिन देश की पूरी आबादी के लिहाज से ये मुट्ठीभर ही हैं।

10 करोड़ लोग ऐसे भी हैं जो अपनी आर्थिक-सामाजिक स्थिति और सामान्य उपभोक्ता के तौर पर देश की क्रान्तिकारी आम जनता तथा साम्राज्यवादी समूह और उसके सामाजिक आधार के बीच ढुलमुल खड़े हैं।

मेहनतकश, मजदूर, जमीन के छोटे टुकड़े से चिपके कंगाल और बदहाल किसान, दलित, आदिवासी और पिछड़े वर्ग की भारी आबादी, महिलाएँ और छात्रों-नौजवानों का बहुत बड़ा हिस्सा– ये सभी मिलकर क्रान्तिकारी जनता और क्रान्तिकारी शक्ति का निर्माण करते हैं।

आज के भारतीय समाज में दो बुनियादी अन्तरविरोध हैं। पहला, साम्राज्यवादी समूह (खासकर बड़े साम्राज्यवादी देश और उनमें भी अमरीका)और शत्रु-सहयोगी भारतीय पूँजीपति वर्ग के गठजोड़ के साथ भारतीय जनता का अन्तरविरोध। दूसरा, सामन्तवाद के साथ भारतीय जनता का अन्तरविरोध। इनमें से पहला अन्तरविरोध प्रधान अन्तरविरोध है जिसके समाधान से भारतीय जनता की सभी समस्याओं का समाधान होगा।

उपनिवेशवादी शासन काल से लेकर अब तक के इतिहास के पूरे दौर में कभी सामन्तवाद के साथ, कभी उसके बदले हुए रूप के साथ तो कभी उसके अवशेषों के साथ भारतीय जनता का अन्तरविरोध किसी न किसी रूप में बना रहा। चूँकि इस पूरे दौर में सामन्तवाद की प्रकृति और उसका स्वरूप एक समान नहीं रहा इसलिए उसके साथ भारतीय जनता के अन्तरविरोध की प्रकृति में भी भिन्नताएँ रही हैं।

आज सामन्तवाद और उसके अवशेषों के स्वरूप में काफी परिवर्तन हो चुका है और परिवर्तन का यह सिलसिला अभी भी जारी है। लेकिन फिर भी, भूमि-सुधार भारतीय समाज की कार्यसूची पर आज भी महत्वपूर्ण स्थान रखता है। देश-काल और परिस्थिति में बदलाव के चलते इसके स्वरूप में पहले की अपेक्षा काफी भिन्नता होगी।

इस नयी उत्पादन प्रणाली, इस नयी गुलामी को आरोपित करके बहुत ही लम्बे समय से संक्रमणकाल की दुस्सह पीड़ा झेल रहे भारतीय समाज को दु:ख के एक नये पारावार में धकेल दिया गया है जो पहले से हजार गुना ज्यादा त्रासद है। मेहनतकश जनता पर उत्पीड़न और दमन बढ़ता जा रहा है। मजदूरों की हड्डियों का चूरा बनाकर मेगामार्टों में बेचा जा रहा है तथा अर्द्धभुखमरी के कगार पर पड़े, जैसे-तैसे जीवन बिता रहे किसानों के मुँह से निवाला छीना जा रहा है। इस कुकर्म और षड्यन्त्र में भाजपा और कांग्रेस से लेकर संसदीय वामपन्थ तक, सभी पार्टियाँ शामिल हो गयी हैं।

अन्तरराष्ट्रीय और "राष्ट्रीय" पूँजी के विस्तार और मुनाफे के लिए सभी नियम-कानून ताक पर रख कर लाठी और गोली के बल पर जनता का उत्पीड़न और दमन शुरू हो चुका है। इस बात की सम्भावना बनने लगी है कि जल्दी ही भारतीय राज्य पुलिस और सैनिक राज्य में तब्दील हो जाये। इसके विकास की गति की यह स्वाभाविक परिणति भी है।

लेकिन जहाँ दमन होगा, वहाँ प्रतिरोध भी होगा। प्रतिरोध की शुरुआत हो चुकी है। कलिंगनगर से दादरी तक, जामनगर से मुम्बई तक असन्तोष की आग भड़क उठी है। देश के विभिन्न हिस्सों से होते हुए इस आग की लपटें सिंगूर और नन्दीग्राम तक पहुँच चुकी हैं।

वर्तमान समय का प्रमुख अन्तरविरोध और इसके साथ-साथ अन्य अन्तरविरोध भी दिन-प्रतिदिन तीव्र से तीव्रतर होते जा रहे हैं। जनता का प्रतिरोध संघर्ष अभी शुरुआती दौर में है और मुख्यत: स्वत:स्फूर्त है। लेकिन जल्दी ही यह सुगठित और सुसंगत संघर्ष का रूप ले लेगा।

आज के दुश्मन– अन्तरराष्ट्रीय पूँजी और उसके देशी सहयोगी, दोनों ही कहीं ज्यादा क्रूर, ज्यादा निरंकुश और ज्यादा धूर्त हैं तथा जनता को ठगने और छलने में हर तरह से माहिर हैं। ये आधुनिक तकनीक से सुसज्जित हैं और एक विशाल प्रचार तन्त्र के मालिक हैं। इसलिए **जनता की शक्तियों, उनके विचारकों और चिन्तकों और राजनीतिक रहनुमाओं को अपने को हर तरह से सुसज्जित करना होगा। सिद्धान्त में दृढ़ रहते हुए, सार्वभौम सच्चाइयों पर अडिग रहते हुए, अतीत से सबक लेकर संघर्ष के हर रूप और युद्ध की हर कला का इस्तेमाल करने के लिए तैयार रहना होगा। अफगानिस्तान, इराक और लेबनान ने साम्राज्यवाद की सीमाओं को रेखांकित कर दिया है। आने वाले समय में भारत और तीसरी दुनिया के अन्य देश साम्राज्यवाद की कब्रगाह बन सकते हैं।** ▣

उत्पादन प्रणाली के बारे में

इन्सान की जिन्दगी के लिए भोजन, कपड़ा और मकान जैसी चीजें बेहद जरूरी होती हैं। इनकी पूर्ति किये बिना वह कोई भी सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक या सांस्कृतिक कार्रवाई नहीं कर सकता। कहावत है कि 'भूखे भजन न होहिं गोपाला।'

इंसान और जानवर में बुनियादी फर्क यहीं है कि जानवर प्रकृति से मिलने वाली चीजों को ज्यों का त्यों इस्तेमाल कर लेता है जबकि इंसान अपनी मेहनत और खुद के बनाये औजारों का इस्तेमाल करके प्रकृति से मिलने वाली चीजों को अपने लिए उपयोगी बना लेता है। मिसाल के तौर पर, बया खूबसूरत घोंसला बुनती है लेकिन इंसान की तरह वह हथकरघे का इस्तेमाल नहीं करती। अपने लिए जरूरी चीजें तैयार करने की इसी कार्रवाई को **उत्पादन** कहते हैं, जो **इंसान की दूसरी सभी कार्रवाइयों की बुनियाद है।**

किसी भी समाज का स्तर और उसका सामाजिक ढाँचा इसी बात पर निर्भर करता है कि उस समाज में किन-किन चीजों का और किस तरीके से उत्पादन होता है तथा समाज में रहने वाले लोगों के बीच उन चीजों का आपस में किस तरह बँटवारा और लेन-देन होता है। यानी **लोग जिस तरीके से अपने लिए जरूरी चीजों का उत्पादन और वितरण करते हैं उसे ही उत्पादन प्रणाली कहते हैं।**

उत्पादन प्रणाली में दो चीजें शामिल हैं– पहला, **उत्पादक शक्तियाँ** और दूसरा, **उत्पादन सम्बन्ध।** उत्पादन करने के लिए जरूरी औजारों (हल-बैल, हथकरघा, ट्रैक्टर, मशीन) और दूसरे साधनों से अपने आप ही उत्पादन नहीं हो जाता। उत्पादन के लिए ऐसे लोगों की जरूरत होती है जो उन साधनों को उत्पादन के काम में इस्तेमाल करें, जैसे– किसान, दस्तकार, खेत मजदूर, फैक्ट्री मजदूर, इत्यादि। **उत्पादक शक्तियों में उत्पादन के साधन और उत्पादन करने वाले मेहनतकश दोनों शामिल होते हैं।** उत्पादक शक्तियों का विकास ही समाज के विकास को प्रेरित और संचालित करता है।

कोई भी इंसान अकेले-अकेले उत्पादन नहीं कर सकता। उत्पादन एक सामाजिक कार्रवाई है। एक दूसरे के साथ मिलजुल कर, और एक दूसरे के भरोसे रह कर ही इन्सान उत्पादन में अपना हाथ बँटाता है। **इस तरह उत्पादन के दौरान इंसानों के बीच आपस में जो रिश्ता कायम होता है उसे ही उत्पादन सम्बन्ध कहते हैं।** यह सम्बन्ध सम्पत्ति या जायदाद का रिश्ता होता है यानी **उत्पादन के साधनों पर किसका मालिकाना हक है और कौन उस पर अपनी मेहनत लगाकर उत्पादन करता है,** इसी के आधार पर समाज में किसी इंसान की हैसियत और उत्पादन में उसका हिस्सा तय होता है। समाज विकास की किसी खास मंजिल पर जैसे उत्पादन सम्बन्ध कायम होते हैं उसी से उस दौर के आर्थिक ढाँचे का निर्धारण होता है।

सामाजिक विकास के हजारों साल पुराने इतिहास पर नजर डालें तो हमें उत्पादन प्रणाली में लगातार बदलाव और विकास देखने को मिलता है। कहाँ तो पुराने जमाने के लोग जो कन्द-मूल फल और जानवरों के शिकार पर या आगे चल कर कुदरती खेती और दस्तकारी पर निर्भर थे और कहाँ ट्रैक्टर, ट्यूबवेल और फैक्ट्रियों की बड़ी-बड़ी मशीनों के सहारे बड़े पैमाने का उत्पादन करके जिन्दगी को दिनोंदिन बेहतर बनाने के उपाय हो रहे हैं। लेकिन इतिहास इस बात का गवाह है कि समता पर आधारित प्राचीन समाज आगे चलकर वर्गों में बँट गया, उत्पादन के साधनों पर कुछ लोगों या वर्गों का निजी मालिकाना कायम हो गया। तभी से **वर्गों के बीच की लड़ाई शुरू हुई जिसने इतिहास को क्रमशः उन्नत मंजिल में ले जाने का काम किया।**

समाज विकास की किसी खास मंजिल में जिन वर्गों का उत्पादन के साधनों पर मालिकाना होता है, वे ही उस समाज व्यवस्था के शासक वर्ग होते हैं तथा राजनीति, संस्कृति, शिक्षा, विचारधारा और पूरे सामाजिक ढाँचे को वे ही नियन्त्रित और संचालित करते हैं।

इंसानियत के इतिहास में अब तक पाँच तरह की

उत्पादन प्रणाली इस क्रम में सामने आयी है– आदिम साम्यवादी समाज, दास समाज, सामन्ती समाज, पूँजीवादी समाज और समाजवादी समाज। लेकिन किसी भी समाज में विकास के किसी खास मोड़ पर **विशुद्ध रूप से इनमें से किसी एक तरह की उत्पादन प्रणाली का होना सम्भव नहीं। पिछली उत्पादन प्रणाली के अवशेष और भावी उत्पादन प्रणाली के भ्रूण तथा दो उत्पादन प्रणालियों के बीच के संक्रमणकालीन रूप भी समाज में मौजूद रहते हैं।**

सामन्ती समाज में दास समाज के अवशेष (अर्द्धभूदास) और भावी पूँजीवादी समाज के भ्रूण(बढ़ता श्रम विभाजन, माल उत्पादन, व्यापार इत्यादि) मौजूद होते हैं। फिर भी उस मंजिल में जो उत्पादन प्रणाली प्रबल होती है और जिस वर्ग का प्रभुत्व कायम होता है, उसी के आधार पर समाज की मंजिल का निर्धारण होता है।

हमारे देश में अंग्रेजों के आने और देश के गुलाम बना लिये जाने के चलते इतिहास के विकास की स्वाभाविक गति बाधित हुई और इसने ढेर सारी विकृतियों को जन्म दिया। आज भी हमारे देश में ढेर सारे सामन्ती अवशेषों और साम्राज्यवादी दबावों से युक्त एक विकृत पूँजीवादी समाज व्यवस्था मौजूद है। अन्धों के हाथी की तरह नहीं बल्कि समग्रता में देखा जाये तो तमाम विकृतियों और पीड़ादायी गतिरोधों के बावजूद हमारे वर्तमान समाज में देशी-विदेशी पूँजी के गठजोड़, और उसके वर्चस्व वाली, मूलत: पूँजीवादी उत्पादन प्रणाली मौजूद है। यह विश्व साम्राज्यवादी व्यवस्था का अविभाज्य अंग है और इसी के अनुरूप हमारे देश की वर्तमान समाज व्यवस्था आर्थिक नव-उपनिवेशिक व्यवस्था है। ■

58% भारतीय बेरोजगार

राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण की ताजा रिपोर्ट बताती है कि 2004-05 में भारत में काम करने की उम्र वाले 58% लोग बेरोजगार थे।

ग्रामीण क्षेत्र की तुलना में शहरों में बेरोजगारी ज्यादा है– ग्रामीण क्षेत्र में बेरोजगारी 56% है जबकि शहरों में 100 में से 63 लोग बेरोजगार हैं।

पुरुषों की तुलना में महिलाएँ ज्यादा संख्या में बेरोजगार हैं और ग्रामीण क्षेत्र की तुलना में शहरी क्षेत्र की महिलाएँ ज्यादा संख्या में बेरोजगार हैं।

हाई स्कूल या उससे अधिक पढ़े-लिखे लोगों में बेरोजगारी की दर कम पढ़े-लिखे और अशिक्षित लोगों की तुलना में कहीं ज्यादा है।

कैसा लोकतन्त्र

हुण्डई कम्पनी के चेयरमैन को दक्षिणी कोरिया में गबन और घोटाले के अपराध के लिए तीन साल की सजा हुई है।

लेकिन हमारे देश में संगीन से संगीन अपराध करने वाले किसी पूँजीपति को सजा हो, ऐसा सोचा भी नहीं जा सकता।

बिलगेट्स को भी अमरीका में सजा हुई थी लेकिन हमारे देश में उसकी पूजा होती है। हाल ही में एनरॉन के एक बड़े अधिकारी को भी अमरीकी अदालत ने सजा सुनायी। लेकिन हमारे देश में भोपाल गैस काण्ड के दुर्दान्त अपराधी यूनियन कार्बाइड के डायरेक्टर वारेन एण्डरसन को गिरफ्तार करने के बजाय सरकार ने उसे विशेष विमान से अमरीका पहुँचवा दिया।

हमारे देश का लोकतन्त्र दरअसल अमीरों की हिफाजत करने वाला तन्त्र है। सरकार, कोर्ट, पुलिस-प्रशासन और मीडिया– सभी उनके सेवक हैं।

आर्थिक विकास की असलियत: गमला पूँजीवाद से जूठन पूँजीवाद की ओर

■ दिगम्बर

आज हमारे देश में एक विचित्र विरोधाभास दिखायी दे रहा है।

सरकार और सरकारी–गैर सरकारी प्रचार माध्यम दिन–रात एक ही गीत गाये जा रहे हैं कि भारतीय अर्थव्यवस्था तेजी से विकास कर रही है। लेकिन हमारे देश की जमीनी हकीकत एक अलग ही मंजर पेश कर रही है।

सरकार कहती है कि आर्थिक विकास दर 9 फीसदी से ऊपर पहुँच गयी है और जल्दी ही यह 10–11 फीसदी तक पहुँचने वाली है। शेयर बाजार का सूचकांक 14,000 तक का आँकड़ा पार कर गया है। उसका दावा है कि जल्दी ही हमारी सभी समस्याएँ हल हो जायेंगी और भारत एक सम्पन्न राष्ट्र, एक महाशक्ति बन जायेगा। रेडियो, टीवी चैनल, अखबार, पत्र–पत्रिकाएँ, व्यवस्थापोषक बुद्धिजीवी, साम्राज्यवादी समूह के देशों की सरकारें, बहुराष्ट्रीय निगमों के प्रबन्धक और प्रवक्ता– सभी सुर में सुर मिला कर भारत की समृद्धि और विकास का गुणगान करने में लगे हैं।

इस प्रशस्ति–गान में कितनी सच्चाई है और कितना झूठ? क्या हमारे देश की वास्तविक स्थिति से, यहाँ के जनसाधारण की जिन्दगी से इनका कोई मेल है?

इसमें कोई सन्देह नहीं कि विकास के जो दावे किये जा रहे हैं, वे काफी हद तक सच हैं। लेकिन यह भी सच है कि इनके जरिये जो मोहक तस्वीर प्रस्तुत की जा रही है, वह अत्यन्त भ्रामक है और उसके पीछे भारतीय जीवन की ढेर सारी विद्रूप और क्रूर सच्चाइयाँ छिपी हुई हैं। आइये, पहले उस वैभवपूर्ण और मनोहर तस्वीर पर ही एक नजर डालते हैं जो बमुश्किल 5–10% अमीर आबादी की जिन्दगी से सरोकार रखती है।

टाटाओं, बिड़लाओं और अम्बानियों की पूँजी पिछले सोलह वर्षों में बेतहाशा बढ़ी है। वास्तविक कारोबार से होने वाले मुनाफे के अलावा शेयर बाजार में उछाल और सट्टेबाजी के चलते पिछले एक वर्ष में देश की 10 बड़ी कम्पनियों की पूँजी में 3 लाख 50 हजार करोड़ रुपये की बढ़ोतरी हुई। अर्थव्यवस्था के लगभग सभी क्षेत्रों में विदेशी पूँजी लग रही है। अनुमान है कि 2006 में 15 अरब डॉलर का प्रत्यक्ष विदेशी निवेश हुआ है। विदेशी मुद्रा भण्डार 177 अरब डॉलर पहुँच गया है। कुछ लाख से लेकर करोड़ों रुपये तक की कीमत वाली नयी–नयी डिजाइनों की कारें बनने लगी हैं या बनने वाली हैं। बड़े शहरों में ऐसे मेगामार्ट और मल्टीप्लेक्स बने हैं जिधर आम आदमी झाँक भी नहीं सकता। हर शहर में विलासिता के सामानों से सजे, चमक–दमक से भरे विदेशी कम्पनियों के नये–नये शो रूम खुल रहे हैं। ऐसे–ऐसे विदेशी सामानों का विज्ञापन करते नये–नये मॉडल प्रचार माध्यमों में दिखायी देते हैं जो पहले हमारी कल्पना से बाहर थे। पाँच सितारा होटल और रिसॉर्ट, विदेशी रेस्तराँ, अपोलो और एस्कॉर्ट जैसे अस्पताल, राजसी ठाठ–बाट वाले 'इण्टरनेशनल' स्कूल, वाटर पार्क, डिस्कोथेक, गोल्फ के मैदान, फिटनेस क्लब और मसाज पार्लर की बाढ़ सी आई हुई है। विश्वविद्यालयों और महाविद्यालयों में विदेशी चाल–चलन, आचार–व्यवहार और बहुराष्ट्रीय कम्पनियों की जरूरतों के अनुरूप नये–नये तरह के कोर्स शुरू हो रहे हैं। कुल मिलाकर, देश के 15 फीसदी धनाड्यों के लिए चमक–दमक, वैभव–विलास और शानो–शौकत से भरपूर एक नये संसार , एक स्वर्ग लोक का निर्माण हो रहा है।

दूसरी ओर 85 फीसदी मेहनतकश जनता की जिन्दगी दिनों–दिन नरक से भी बदतर होती जा रही है। डेढ़ लाख से भी ज्यादा किसान पिछले 10 वर्षों में आत्महत्या कर चुके हैं। विशेष आर्थिक क्षेत्र बनाने और नये शहर बसाने के नाम पर देश भर में 300 से भी अधिक इलाकों के किसानों को उनकी

जमीन से बेदखल करके दर-दर की ठोकरें खाने को मजबूर किया जा रहा है। विरोध करने पर उन्हें लाठी-गोली और जेल मिल रही है। जबरन उनसे जमीनें छीन कर सरकार उनको कौड़ियों के मोल देशी-विदेशी पूँजीपतियों को भेंट कर रही है। जमीन की इस बन्दरबाँट को देखते हुए आदि गोदरेज जैसे उद्योगपति भी भारी मुनाफा देनेवाले जमीन और इमारत (रियल इस्टेट) के धन्धे में उतरने का मन बना चुके हैं।

कल-कारखाने बन्द होने के चलते भारी संख्या में मजदूर बेरोजगार हो गये हैं। बेरोजगारों की नयी फौज भी लगातार बढ़ती जा रही है। राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण के अनुसार देश भर में काम करने की उम्र वाले 58% लोग बेरोजगार हैं। फैक्टरियों और अन्य संस्थानों में काम करने वाले मजदूरों-कर्मचारियों के लिए आम तौर पर कोई श्रम कानून, कोई सेवा शर्त लागू नहीं है। अस्थायी, ठेका और दिहाड़ी मजदूर के रूप में उनका बेपनाह शोषण हो रहा है। अन्तरराष्ट्रीय श्रम संगठन की ताजा रिपोर्ट बताती है कि पिछले 10 वर्षों में श्रमिकों की उत्पादकता 84% बढ़ी है जबकि उनकी वास्तविक मजदूरी में 22% की गिरावट आयी है। इसका सीधा सा अर्थ है–कम से कम मजदूरी देकर उनसे अधिक से अधिक काम लेना। दूसरों के लिए स्वर्ग का निर्माण करने वाले मजदूरों की अपनी जिन्दगी नरक से भी बदतर होती जा रही है। गगनचुम्बी इमारतों और पॉश कॉलोनियों के बाशिन्दों की जिन्दगी की रौनक बनाये रखने वाले मेहनतकशों के लिए हर शहर में ऐसी झुग्गी-झोपड़ियाँ आबाद होती और उजाड़ी जाती रहती हैं, जहाँ साक्षात नरक का दर्शन किया जा सकता है। दिल्ली के पास नोएडा के एक आलीशान बंगले से एक औरत और कई बच्चे-बच्चियों के कंकाल मिले हैं। पिछले 2 सालों के भीतर निठारी और आसपास के 30 से भी अधिक बच्चे गायब हुए लेकिन पुलिस ने कोई कार्रवाई करना तो दूर, उनकी एफ.आई.आर. तक दर्ज नहीं की। खबर है कि हत्यारे ने कई महीने पहले पुलिस को ढाई लाख रुपये देकर मामले को रफा-दफा कर दिया था। यह वही नोएडा है जहाँ से अभी कुछ ही महीने पहले एक 'बड़े आदमी' का बच्चा गायब हुआ था और फिरौती देकर बच्चा वापस हो जाने के बावजूद पुलिस प्रशासन और मीडिया ने रात-दिन एक कर दिया था। कानपुर से 132 बच्चों के गायब होने की खबर आयी है। हो सकता है कि कल उनके भी कंकाल किसी नाले से बरामद हों। बंगलोर में हर दिन 18-19 आदमी गायब हो रहे हैं। देश के कई अन्य इलाकों से भी ऐसी ही ढेरों खबरें आ रही हैं।

किसी भी देश, समाज या परिवार में बच्चों की दशा कैसी है, यह उसकी असलियत का आईना होता है। उत्तरप्रदेश के मुख्यमन्त्री ने यह स्वीकार किया है कि प्रदेश में 35,000 से भी ज्यादा बच्चे गायब हैं। यह समाज व्यवस्था इतनी बड़ी संख्या में बच्चों को निगल जाती है। तान्त्रिक बच्चों की बलि दे देते हैं, उनसे भीख मँगवायी जाती है, वेश्यावृत्ति करायी जाती है, उन्हें इलाज और शिक्षा से वंचित रखा जाता है। ढेर सारी रिपोर्टें इस बात की पुष्टि करती हैं कि भारत बच्चों के लिए अत्यन्त असुरक्षित और खतरनाक जगह है। दुनिया भर में सबसे अधिक भूखे, कुपोषित और रोग ग्रस्त बच्चे भारत में हैं। करोड़ों बच्चे खेलने-पढ़ने की उम्र में कठिन और जोखिम भरे काम करके पेट भरने को मजबूर हैं।

दलितों पर पुराने जमाने से चला आ रहा दमन, उत्पीड़न और अत्याचार आज भी जारी है। औरत आज भी गुलाम है। जिस्मफरोशी का धन्धा बड़े पैमाने पर फल-फूल रहा है। सती के नाम पर औरतों को जिन्दा जलाने की पुरानी प्रथा पुनर्जीवित की जा रही है। लाखों की संख्या में अजन्मी बेटियों को गर्भ में ही मार दिया जाता है। घर-बाहर हर जगह औरतों पर होने वाले अत्याचार दिनोंदिन बढ़ते ही जा रहे हैं।

14 करोड़ मुसलमान आबादी लगातार अलगाव में पड़ती जा रही है। एक पार्टी, जो दिन-रात देशभक्ति के गीत गाती है और उसे ही ओढ़ती-बिछाती है, वह दंगे करवाती है, मुसलमानों का कत्लेआम करवाती है। एक मुख्यमन्त्री इन कामों का संचालन करता है और दिल्ली में बैठी सरकार उसकी पीठ थपथपाती है। इनकी देशभक्ति का महान कर्त्तव्य दंगे करवाना, मुसलमानों की हत्या करना, ईसाइयों की हत्या करना और हिन्दू धर्म के प्रतिगामी और सड़े-गले जीवन-मूल्यों को पुनर्स्थापित करना भर रह गया है। सभी पार्टियाँ इन्हे बर्दाश्त करती हैं, इनकी कार्रवाइयों की मूकदर्शक बनी रहती हैं।

कश्मीर और पूर्वोत्तर के राज्य वर्षों से सुलग रहे हैं। वहाँ लगभग 6 लाख फौज तैनात की गयी है, जो सैनिकों की कुल संख्या की लगभग आधी है। सेना के जवानों में विक्षिप्तता, पलायन और आत्महत्या की प्रवृत्ति लगातार बढ़ती जा रही है। उनके द्वारा अपने

अधिकारियों और सहकर्मियों की हत्या और आत्महत्या की घटनाएँ बड़े पैमाने पर हो रही हैं। 6 हजार से भी अधिक फौजी ड्यूटी छोड़कर भाग चुके हैं।

दर्जनों हत्याएँ किये हुए अपराधी जिन्हें जेल की सलाखों के पीछे होना चाहिए था, संसद और विधानसभाओं में बैठते हैं और मन्त्रिमण्डल की शोभा बढ़ाते हैं। अपवादों को छोड़ कर लगभग सभी पार्टियों के नेता, नौकरशाह और व्यापारी भ्रष्टाचार में आकण्ठ डूबे हुए हैं। संसदीय वामपन्थी पार्टियाँ जिनकी कुछ साख बची हुई थी, सुधारवादी तरीके से ही सही जनता के हक में कुछ करती थीं, अब उनके पास भी कोई अलग कार्यसूची नहीं रही। उनके भी बुरे दिन शुरू हो गये हैं। सिंगूर और नन्दीग्राम की घटनाएँ इसी ओर संकेत करती हैं।

ऐसी हजारों बातें हैं जिनका जिक्र किया जा सकता है और जो किसी भी देश और समाज के लिए बहुत ही शर्मसार करने वाली हैं। इन जमीनी सच्चाइयों के ज्यादा विस्तार में जाने की भी जरूरत नहीं क्योंकि देश की जनता इसे अपनी रोजमर्रा की जिन्दगी में झेल रही है। इन बातों से शायद ही कोई इनकार करे। अखबार, रेडियो और देशी-विदेशी टीवी चैनल ऐसी खबरों से भरे होते हैं, सरकार भी इन सारी बातों को स्वीकार करती है। सरकारी गैर सरकारी सर्वेक्षण, अध्ययन और रिपोर्टें इनकी पुष्टि करते हैं। राजनीतिक पार्टियाँ इन समस्याओं का दोष भले ही एक-दूसरे पर मढ़ती रहती हैं, लेकिन यथार्थ से कोई भी इनकार नहीं करता।

सवाल यह है कि विकास के नाम पर हमारे देश में आज जो कुछ भी हो रहा है, वह किसके लिए है? यह देश किसका है? क्या यह केवल साम्राज्यवादी समूह के सरमायादारों और उनके सहयोगी भारतीय सरमायादारों का है? क्या यह केवल उन सरमायादारों की सेवा में लगे सैनिक-असैनिक नौकरशाहों, नेताओं, बुद्धिजीवियों और अन्य परजीवी वर्गों का देश है जो मजदूरों-किसानों और अन्य मेहनतकशों के खून-पसीने की कमाई को लूटकर ऐश करते हैं और विलासिता के महल खड़े करते हैं?

हमने नेहरू का 'समाजवादी' पूँजीवाद देखा है। अब हम टाटा-बिड़ला-अम्बानी और उनके विदेशी आकाओं द्वारा प्रस्तोतित-प्रस्तावित 'ट्रिकिल डाउन' पूँजीवाद देख रहे हैं। हमारे प्रधानमन्त्री और उनके सहयोगी अर्थशास्त्री दिन-रात इस बात का प्रचार करते रहते हैं कि जब देशी-विदेशी पूँजीपतियों की सम्पत्ति बढ़ेगी, उनकी सम्पन्नता बढ़ेगी तो स्वाभाविक तौर पर वह रिस-रिसकर नीचे जायेगी और भारत की आम जनता को भी उसका लाभ मिलेगा। इसे ही वे 'ट्रिकिल डाउन' अर्थव्यवस्था कहते हैं। सही मायने में यह जूठन पूँजीवाद है अर्थात भारत के 90% लोग अब उच्छिष्ट भोजन पर पलेंगे। उनका जीवन स्तर सुधारने के लिए अलग से कुछ करने की जरूरत नहीं। सदियों से हमारे देश में हिन्दू आबादी के एक हिस्से को जूठे, उच्छिष्ट भोजन पर निर्भर रखा गया। शायद उसी के संचित पाप का फल है कि देश के 90% लोग अब देशी-विदेशी सरमायादारों की जूठन पर गुजारा करेंगे।

और इस पर तुर्रा यह कि सरकार जल्दी ही भारत को एक सम्पन्न देश और महाशक्ति बना देने का दावा करती है।

अब इस 'ट्रिकिल डाउन' पूँजीवाद के बारे में कुछ और बातें।

पहले इस बात की चर्चा की गयी है कि 9% विकास दर और 14 हजार से ऊपर शेयर बाजार सूचकांक पहुँचने का लाभ देश के 10% ऊपरी तबके के परजीवी वर्ग तक ही सीमित है। इन जोंकों का आपस में चोली-दामन का साथ है। देश में विलासिता के जो भी साधन तैयार हो रहे हैं या विदेशों से मँगवाये जा रहे हैं उनका उपयोग करने वाला समाज का यही परजीवी वर्ग है।

पिछले 16 वर्षों से देश पर जो नयी व्यवस्था आरोपित की जा रही है, उसमें इन मुट्ठीभर परजीवियों की सम्पन्नता तो बढ़ी है लेकिन उसका नीचे तक रिसाव होने और उससे आम आदमी की जिन्दगी में खुशहाली आने की बातें क्रूर मजाक ही साबित हुई हैं। वैश्वीकरण के पैरोकार भी अब इस बात को स्वीकार करने लगे हैं कि साम्राज्यवादी वैश्वीकरण की नीतियों के चलते अलग-अलग देशों के बीच और एक देश के भीतर अमीर और गरीब आबादी के बीच की खाई लगातार बढ़ती जा रही है।

नोबेल पुरस्कार विजेता अमरीकी अर्थशास्त्री जोसेफ स्टिगलिट्ज जो कई शीर्षस्थ साम्राज्यवादी संस्थाओं से जुड़े रहे हैं और वैश्वीकरण के समर्थक हैं, अभी हाल ही में भारत आये थे। एक साक्षात्कार में उन्होंने बताया कि **"यह बहुत ही स्पष्ट है कि ट्रिकिल डाउन अर्थव्यवस्था कारगर साबित नहीं हुई है। यह कहीं भी कारगर नहीं हुई। अमरीका में भी यह कारगर नहीं हुई। वहाँ का सकल घरेलू उत्पाद लगातार ऊपर जा रहा है, इसके बावजूद अमरीका की अधिकांश जनता 6 साल पहले की तुलना में आज कहीं बदतर हालात में जी रही है।"**

आज हमारे देश में क्या हो रहा है? भारत के पहले से ही हजारों समस्याओं से ग्रस्त, विकलांग गमला पूँजीवाद (फ्लावार पॉट कैपिटलिज्म) के ऊपर

एक ऐसी व्यवस्था आरोपित की जा रही है जिसे, जूठन पूँजीवाद (ट्रिकिल डाउन कैपिटलिज्म) नाम देना ही उचित है। यह नयी आरोपित उत्पादन प्रणाली और उसके साथ-साथ उभरता सामाजिक, सांस्कृतिक ताना-बाना हमारे देश के हित में कतई नहीं है। यह देश को सैकड़ों साल पीछे धकेल देगा और विपुल प्राकृतिक सम्पदाओं से भरपूर हमारी हरी-भरी धरती को अकाल, भुखमरी और तबाही का पर्याय बना देगा।

साम्राज्यवादी समूह और उनके सहयोगी देशी सरमायादारों की प्राथमिकता अब देश का समग्र विकास और जनता की जिन्दगी में खुशहाली लाना नहीं है। साम्राज्यवादी यहाँ पूँजी के अति संचय और पुनर्निवेश की अपनी समस्या का हल करने आये हैं। कच्चे माल के रूप में देश के विपुल प्राकृतिक संसाधन और उत्पादन के काम में लगने के लिए करोड़ों बेरोजगार उन्हें कौड़ियों के मोल उपलब्ध हैं। साथ ही देश के 15-20 करोड़ उपभोक्ताओं का बाजार भी है। एक अरब से भी अधिक आबादी वाले देश में भले ही यह संख्या थोड़ी है लेकिन साम्राज्यवादियों के लिए ग्राहकों की यह नयी जमात, काफी बड़ी है। 80-85 करोड़ भारतीय जो इस नयी व्यवस्था और उसके बाजार-तन्त्र से बहिष्कृत हैं, उनकी क्रयशक्ति बढ़ाना और उन्हें अपने बाजार में शामिल करना उनका सिरदर्द नहीं।

साम्राज्यवादी देशों के सरमायादारों से साँठ-गाँठ करके भारतीय सरमायादार भी उन्नत तकनीक और पूँजी के अभाव तथा मुनाफे के विस्तार की अपनी समस्या का समाधान कर रहे हैं। दोनों का एक ही स्वार्थ है–इस देश की जनता की हड्डियों का चूरा बनाकर, उनके खून और मज्जा को निचोड़-निचोड़ कर अपने मुनाफे की हवस को पूरा करना।

देश का कृषि क्षेत्र जिस पर यहाँ की दो-तिहाई आबादी प्रत्यक्ष रूप से निर्भर है, आज गम्भीर संकट का शिकार है। इस संकट का समाधान करना देश के हुक्मरानों की कार्यसूची पर कहीं दूर-दूर तक नहीं। इसके विपरीत वे इस तैयारी में लगे हुए हैं कि खेती को देशी-विदेशी सरमायादारों की लूट का चरागाह कैसे बनाया जाय।

उद्योग-धन्धों का विस्तार करने और उत्पादन बढ़ाने पर जोर देने के बजाय जल्दी से जल्दी और बेहिसाब मुनाफा देने वाले क्षेत्रों को ही प्राथमिकता दी जा रही है। नये उद्योगों में उच्च तकनीक और पूँजी केन्द्रित होने के चलते रोजगार के नये अवसर पैदा होने की सम्भावना बहुत कम है। ऐसी स्थिति में जब यह नयी व्यवस्था लोगों को सार्थक और सम्मानजनक रोजगार उपलब्ध कराने की बजाय उनके पुराने धन्धों और जीविका के साधनों को तबाह करने पर आमादा है तब 'ट्रिकिल डाउन' जैसी आर्थिक बकवास का भला क्या मतलब है?

इस जूठन पूँजीवादी व्यवस्था में हमारे देश के मुट्ठीभर परजीवी वर्गों का स्थान तो सुरक्षित है, लेकिन इसमें आम आदमी की जगह कहाँ होगी? मध्यम वर्ग और निम्न मध्यम वर्ग की नयी पीढ़ी के एक हिस्से को इन परजीवियों के महलों में झाड़ू लगाने, चौकीदारी करने और उनकी सेवा-टहल का काम मिल जायेगा या वे बड़े होटलों में खाना बनाने-खिलाने, प्लेट धोने, बिस्तर बदलने, मालिश करने या ऐसे ही ढेर सारे कामों में लग जायेंगे। बड़े अस्पतालों में उन्हें नर्स, वार्ड ब्वाय, स्वीपर और अन्य कई तरह के काम मिल जायेंगे। कारों के ड्राइवर, उनकी सफाई और मरम्मत करने वाले, गोल्फ क्लबों में बटलर और ट्राली मैन, मेगामार्ट में सामान बेचने वाले, पहरेदारी करने वाले और घर-घर जा कर सामान पहुँचाने वाले डिलीवरी ब्वाय के रूप में भी कुछ लोगों को काम मिल जायेगा। हमारी बहन-बेटियाँ वेश्याओं और काल गर्ल्स में तब्दील कर दी जायेंगी, जिन्हें इस व्यवस्था में सेक्स वर्कर कह कर गौरवान्वित किया जा रहा है।

खेती के क्षेत्र में काण्ट्रेक्ट फार्मिंग (ठेका खेती) और अन्य कई तरह की योजनाएँ भी लागू की जा रही हैं। इनके चलते किसान अपनी जमीन से बेदखल होकर कंगाल मजदूर में बदल जायेंगे या अपनी ही जमीन पर गुलामों की तरह खटते हुए दूसरों की तिजोरी भरेंगे। मजदूरों का भविष्य क्या होने वाला है, इसकी एक झलक कुछ ही समय पहले गुड़गाँव, नोएडा, करनाल और देश के कई अन्य औद्योगिक क्षेत्रों में बर्बर दमन-उत्पीड़न के रूप में हम देख चुके हैं।

मजदूरों की मेहनत की निर्मम लूट पर आज कोई रोक-टोक नहीं है। विशेष आर्थिक क्षेत्रों में तो कोई श्रम कानून लागू ही नहीं होगा। वैसे भी उद्योगों में स्थायी रोजगार की कोई गारण्टी नहीं रही। हर जगह 'हायर एण्ड फायर' (भरती करो और निकाल बाहर करो) की नीति प्रचलित हो रही है।

इस नयी जूठन पूँजीवादी व्यवस्था में एक ही देश के भीतर स्पष्ट रूप से दो देश दिखाई दे रहे हैं। मुट्ठीभर लोगों के लिए हर शहर में न्यूयार्क, लन्दन, पेरिस और टोकियो बसाया जा रहा है तो

दूसरी ओर जनता का बड़ा हिस्सा सोमालिया, सूडान ओर इथोपिया से भी बदतर हालात में जीने को अभिशप्त है। एक तरफ देश में अरबपतियों की संख्या तेजी से बढ़ रही है और इस मामले में भारत का दुनिया भर में 8वाँ स्थान है तो दूसरी ओर जनता के जीवन स्तर और रहन-सहन के मामले में हम 127वें पायदान पर हैं और हमसे भी गये-गुजरे देशों को दुनिया भर में ढूँढना मुश्किल है।

सवाल यह है कि हमारे देश की जनता ने अंग्रेजों की गुलामी के खिलाफ आजादी की लम्बी लड़ाई क्या इसी दुर्भाग्यपूर्ण नियति के लिए लड़ी थी? आज देश में जो कुछ भी हो रहा है, क्या वह 90% जनता की राय और सहमति से हो रहा है? यदि नहीं तो फिर यह देश किसका है? दिन-रात इस महान लोकतन्त्र की दुहाई देने वाले क्या देश की आम जनता को इन्सान की श्रेणी में गिनते भी हैं? वे उन्हें भारत का नागरिक मानते हैं या सिर्फ देशी-विदेशी सरमायादारों का मुनाफा बढ़ाने वाला साधन समझते है?

लगभग 16 सालों से भारतीय जनता के साथ एक षड्यन्त्र किया जा रहा है, इस देश को एक नयी गुलामी में जकड़ने की साजिश हो रही है। पक्ष-विपक्ष की सभी संसदीय पार्टियाँ इस षड्यन्त्र में शामिल हैं। किसी भी पार्टी ने इसकी विभीषिका और इसके भावी दुष्परिणामों को जनता के सामने रखने, पर्चों, पुस्तिकाओं, जनसभाओं और रैलियों के जरिये उन्हें जागृत और गोल बन्द करने का कोई प्रयास नहीं किया। सही जनपक्षीय शक्तियों का एक हिस्सा बिखराव की स्थिति में है और इस नयी परिस्थिति के सम्मुख किंकर्त्तव्यविमूढ़ है। दूसरा हिस्सा आतंकवाद और कठमुल्लावाद का शिकार है, आज के यथार्थ को समझने और स्वीकारने में असमर्थ है तथा घोड़े के आगे गाड़ी जोतने के काम में लगा हुआ है।

लेकिन जैसे-जैसे इन नीतियों के दुष्परिणाम सामने आ रहे हैं, आम जनता अपनी जिन्दगी में इसे महसूस करने और समझने लगी है और जो कुछ भी उसके पास है, उसे लेकर प्रतिरोध के लिए मैदान में उतरने लगी है। पिछले दिनों कलिंगनगर, गुड़गाँव, दादरी, नन्दीग्राम, रायगढ़ तथा महाराष्ट्र, कर्नाटक, पंजाब और हरियाणा सहित देश के कई स्थानों पर जनता ने ऐसे ही स्वत:स्फूर्त संघर्षों का सूत्रपात किया। आने वाले दिनों में इन स्थानीय और अलग-अलग संघर्षों के प्रबल झंझावात में बदलने की पूरी सम्भावना है।

इस नयी गुलामी के सवाल पर पूरा देश दो खेमों में बँटा हुआ है, मुट्ठीभर लोग इस गुलामी का जश्न मना रहे हैं जबकि देश की अधिकांश आबादी–मजदूर, किसान, मेहनतकश तबके, छात्र-नौजवान और बुद्धिजीवियों का एक बड़ा हिस्सा–पिछले 16 वर्षों में अपने प्रत्यक्ष अनुभवों से समझ गयी है कि इन नीतियों से उसका कोई भला होने वाला नहीं है। इस व्यवस्था और उसके अलम्बरदारों पर उसे रत्तीभर भी विश्वास नहीं है। जनता में व्याप्त इस असन्तोष और आक्रोश को सही दिशा में मोड़ने वाली, उनकी भावनाओं को आवाज देने वाली सच्ची जनपक्षधर शक्तियों की पहलकदमी और सक्रियता के अभाव में देश की जनता इन नीतियों को चुपचाप बर्दाश्त करने को विवश है। लेकिन यह स्थिति ज्यादा दिनों तक बनी रहने वाली नहीं है। पूरब के क्षितिज पर भविष्य की लालिमा महसूस की जा सकती है। ▣

किसका गणराज्य, किसका देश?

भारत के काले अंग्रेजों का 58वाँ गणतन्त्र दिवस मनाया गया।

पेप्सी कम्पनी की मुख्य कार्यकारी अधिकारी इन्दिरा नुई (संयुक्त राज्य अमरीका), सुजुकी कम्पनी के चेयरमैन ओ. सुजुकी (जापान) और जैफरी डी साक्स (संयुक्त राज्य अमरीका) को पद्मभूषण से अलंकृत किया गया।

भारत की जनता को उस दिन का इन्तजार है जब भोपाल गैस काण्ड में 20 हजार से भी ज्यादा लोगों को मौत के मुँह में धकेलने वाली यूनियन कार्बाइड के तत्कालीन अध्यक्ष वारेन एण्डरसन और दाऊद इब्राहिम को भारतरत्न से अलंकृत किया जायेगा।

सरकार के लिए क्या यह उचित नहीं होगा कि लगे हाथ राबर्ट क्लाइव और वारेन हेस्टिंग्ज को भी मरणोपरान्त परमवीर चक्र प्रदान कर दे।

छपते-छपते:

पेप्सी के बोर्ड ऑफ डायरेक्टर्स ने अपनी सी.ई.ओ., पद्मभूषण इन्दिरा नुई को चेयरमैन बना दिया है ताकि वे भारत में एक भारतीय की अगुवाई में शीतल पेय के नाम पर जहर बेचने का अपना धन्धा बदस्तूर जारी रख सकें।

नोएडा और निठारी

■ शेखर

गतवर्ष के अन्तिम दिनों और नये साल के प्रारम्भ से लेकर अब तक नोएडा और निठारी में दो दर्जन से भी ज्यादा बच्चे-बच्चियों-लड़के-लड़कियों के कंकाल मिले हैं। उनके साथ बलात्कार किया गया, फिर हत्या करके उनकी लाशों को कई टुकड़ों में काटकर नाले में फेंक दिया गया। लोगों का कहना है कि मुख्य अपराधी मोनिन्दर सिंह पन्धेर और सह-अपराधी सुरेन्द्र कोली, दोनों इस घटना के लिए जिम्मेदार हैं। सम्भावना व्यक्त की जा रही है कि बच्चों के अंगों को बाजार में बेचने के लिए उनकी हत्याएँ की गयी हैं।

पत्र-पत्रिकाएँ, टीवी-रेडियो सभी इन हत्याओं के बाद नरकंकाल मिलने की घटनाओं की सूचना देते रहे हैं। जाँच को सी.बी.आई. द्वारा अपने हाथ में लेने के बाद, अभी दो दिनों पहले तक, नरकंकालों का मिलना जारी रहा।

कंकाल मिलने का समाचार सुनते ही पूरा देश दहशत से सिहर गया। अखबारों और टीवी चैनलों ने नोएडा की हत्याओं को "भारत की लज्जा", "भारत के माथे पर कलंक" इत्यादि विशेषण दिये। घटना की जाँच के बारे में काफी हीला-हवाला होता रहा। उत्तरप्रदेश की सरकार टाल-मटोल करती रही। बाद में पार्टियों की अपनी प्रतिस्पर्धा, एक-दूसरे को कठघरे में खड़ा करने तथा आने वाले चुनाव में इसे भुनाने की गरज से इस घटना को प्रचारित करने की कोशिश की गयी। हो सकता है कि उत्तरप्रदेश में चुनाव सर पर नहीं होता तो बात दब-दबा जाती और लोगों को पता भी नहीं चलता। राजनीतिक पार्टियों और जनता के भारी दबाव से बाध्य होकर मुलायम की सरकार सी.बी.आई. को जाँच सौंपने के लिए तैयार हुई।

गायब हो गये बच्चों के माँ-बाप, उनके नाते-रिश्तेदार और आस-पास के लोग, भाई-पड़ोसी, सभी आक्रोश से भर उठे। लोगों ने पुलिस का बैरिकेड तोड़ कर अपराधी मोनिन्दर सिंह पन्धेर के घर को जलाने के प्रयास किये। लेकिन जैसा कि आम तौर पर होता है, पुलिस अपराधियों को जनता का कोपभाजन बनने से बचाने में सफल रही। पुलिस के कुछ एक छोटे-बड़े पदाधिकारी मुअत्तल किये गये ताकि जनता के गुस्से को शान्त किया जा सके। कुछ समय बाद ये नौकरी पर बहाल हो जायेंगे और इनकी पदोन्नति भी हो जायेगी। पीड़ितों के परिवारों को लाख-दो लाख रुपये देकर जनता के गुस्से को शान्त करने का प्रयास किया गया। विरोधी पार्टियों के बड़े-बड़े नेताओं ने दौरे किये और लोगों से सहानुभूति जतायी। सरकार के बड़े अफसरों ने भी दौरा किया और मर गये बच्चों के एवज में परिवार वालों को कुछ एक चाँदी के टुकड़े देकर अपनी सदाशयता का परिचय दिया।

जाँच-पड़ताल जारी है। एक महीना भी नहीं हुआ कि धीरे-धीरे सब कुछ शान्त हो गया। सारा मामला जाँच-पड़ताल, पुलिस-कचहरी, वकील-बैरिस्टर और सरकारी अमलों की फाइलों में बन्द हो जायेगा।

इस देश में हर ऐसी घटना का यही हश्र होता है। यही कहानी बार-बार दोहरायी जाती है। कभी किसी अपराधी को सजा भी हो जाती है। अगर मामला मध्यवर्ग का, खास तौर पर ऊपरी मध्यवर्ग का हुआ तो शोर-गुल ज्यादा मचता है। व्यवस्था के भीतर लड़ाई-झगड़े में चिंगारियाँ भी उड़ती हैं। लेकिन अपराधी ताकतवर हो तो वह या तो बच जाता है, या इतना समय लग जाता है कि न्याय और निर्णय अप्रासंगिक हो चुका होता है। इधर कुछ समय से भारत की न्याय प्रणाली से लोगों का भरोसा ही उठ चुका था। गरीब लोगों का तो अभी भी इस न्याय प्रणाली पर रत्ती-भर भरोसा नहीं है। लेकिन कुछ महत्वपूर्ण मामलों में हाई कोर्ट व सुप्रीम कोर्ट के फैसलों और दखलन्दाजी से मध्यम वर्ग में फिर से इस न्याय प्रणाली के बारे में भ्रम पैदा हो रहा है।

अभी से इस बात की कवायद शुरू हो गयी है कि मोनिन्दर सिंह पन्धेर को कैसे बचाया जाये और सब कुछ उसके नौकर सुरेन्द्र कोली पर कैसे डाल दिया जाये? सुरेन्द्र कोली के लगातार बयान आ रहे हैं, जिसमें वह कहना चाहता है कि घटना में उसके मालिक मोनिन्दर सिंह पन्धेर का कोई हाथ नहीं है और सारा काम उसने अकेले किया है। वह जानता है कि अगर मालिक बच जायेगा तो उसके भी बचने की सम्भावना बढ़ जायेगी। उसे मनोरोगी और पागल करार दिये जाने की कवायद भी चल रही है। उधर कोली के परिवार वालों का कहना है कि असली दोषी पन्धेर है और कोली को फँसा कर खुद बचना चाहता है।

इन हत्याओं के सन्देह में एक साल पहले मोनिन्दर सिंह पन्धेर को थाने में हाजिर होना पड़ा था। वह ढाई लाख रुपये देकर थाने से बाहर निकल आया था। थाने के पुलिस अफसरों का यही रेट है। सी.बी. आई. के लोगों का रेट कुछ ज्यादा हो सकता है। सी.बी.आई., डॉक्टर, फॉरेन्सिक एक्सपर्ट और जजों को एक-एक, दो-दो, करोड़ बाँट कर मोनिन्दर सिंह पन्धेर अगर फिर बेदाग छूट जाये तो इसमें आश्चर्य नहीं। दो करोड़ रुपये फीस लेकर अपनी विलक्षण प्रतिभा के प्रदर्शन से अपराधियों को छुड़ाने के लिए राम जेठमलानी जैसे वकील तो हैं ही।

अखबारों में खबरें आयी हैं कि कानपुर में 132 बच्चे लापता हैं। लोगों को शक है कि उन्हें भी किसी पन्धेर ने ही खाया होगा। समाचारपत्रों के मुताबिक बंगलोर में 13 लोग रोज लापता हो जाते हैं। आज की खबर है कि उत्तरप्रदेश के एटा शहर के एक तालाब में 40 खोपड़ी और 100 नरकंकाल मिले हैं। हाल ही में उत्तरप्रदेश के मुख्यमन्त्री ने बयान दिया है कि भारत के कई राज्यों को ले लिया जाये तो कुल 45,000 बच्चे लापता हैं। कोई वजह नहीं कि मुलायम सिंह पर यकीन न किया जाये।

देश के कोने-कोने से इस तरह के संगठित अपराधों की, अपराधी गिरोहों की और उसमें लिप्त बड़े लोगों की कहानियाँ प्रकाश में आती रहती हैं जिनमें राजनीतिक पार्टियों के बड़े नेता, नौकरशाह, पुलिस और सेना तक के बड़े अफसर, व्यापारी और इन्हीं की तरह के लोग शामिल होते हैं। पूर्व गृहसचिव एन. एन. बोहरा ने अपराधों के सम्बन्ध में अपनी एक रिपोर्ट में ऐसे ही व्यक्तियों के शामिल होने और उनकी आपसी साँठ-गाँठ का ब्योरा दिया था, जिसे आज तक प्रकाशित नहीं किया गया। सरकारें आती-जाती रही हैं लेकिन कोई भी सरकार इसे प्रकाशित कैसे करे! भला कौन है जिसके दामन में दाग नहीं!

गुर्दों का बाजार

मद्रास में गुर्दों का बाजार लगता है जहाँ जाकर गरीब और मजबूर लोग अपने गुर्दे, फेफड़े और शरीर के अन्य अंग बेचते हैं।

पहले अमीर लोग गरीबों का खून-पसीना पीकर ही तृप्त हो जाते थे लेकिन अब वे गरीबों के गुर्दे, फेफड़े और अन्य अंगों को निकालकर अपने शरीर में लगवाने लगे हैं।

आज ही की खबर है कि ऊषा ठाकुर नाम की जिस महिला ने सबसे पहले इस संगठित अपराध का पर्दाफाश किया था, उसे जान से मारने की धमकियाँ दी जा रही हैं। इसी महिला की तरह व्यक्तिगत बहादुरी का परिचय देने वाले सत्येन्द्र दुबे भी मारे गये थे। हो सकता है, यह भी मार दी जाये। धमकी देने वाले मारने की ही बात करते हैं। पीड़ित परिवारों के गरीब लोगों की जुबान बन्द करने के लिए पैसे फेंके जा रहे होंगे। हजारों हृदयविदारक घटनाओं की तरह इसे भी दबा दिया जायेगा, अपराधी स्वच्छन्द घूमते रहेंगे, समाज के नेता के तौर पर व्यवस्था उन्हें स्वीकार कर लेगी और सम्भव है कि उन्हें पद्मविभूषण से सम्मानित भी किया जाये। हो सकता है, संसद के अगले चुनाव में ये शरीफजादे संसद-सदस्य बन जायें और मन्त्रिमण्डल में भी शामिल हो जायें। जिस पार्टी में ये शामिल होंगे उसके लोग उन्हें अच्छा कहेंगे और जिसमें नहीं शामिल होंगे उसके लोग उन्हें बुरा कहेंगे। पार्टी बदलकर जब वे बुरा कहने वाली पार्टी में शामिल हो जायेंगे तो वह भी उन्हें भला कहने लगेगी। हमारी सामाजिक व्यवस्था यहीं पहुँची हुई है। यही इसका मुकाम है। यही इसकी मंजिल है। क्या राजनेता, क्या पुलिस, क्या कोर्ट-कचहरी, क्या वकील-बैरिस्टर, क्या थैलीशाह, क्या अपराधी--ये सब मिलकर इसी व्यवस्था को बचाने के लिए दिन-रात प्रयासरत रहते हैं।

नोएडा और निठारी में हुए इन संगठित बलात्कारों और हत्याओं के बारे में आगे कुछ कहने से पहले थोड़ी बातें नोएडा और निठारी के बारे में।

नोएडा अंग्रेजी के New Okhla Iudustrial Development Authority का संक्षिप्त नाम है। दिल्ली के पास यह

एक बहुत बड़ा शहर है जिसमें बहुराष्ट्रीय निगमों के दफ्तर हैं, भारत के बड़े पूँजीपतियों के दफ्तर हैं और देशी-विदेशी कारखाने हैं, शीशे की बहुमंजिली इमारतें हैं, फिल्मसिटी है, देशी-विदेशी टी.वी. चैनलों के दफ्तर हैं, सभी बड़े समाचारपत्रों के प्रतिष्ठान हैं, अमीरों के, देशी-विदेशी थैलीशाहों के बड़े-बड़े बंगले हैं, शॉपिंग माल हैं, आधुनिकतम् विशाल मनोरंजन के केन्द्र हैं, चौड़ी सड़कें हैं। यानी, वह सब कुछ है, जो अमीरों को चाहिए। यह उन्हीं का शहर है। प्रशासकीय इकाई के तौर पर यह उत्तरप्रदेश में है, लेकिन हर व्यावहारिक मामलों के लिए दिल्ली का हिस्सा है, जैसे हरियाणा का गुड़गाँव। यह शहर 1990 के बाद देश पर थोपी गयी नयी गुलामी का मन्दिर है, और उसका तीर्थ भी। यह भारत के शासक वर्गों की नीतियों का मूर्त नमूना है। यह "इण्डिया" है, जिसमें गोरे या गोरे-टाइप काले भारतीय और उनकी सेवा में लगे मध्यम दर्जे के लोग रहते हैं।

इसके पास में ही, निठारी एक बड़ी बस्ती है, जिसमें भारत के निर्धनतम लोग रोजी-रोटी की तलाश में आकर बसे हुए हैं। मध्यप्रदेश, बिहार, झारखण्ड, छत्तीसगढ़, बंगाल तथा देश के ऐसे ही पिछड़े इलाकों से अपने पेट की आग को शान्त करने के लिए रोजी-रोटी की तलाश में लोग यहाँ आते हैं। आदिवासी, दलित, पिछड़े और अन्य पिछड़े वर्गों के गरीब लोग निठारी में बसे हुए हैं। अपने-अपने गाँवों में इनकी अपनी भूख शान्त करने का कोई साधन नहीं रह गया है और ये ऐसी जगहों पर आने के लिए बाध्य हैं। ये रोम के गुलामों से भी बदतर जिन्दगी जीते हैं। बहुलांश के पास शौचालय की सुविधा नहीं है, पीने-नहाने का पानी उपलब्ध नहीं है, सर ढँकने के लिए मुकम्मिल छत नहीं है। वे बरसात में भीगते हैं, गर्मियों में तपते हैं और जाड़ों में ठिठुरते हैं। इन्सानियत की जीने की सहजात अभिलाषा, यानी जिजीविषा इन्हें जिन्दा रखती है। इनके सपने छोटे हैं, इनकी आशाएँ छोटी हैं, इनकी उम्मीदें छोटी हैं। अपनी भावी सन्तति के बारे में भी वे छोटी बातें ही सोचते हैं। तपन सिन्हा की फिल्म 'सगीना महतो' के गाने की कुछ पंक्तियाँ, जो चाय बागान के मजदूरों के बारे में हैं, इनकी आशाओं-आकांक्षाओं को व्यक्त करने के लिए सटीक हैं–

छोटा-मोटा मुनवा खायेगा रोटी बासी
बड़ा हो कर बनेगा साहब का चपरासी

इन्हीं के खून और पसीने से नोएडा के आलीशान महल, बंगले और विलासितापूर्ण बहुमंजिली इमारतें, अपार्टमेण्ट, माल और कॉम्प्लेक्स तैयार हुए हैं। इन्हीं की हड्डियों को पीसकर, उससे सीमेण्ट बनाकर, इनके रक्त में सान कर गारा बनाकर ये इमारतें खड़ी की गयी हैं। अर्थशास्त्र के विद्यार्थी अतिरिक्त श्रम और अतिरिक्त मूल्य का नियम जानते हैं। लेकिन पूँजीवाद के क्लासिकीय अर्थशास्त्रियों का यह नियम यहाँ नहीं लागू होता। यहाँ लागू होता है नूबिया की खानों में काम करने वाले रोमन गुलामों पर लागू होने वाला नियम।

कितने निठारी!

रतलाम (मध्यप्रदेश) के मिशन अस्पताल के पिछवाड़े से 17 फरवरी, 2007 को 600 हड्डियों के टुकड़े, भ्रूण और नवजात शिशुओं के कंकाल बरामद हुए जिन्हें जाँच के लिए भोपाल स्थित फोरेन्सिक लैबोरेटरी में भेजा गया है।

लोकतन्त्र के नाम पर

इण्टरनेट पर ऐसी अश्लील वेबसाइटों की भरमार है जो असली सेक्स, अप्राकृतिक सेक्स, बलात्कार, जानवरों के साथ सेक्स, मासूम बच्चों के साथ सेक्स और ऐसे ही अमानुषिक कुकृत्यों के फोटो और वीडियो फिल्में धड़ल्ले से प्रसारित करते रहते हैं। मनुष्य की दमित कुप्रवृत्तियों और कामोत्तेजना को भड़काने वाली इन वेबसाइटों का सबसे बड़ा स्रोत अमरीका है। इनमें से 21 वेबसाइट भारत में दिन-रात चालू रहती हैं।

इन गन्दी और कामोत्तेजक वेबसाइटों को देखने वालों में किशोरावस्था से लेकर 70-80 साल के बूढ़े तक शामिल हैं। पिछले कुछ वर्षों के दौरान बलात्कार और यौन अपराध की जो अकल्पनीय और वीभत्स घटनाएँ बड़े पैमाने पर सामने आयी हैं, उनमें ऐसी वेबसाइटों की बहुत बड़ी भूमिका रही है।

केन्द्र सरकार के सूचना और प्रौद्योगिकी मन्त्रालय के अन्तर्गत सी.ई.आर.टी. नामक एक संस्था है, जिसका काम ऐसी किसी भी वेबसाइट को जाम करना है जो देश के हित में न हो। यह काम राज्य सरकारों के अधिकार क्षेत्र में नहीं आता लेकिन केन्द्र सरकार चाहे तो इन सभी अश्लील और कामुक वेबसाइटों को जाम कर सकती है, उन पर रोक लगा सकती है।

लेकिन हर कदम पर लोकतन्त्र का गला घोटने और जनता के बुनियादी अधिकारों का हनन करने वाली सरकार लोकतन्त्र के नाम पर साम्राज्यवादियों के इन आपराधिक कारनामों को खुली छूट देती है जो यौन अपराधों को बढ़ावा देते हैं।

निठारी भारत है।

ऐसे नोएडा और निठारी भारत के हर हिस्से में हैं। नोएडा और निठारी–दोनों का मौजूद होना ही इन घटनाओं का मूल कारण है। नोएडा और निठारी नेहरू के समाजवादी पूँजीवाद तथा १९९० के बाद कायम सरकारों के ''ट्रिकिल डाउन पूँजीवाद'', अर्थात जूठन पूँजीवाद का परिणाम हैं। सरकार की नीतियाँ इसके लिए जिम्मेदार हैं। यह कानून और व्यवस्था का प्रश्न नहीं है। यह एक सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक प्रश्न है। सरकार और सभी बड़ी पार्टियाँ इन नीतियों के लिए जिम्मेदार हैं। साम्राज्यवादी समूह, उनके देशी सहयोगी भारतीय पूँजीपति, सरकार– ये ही वास्तविक अपराधी हैं और इन्हें ही जनता की अदालत में दण्डित किया जाना चाहिए। पन्धेर तो एक गहरी बीमारी का लक्षण है, एक गहरी बीमारी की अभिव्यक्ति है, उसका निमित्तमात्र है। वास्तविक बीमारी तो व्यवस्था की डाइन है, जो अपने बच्चों को खा रही है।

सोनिया-मनमोहन की सरकार यह कहती ही रहती है कि अगर इस देश की जनता गोरों की सारी शर्तों को मंजूर नहीं कर लेगी तो वे यहाँ पूँजी नहीं लगायेंगे और पूँजी नहीं लगायेंगे तो हमारा विकास नहीं होगा। इसीलिए सरकार किसानों की जमीनें छीन कर उन्हें दे रही है, मजदूरों का प्राविडेण्ट फण्ड और पेंशन तक उनके हवाले कर रही है, देश की नदियाँ, समुद्र, जलाशय, पर्वत, जंगल कौड़ियों के मोल उनको दे रही है। हमारे देश का कच्चा माल, सस्ता श्रम, सब कुछ देशी-विदेशी सरमायादारों को उनकी शर्तों पर दिया जा रहा है। जब वे मजदूरों, किसानों और मेहनतकशों के खून और पसीने को सिक्कों में ढालकर अपनी तिजोरियाँ भर लेंगें, खा-खाकर अधा जायेंगे, तो उसके बाद जो उच्छिष्ट बचेगा उससे यहाँ की जनता अपनी क्षुधा शान्त करेगी। इसमें थोड़ी भी फेर-बदल हुई तो गोरे अपनी पूँजी यहाँ से हटा लेंगे।

लालच को बढ़ावा दिया जा रहा है और इन्सान के भीतर जो कुछ भी घृणास्पद और गलत है उसको देशी-विदेशी टीवी चैनल दिन-रात बढ़ाने का प्रयास करते रहते हैं। नग्नता, अश्लीलता, देह-व्यापार और हर घटिया चीज प्रोत्साहित की जा रही है। पश्चिम के चाल-चलन, नाज-नखरे और उन सभी चीजों को प्रोत्साहित किया जा रहा है, जो भारतीय समाज में हजारों विकारों को जन्म दे रहे हैं। इसी का स्वाभाविक परिणाम है कि ऐसी घटनाओं की बाढ़-सी आ गयी है। छोटे-बड़े, संगठित-असंगठित अपराधों का सिलसिला रुकने का नाम नहीं ले रहा है। नोएडा और निठारी उन्हीं नीतियों के परिणाम हैं। न जाने कितने पन्धेर और कोली यह व्यवस्था रोज-ही पैदा करती है। सम्पत्ति के घूर पर मक्खियाँ ही भिनभिनाती हैं, विषाणु ही पैदा होते हैं। वहाँ और हो भी क्या सकता है? संगठित रूप से इस व्यवस्था का समूचा तन्त्र ऐसी घटना के लिए एक-दो खलनायक या अपराधी खड़ा करके अपने को बचाने का प्रयास करता है।

समाजवादी व्यवस्था में सभी विशेषाधिकार समाप्त कर दिये जाते हैं लेकिन बच्चों का विशेषाधिकार बना रहता है। उस समाज में केवल वही एक समुदाय है, जिसे विशेषाधिकार प्राप्त होता है।

भारत के ट्रिकिल डाउन पूँजीवाद–जूठन पूँजीवाद में आर्थिक और राजनीतिक विशेषाधिकार प्राप्त लोग बच्चों को खा जाते हैं!

एक और बहुत ही महत्वपूर्ण विचारणीय प्रश्न है। वह यह कि इतने बच्चों के गायब होने के बाद भी एफ. आई.आर. क्यों नहीं दर्ज की गयी? पन्धेर ढाई लाख देकर थाने से बाहर निकल आता है। किसी भी लोकतन्त्र में इस बात की कल्पना नहीं की जा सकती। भारत का लोकतन्त्र एक धोखा-मात्र है, एक ठगी है। यहाँ की संसद और विधायिकाएँ लोकतन्त्र के स्तम्भ नहीं, जनता को ठगने के उपकरण-मात्र हैं। 13% लोगों द्वारा बनाया गया यह संविधान भारतीय जनता के साथ क्रूर मजाक है। भारतीय समाज की बुनियादी इकाई–परिवार में ही लोकतन्त्र नहीं है। बाप-बेटे के बीच, पति-पत्नी के बीच, छोटे और बड़े भाई के बीच जनवादी रिश्ता नहीं है। स्वेच्छाचारिता का राज है। एक ही गाँव के ब्राह्मण, दलित और मध्य जातियों के लोगों के बीच लोकतान्त्रिक रिश्ता नहीं है। यहाँ भी स्वेच्छाचारिता ही है। अगर भारतीय समाज में लोकतन्त्र नहीं है तो पुलिस, सेना और सरकारी नौकरशाही में कहाँ से लोकतन्त्र आयेगा? संसद और विधायिकाओं में लोकतन्त्र कहाँ से आ टपकेगा? पाँच साल में मतपत्र पर ठप्पा लगा देना ही लोकतन्त्र नहीं है। देशी

सरमायादार, उनकी राजनीतिक पार्टियाँ, नौकरशाह, संसद, विधायिकाएँ, कोर्ट-कचहरी, प्रचारतन्त्र– ये 5% लोग ही देश की नीतियाँ बनाते हैं। उसमें जनता की कोई भागीदारी नहीं होती। उससे पूछा तक नहीं जाता, उसे पता तक नहीं होता, उससे छिपाया जाता है, उसे अन्धेरे में रखा जाता है और दिन-रात ये 5% लोग जो इस देश को चलाते हैं, जनता के साथ षड्यन्त्र करते रहते हैं। इनकी स्वेच्छाचारिता ही देश पर शासन करती है। यह 5% लोगों का शासन है। भारतीय राज्य, भारतीय गणराज्य भूखे लोगों का, नंगे लोगों का, कंगालों का बेरोजगारों का, 85% लोगों का गणराज्य नहीं है। लोकतन्त्र से इसका दूर-दूर तक वास्ता नहीं है। इसकी कानूनी प्रणाली आज भी औपनिवेशिक कानूनों पर आधारित है और जनता के दमन के लिए उनसे भी ज्यादा दमनकारी कानून बनते रहे हैं। यह अपने सारतत्व में 5%लोगों का स्वेच्छाचारी और निरंकुश कुलीन राज्य है। भला ऐसे में पुलिस उन गरीब लोगों के बच्चों के गायब होने की एफ.आई.आर. क्यों दर्ज करती!

किसी भी देश में ऐसे एक-दो अपराध भी हों तो शीर्ष पर बैठे हुए लोग और उनके चिन्तक-विचारक इसकी अन्तर्धारा की तलाश में लग जाते हैं। यह जानने का प्रयास किया जाता है कि उस घटना की जमीन क्या है, उसकी जड़ें कितनी गहराई और विस्तार में गयी हैं, समाज की कौन-सी ऐसी विचारधारा है जो इसका पोषण करती है और इस विषवृक्ष को पल्लवित-पुष्पित करती है तथा उसे फलीभूत करती है। लोकतन्त्र में थोड़ा भी दम-खम हो तो कोई भी सरकार ऐसी एक भी घटना होने पर हफ्ते-भर कायम नहीं रह सकती। फिर यह महान लोकतन्त्र हजारों ऐसी घटनाओं के बावजूद किस तरह कायम है? यह महान लोकतन्त्र जार्ज बुश के महान लोकतन्त्र की दुम बन कर दुनियाभर में लोकतन्त्र की स्थापना करना चाहता है। बुश-मनमोहन समझौते में यह बात लिपिबद्ध है। तो क्या उन देशों में भी ऐसी ही अमानवीय, हृदयविदारक, क्रूर, जघन्य घटनाएँ हजारों की संख्या में हुआ करेंगी? क्या अच्छा नहीं होगा कि उन देशों को अपने हाल पर छोड़ दिया जाये ताकि वहाँ के लोग ढंग से जी सकें। क्या किसी ऐसे लोकतन्त्र की कल्पना की जा सकती है जिसमें इतनी हत्याओं के बाद भी पुलिस एफ.आई.आर. तक दर्ज न करे और पुलिस व सरकार का बाल भी बाँका न हो। शायद यह कीर्तिस्तम्भ भारत के महान लोकतन्त्र के पास ही है।

निठारी और देश के हर गाँव के गरीबों के लिए जीने का एक ही रास्ता है कि वे मरना सीख लें। वे अपना संगठन बनाएँ, अपनी लामबन्दी करें, देश के पैमाने पर गरीबों की एकजुटता कायम करें और संगठन के बल पर अपनी हिफाजत करें। जीने के लिए, सम्मान से सर ऊँचा करके चलने के लिए संघर्ष के मार्ग का अनुसरण करें। वे पुलिस और प्रशासन के भरोसे नहीं जी सकते।

भीख माँगने से अधिकार नहीं मिला करते। न ही उन्हें प्लेट में सजा कर परोसा जाता है। जो प्लेट में सजाकर परोसा जाता है वह मीठा जहर होता है, अधिकार नहीं। अधिकार अपने दम पर, संघर्ष के बल पर, छीना जाता है। जनता के लोकतन्त्र की स्थापना तभी हो सकेगी जब बच्चों को खाने वाली डाइन व्यवस्था नहीं रहेगी। ▣

सबके हाथ खून से सने

मुलायम सिंह की समाजवादी पार्टी ने 30 जनवरी 2006 को अखबारों में पूरे पन्ने का विज्ञापन दिया। इसमें निठारी काण्ड पर राजनीति करने वाली पार्टियों– कांग्रेस और भाजपा को कठघरे में खड़ा करने के लिए कुछ तथ्य दिये गये हैं। जैसे:

*** कांग्रेस शासित दिल्ली में 26 हजार बच्चों का अपहरण, औरतों के साथ दुष्कर्म और बुजुर्गों की निर्मम हत्या।**

*** गुड़गाँव (हरियाणा) में 24 से अधिक सिलसिलेवार हत्याएँ।**

*** मुम्बई और भिवण्डी में सिलसिलेवार हत्याएँ, मैरीन ड्राइव के पास नाबालिग लड़कियों के साथ पुलिसकर्मियों द्वारा बलात्कार।**

*** हैदराबाद में सिलसिलेवार हत्याएँ।**

*** भाजपा शासित गुजरात में गोधरा काण्ड के बाद सैकड़ों निर्दोष लोगों को मौत के घाट उतारा जाना।**

*** एक भाजपा नेता के जन्मदिन पर लखनऊ में साड़ी बाँटने के दौरान 40 लोगों की जानें गयीं।**

*** पंजाब के एक कांग्रेसी नेता की फैक्ट्री में 5 बच्चों के साथ बलात्कार और उनकी हत्या।**

*** मुम्बई, गोवा और पुरी में बच्चों का यौन शोषण।**

समाजवादी पार्टी द्वारा दिये गये ये सभी तथ्य एकदम सही हैं, बल्कि असली सच्चाई इससे कहीं ज्यादा भयावह है। इस विज्ञापन का मकसद अपने विरोधियों का मुँह बन्द करना है, लेकिन बात किसी एक पार्टी की नहीं है। सबके दामन पर खून के धब्बे हैं, सबके हाथ खून से सने हैं।

नेपाल की जनवादी क्रान्ति और उसकी समस्याएँ

■ बुद्धेश

विगत सत्तर सालों से नेपाल की जनता जनवाद के लिए संघर्ष करती रही है। 1940 से 1950 के बीच यह संघर्ष तेज हो गया और 1950 में राणाशाही कुलीनतन्त्र समाप्त हो गया, हालाँकि उसके बाद भी वहाँ के आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन में अपनी अन्तर्वस्तु में राणाशाही और सामन्तवाद बना रहा।

जनवाद के लिए नेपाल की जनता और वहाँ की पार्टियाँ, खासकर कम्युनिस्ट पार्टी के विभिन्न धड़े लगातार प्रयासरत रहे हैं। कम्युनिस्ट पार्टी के नेताओं और कार्यकर्ताओं को इसके लिए हजारों तरह की यातनाएँ झेलनी पड़ी हैं और उन्हें निर्वासित का जीवन बिताना पड़ा है। लेकिन नेपाली जनता और उसके सही रहनुमाओं ने कभी हार नहीं मानी और यह लड़ाई जारी रही।

पिछले एक दशक से यह संघर्ष एक बार फिर बहुत तेज हो उठा। इस संघर्ष के दौरान माओवादी क्रान्तिकारियों के नेतृत्व में एक जनसेना तैयार हुई। नेपाल के नौजवान-नवयुवतियों ने अपनी उन्नत चेतना और अद्‌भुत वीरता का परिचय दिया जिसके परिणाम स्वरूप ही संघर्ष लगातार गहरा और विस्तृत होता चला गया। नेपाल के सुदूरवर्ती देहाती इलाकों में, गाँवों और कस्बों में समानान्तर सरकार कायम की गयी और राजा की सत्ता सिमटने लगी।

राजा वीरेन्द्र और उसके समूचे परिवार की शाही महल में बेरहमी से हत्या की गयी। हत्या एक साजिश थी, जो उसके भाई ज्ञानेन्द्र तथा सेना के उच्च पदस्थ अधिकारियों द्वारा तैयार की गयी थी और ज्ञानेन्द्र के कुकर्मी व बदनाम बेटे पारस द्वारा अंजाम दी गयी थी। नेपाल की जनता का राजतन्त्र से बचा-खुचा मोह भी भंग हो गया। ज्ञानेन्द्र राजा की गद्‌दी पर बैठा और उसका बेटा राज-काज का संचालन करने लगा। अपने कुकर्मों से दोनों जल्दी ही कुख्याति की सीमा पार कर गये और अन्त में उन्होंने संसद को, जो दिखाने के लिए ही थी, भंग कर दिया। इसके साथ ही जनतन्त्र के लिए संघर्ष तीव्र से तीव्रतर हो उठा।

जनता की सशस्त्र शक्तियों की बुनियाद पर नेपाल की क्रान्ति अपनी ऊपरी मंजिलों तक पहुँची। वहाँ की प्रतिक्रियावादी-संशोधनवादी पार्टियों व अन्य छोटी-बड़ी प्रतिक्रियावादी पर्टियों को यह स्पष्ट दिखायी देने लगा कि यह क्रान्ति राजतन्त्र के सफाये के साथ उन्हें भी अप्रासंगिक बना देगी।

भारत की सरकार और यहाँ की प्रतिक्रियावादी पार्टियाँ चिन्तित हो उठीं। यहाँ के आधुनिक संशोधनवादी भी भयभीत हो उठे। अमरीका व यूरोप की प्रतिक्रियावादी सरकारें चिन्तित हो उठीं। चीन की सरकार भी डरने लगी कि कहीं माओ के विचार जिन्दा न हो जायें, और यदि ऐसा हुआ तो उनका क्या होगा!

इस परिस्थिति से निपटने के लिए तरह-तरह के नुस्खे सुझाये जाने लगे। कुछ का खयाल था कि इसे हथियारों के बल पर दबा दिया जाये, क्रान्तिकारी शक्तियों पर घेरा डाला जाये, बाहर से कुमुक भेजी जाये और राजतन्त्र को बचाया जाये। अमरीका, भारतीय जनता पार्टी, तथा भारतीय कांग्रेस का एक धड़ा इस राय के पक्ष में था। भारत के आधुनिक संशोधनवादियों ने इसका विरोध किया। भारत की सरकार ने इन आधुनिक संशोधनवादियों की नीतियों को लागू करना ज्यादा ठीक समझा। नेपाल की जनवादी क्रान्ति की धार को कुन्द और कुण्ठित करने के लिए नेपाली कांग्रेस ने वहाँ की संशोधनवादी पार्टी के साथ विचार-विमर्श करके सुलह-समझौते की नीति तैयार की। राजा को भी झुकने के लिए रजामन्द किया गया ताकि जल्दी उसका विनाश न हो जाये। इस तरह व्यवस्था को बचाने की कवायद की गयी और एक साजिश

रची गयी तथा भविष्य की एक सुनिश्चित योजना बनायी गयी। इस काम में भारत के आधुनिक संशोधनवादियों की सबसे बड़ी भूमिका रही। यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है। भारत की वर्तमान व्यवस्था और इसकी दिवालिया संसद की गरिमा को बचाने का प्रयास करके ये संशोधनवादी यहाँ के बड़े सरमायादारों के विश्वस्त अनुचर के रूप में अपनी छवि पहले ही बना चुके हैं। अब ये विदेशी थैलीशाहों के विश्वस्त अनुचर बनने के लिए प्रयासरत हैं। बंगाल, केरल और त्रिपुरा में शासन जो करना है। दिल्ली की सरकार में साझेदारी जो करनी है! भारतीय जनता और क्रान्ति से विश्वासघात करने के बाद उनका ऐसा करना स्वाभाविक ही था।

यह बिल्कुल सही है कि नेपाल की क्रान्ति एक ऐसे समय में हो रही है, जब दुनिया में प्रतिक्रान्ति का बोलबाला है, पूँजी का वर्चस्व है और श्रम को काफी पीछे हटना पड़ा है। ऐसे में नेपाल की क्रान्ति का मार्ग कठिनाइयों से भरा हुआ होना स्वाभाविक ही है। क्रान्ति का मार्ग निष्कण्टक तो कभी नहीं होता। लेकिन यह बात ध्यान में रखनी होगी कि नेपाल की यह क्रान्ति आधुनिक विश्व की अन्य जनक्रान्तियों की तुलना में ज्यादा कठिन परिस्थिति में सम्पन्न हो रही है।

भारतीय उपमहाद्वीप के आधुनिक इतिहास में पहली बार ऐसा हुआ है जब किसी क्रान्तिकारी पार्टी ने इतनी बड़ी जनसेना खड़ी की हो और जनक्रान्ति सम्पन्न करने के इतना नजदीक पहुँची हो।

सुलह-समझौता कोई ऐसी चीज नहीं जिससे परहेज किया जाये। नेपाल में होने वाला सुलह-समझौता कोई अनोखी बात नहीं है। सभी क्रान्तियों में बहुत तरह से सुलह-समझौते होते रहे हैं।

नेपाल की जनवादी क्रान्ति अब एक ऐसे मुकाम पर पहुँच गयी है जहाँ वह तलवार की तेज धार पर खड़ी है। ऐसे समय में नेपाल के क्रान्तिकारियों का, नेपाल की जनता का, उसके पड़ोसी देशों के क्रान्तिकारियों और जनता का तथा दुनियाभर के क्रान्तिकारियों और जनता का इस बात के लिए चिन्तित होना स्वाभाविक है कि कहीं क्रान्ति के साथ विश्वासघात तो नहीं होगा! इस बात की पूरी सम्भावना है। दूसरी चिन्ता यह भी है कि आज जिस तरीके से क्रान्ति सम्पन्न हो रही है, क्या यह अपने जनवादी कार्यभारों को पूरा कर पायेगी? या वहाँ भी एक झूठा लोकतन्त्र और उसकी संसद तथा राजनीतिक संस्थाएँ खड़ी हो जायेंगी, जो एक फरेब और धोखे से ज्यादा कुछ नहीं होगा।

यह तो तय हो चुका है कि नेपाल की क्रान्ति को बहुत पीछे नहीं धकेला जा सकता। यह निर्विवाद है कि उसे 1950-60-70-80 या 90 के दशक में नहीं पहुँचाया जा सकता। लेकिन यह बात विवादास्पद है कि वह अपने जनवादी कार्यभारों को मुकम्मिल तौर पर पूरा कर पायेगी।

नेपाल में दो बड़ी संसदीय पार्टियाँ रही हैं। इनमें से मुख्य है पूँजीवादी राजतन्त्रवादी पार्टी– नेपाली कांग्रेस। दूसरी है आधुनिक संशोधनवादी पार्टी– नेपाली कम्युनिस्ट पार्टी (एकीकृत मार्क्सवादी-लेनिनवादी)। ये दोनों पार्टियाँ बहुत अच्छी तरह से जानती हैं कि ज्ञानेन्द्र ने उन्हें अप्रासंगिक बना दिया था और उनका दम टूटने लगा था। जनसेना व जनसैलाब के रथ पर बैठ कर ही वे यहाँ तक पहुँची है। वे यह भी अच्छी तरह जानती हैं कि यदि फिर वे माओवादी क्रान्तिकारियों और जनता के साथ विश्वासघात करती हैं तो नेपाल की जनता उन्हें यूँ ही नहीं बख्श देगी। ये दोनों ही पार्टियाँ क्रान्ति से डरती हैं और माओवादियों के प्रति उनके अविश्वास का यही कारण है। नेपाली कांग्रेस में राजतन्त्र समर्थक भूस्वामी और मध्यवर्ग, खासकर व्यापारी वर्ग, शामिल हैं। ये क्रान्ति से डरने वाले लोग हैं, बल्कि क्रान्ति के विरोधी हैं। नेपाल के संशोधनवादियों को जो अपने को मार्क्सवादी-लेनिनवादी कहते हैं, शान्तिपूर्ण क्रान्ति सम्पन्न हो जाने से कोई एतराज नहीं है। लेकिन रक्तरंजित क्रान्ति से इन्हें भय है। ये वर्तमान व्यवस्था में हिस्सेदार हैं और अपने विशेषाधिकारों को खोना नहीं चाहते। बिना नख-दन्त के ये "मार्क्सवादी" यह भूल चुके हैं कि कोई भी क्रान्ति क्रान्तिकारी हिंसा से ही सम्पन्न होती है। शासक वर्गों द्वारा निरन्तर जारी रहने वाली परोक्ष और प्रत्यक्ष हिंसा को तो इन्होंने हिंसा मानना बन्द ही कर दिया है।

जनता की चौकसी और सजगता अभी तक विद्यमान है। यह उसकी चेतना का ही परिचायक है। नेपाल की जनता दिलो-जाँ से बुनियादी परिवर्तन, क्रान्ति के साथ है और इसके लिए हर तरह की कुर्बानी देने के लिए तैयार है। इसमें कोई शक नहीं कि माओवादी क्रान्तिकारी और उनकी जनसेना के योद्धा क्रान्ति चाहते हैं और इसके लिए हर तरह की जोखिम उठाने को तैयार हैं। यही नेपाली क्रान्ति की आशा और उम्मीदें हैं।

पुरानी संसद भंग करके नयी संसद

बनायी जा चुकी है। इसमें नेपाली कांग्रेस के 85 तथा एकीकृत मार्क्सवादी-लेनिनवादी पार्टी और माओवादी क्रान्तिकारियों के 83-83 सदस्य हैं। अन्य छोटी पार्टियों के कुल 16 सदस्य हैं। नेपाली कांग्रेस के गिरिजा प्रसाद कोइराला राष्ट्राध्यक्ष हैं। राजा रहेगा या नहीं, इसका निर्णय जून के चुनाव के बाद बनी संविधान सभा करेगी। राजा की तनख्वाह मुकर्रर हुई है और उस पर टैक्स लगेगा। यानी उसे आम नागरिकों की श्रेणी में लाने का प्रयास किया गया है। सेना और न्यायपालिका राजा की अधीनता से मुक्त हो चुके हैं। लेकिन सबके बावजूद, व्यवहार में राजा के अधिकार सुरक्षित हैं। अभी भी वह राजमहल में मौजूद है। सेना, न्यायपालिका और नौकरशाही के शीर्ष पदों पर उसके प्रति निष्ठवान लोग मौजूद हैं। राजतन्त्र की हिमायती पार्टियाँ मौजूद हैं। यहाँ तक कि नेपाली कांग्रेस में बहुतेरे लोग व खुद गिरिजा प्रसाद कोइराला राजा को बनाये रखने के हिमायती हैं।

नेपाल को धर्मनिरपेक्ष राज्य घोषित किया जा चुका है। पहले वह हिन्दू राज्य रहा है और हिन्दू धर्म राजतन्त्र का वैचारिक एवं दार्शनिक आधार रहा है। अभी तक वहाँ जो कुछ भी हासिल किया जा सका है और पुरानी व्यवस्था को जितना भी कमजोर किया जा सका है, वह स्वागत योग्य है, लेकिन उतना ही काफी नहीं।

दूसरी तरफ, नेपाली जनसेना के योद्धाओं ने अपने हथियार रख दिये हैं और संयुक्त राष्ट्र संघ के पदाधिकारियों के निरीक्षण में हैं। नेपाली सेना ने उतने ही हथियार रखे हैं, जितने माओवादी क्रान्तिकारियों की जनसेना ने रखे हैं। शेष हथियार उनके पास हैं, हालाँकि सेना बैरकों में है। नेपाली क्रान्तिकारियों द्वारा बोये गये समान्तर सरकार के बीज, जो अंकुरित और पल्लवित हो रहे थे समझौते में रौंदे जा चुके हैं। नेपाली शासन की पुरानी चौकियाँ जनता के प्रहार से ध्वस्त हो गयी थीं, उन्हें फिर से बहाल कर दिया गया है।

21 नवम्बर 2006 को नेपाल की सरकार और नेपाल की कम्युनिस्ट पार्टी (माओवादी) के बीच "व्यापक शान्ति समझौता" हुआ। इस समझौते में एक-दूसरे पर शक-सन्देह की झलक मिलती है, एक-दूसरे को खुश करने की कोशिशें दिखायी देती हैं और इसमें अन्य बहुत-सी अच्छी बातें लिखी हैं। समझौता तो समझौता ही है। दोनों पक्षों की ताकत के मुताबिक उसमें दोनों की ही बातें दर्ज की जाती हैं, लेकिन निर्णायक होती है जमीनी हकीकत। उसी से सब कुछ तय होता है।

जमीनी हकीकत का जिक्र करते हुए ऊपर कहा गया है कि पुरानी व्यवस्था उसका समाज, उसकी अर्थव्यवस्था और संस्कृति मूलत: पुराने रूप में ही बने हुए हैं। 10 सालों के सशस्त्र संघर्ष के दौरान उसमें जो थोड़ी-बहुत खरोंचें आयीं थीं, सुलह-समझौते के लम्बे दौर में वे भी ठीक हो गयी हैं।

यहाँ एक महत्वपूर्ण प्रश्न उठता है कि प्रतिक्रियावादियों के विश्वासघात का उत्तर माओवादी क्रान्तिकारी कैसे देंगे? निर्णायक घड़ी में संयुक्त राष्ट्र संघ किसका साथ देगा? नेपाली सरकार ने माओवादी क्रान्तिकारियों के साथ किये गये बहुत से करारों को तोड़ा है। इसमें पडोसी देशों तथा दुनिया के बड़े और ताकतवर देशों में राजदूतों की नियुक्ति भी एक है। क्या ये अपने वायदों को आगे चलकर नहीं तोड़ेंगे? माओवादी क्रान्तिकारी अब एक ऐसी स्थिति में हैं, जो उन्हें ज्यादा से ज्यादा समझौतों की ओर ले जा सकती है। अगर इसकी कोई रोकथाम है तो जनता की सजगता और जागरूकता तथा नेपाली कांग्रेस और ए.मा.ले. पार्टियों की अपनी कमजोरी क्योंकि वे जानती हैं कि वे विश्वासघात तो कर सकती हैं लेकिन जनता उन्हें माफ नहीं करेगी। राजा ज्ञानेन्द्र और उसके बेटे पारस की काली करतूतों को वे भुगत चुकी हैं। ज्ञानेन्द्र से उन्हें कोई विशेष प्यार नहीं है। एक तरफ वे जनता से भय खाते हैं तो दूसरी तरफ राजतन्त्र से। माओवादी क्रान्तिकारी कितनी सूझबूझ और निपुणता का परिचय देते हैं--इसी पर निर्भर करता है नेपाली क्रान्ति का भविष्य।

नेपाली क्रान्ति की एक बहुत बड़ी समस्या यह है कि यदि संविधान सभा में क्रान्तिकारी बहुमत में नहीं आ सके और मध्यमार्गी पार्टी ए.मा.ले. ने संविधान सभा में उनका साथ नहीं दिया तो वे क्या करेंगे? सत्ता अभी भी मूल रूप से नेपाली कांग्रेस के हाथ में ही है। माओवादी क्रान्तिकारी मात्र कनिष्ठ और आरजी हिस्सेदार भर हैं।

नेपाली क्रान्ति के सामने दूसरी महत्वपूर्ण समस्या है कि संविधान सभा ने अगर जनवादी क्रान्ति के पक्ष में ही निर्णय लिया तो यह लागू कैसे होगा? इतिहास में हम देख चुके हैं कि रूस में करेन्स्की ने जनवादी क्रान्ति के स्वीकृत कार्यभारों को लागू करने से इनकार कर दिया। इसके कारण वहाँ तत्काल समाजवादी क्रान्ति करना जरूरी हो गया। चीन के सकारात्मक और भारत के

नकारात्मक अनुभवों से क्रान्तिकारी इस बात को जानते हैं कि फैसले लिये जाने के बाद भी क्रान्ति के काम को जमीन पर उतारना कितना कठिन होता है। नेपाली जनवादी क्रान्ति का मुख्य कार्यभार है–भूमि क्रान्ति, जमीन जोतने वालों को, मेहनतकशों को। इस काम को सम्पन्न करने के बाद ही जनता के लोकतन्त्र की स्थापना की जा सकती है। भूमि क्रान्ति को सम्पन्न करने के लिए, भूमि-सम्बन्धों में मौलिक परिवर्तन के लिए एक केन्द्रीय सत्ता की, एक जनसेना की जरूरत होगी और साथ ही, हजारों की संख्या में प्रशिक्षित कार्यकर्ताओं की जरूरत होगी, जो सम्पूर्ण निष्ठा के साथ जनवादी कार्यभारों को पूरा करने के लिए जनता के पक्ष में अटल खड़े हों। इस काम में कहीं भी कोई कमजोरी दिखायी दे, या जनता की शक्ति कमजोर होती दिखायी दे तो केन्द्रीय सत्ता और जनसेना पलक झपकते उसकी मदद करें। हर कोई जानता है कि यह संघर्ष गाँव-गाँव में, छोटे-छोटे कस्बों में व शहरों में, बहुत ही तीव्रता के साथ होगा। तभी परोपजीवी वर्ग का, उसके दर्शन का, उसकी राजनीति का, उसकी संस्कृति का समूल नाश किया जा सकता है। लेकिन मुकम्मिल तौर पर इस महत्वपूर्ण आर्थिक काम को किये बिना किसी अन्य परिवर्तन की कल्पना भी नहीं की जा सकती।

नेपाल में वर्ग-शक्तियों का सन्तुलन, नेपाली क्रान्ति के प्रति पड़ोसी देशों का दृष्टिकोण और इसके प्रति साम्राज्यवादी देशों का रुख–यह सब कुछ देखने के बाद नेपाली क्रान्ति की मुकम्मिल जीत के प्रति विश्वास होना मुश्किल लगता है। समझौतों की राह पर चलते हुए माओवादी क्रान्तिकारी जमीन पर इस काम को किस तरह उतारेंगे, इसका निश्चित स्वरूप नहीं दिखायी देता, इसकी कोई रूपरेखा नहीं दिखायी देती।

नेपाली क्रान्ति में तीन सम्भावनाएँ हो सकती हैं। एक–मुकम्मिल भूमि सुधार हो, नेपाली समाज में एक बुनियादी परिवर्तन हो और मेहनतकशों का राज कायम हो। यह सम्भावना सबसे क्षीण दिखायी देती है। दूसरी सम्भावना है कि प्रतिक्रियावादी विश्वासघात करें और माओवादी क्रान्तिकारियों तथा जनता को धोखा दें। परिणामस्वरूप जनता को फिर से सशस्त्र संघर्ष की राह पकड़नी पड़े। तीसरी सम्भावना है कि वहाँ भारत के किस्म का एक लोकतन्त्र स्थापित हो। उस लोकतन्त्र में संसद, विधायिका, शासनतन्त्र और अन्य सभी संस्थाएँ जनता को ठगने के उपकरण–मात्र बन कर रह जायेंगे। यह सम्भावना सबसे बलवती दिखायी देती है।

यदि ऐसा होता है तो यह सारत: क्रान्ति की हार ही होगी और भारत की तरह नेपाली समाज भी लम्बे संक्रमण की प्रसव-पीड़ा झेलने के लिए बाध्य होगा।

नेपाल की जनता और दुनियाभर की क्रान्तिकारी तथा मेहनतकश जनता नेपाली क्रान्ति की गति और उसके परिणामों को चिन्ता, आकुलता, शंका, आशा और उम्मीद के साथ देख रहे हैं। ▣

भगत सिंह की पुस्तकें बेचना अपराध

दिल्ली की दानिश बुक्स की मालिक सुनीता कुमारी को शहीद भगत सिंह की पुस्तकें बेचने के आरोप में महाराष्ट्र पुलिस के उत्पीड़न का शिकार होना पड़ा।

गौरतलब है कि सुनीता कुमारी ने चन्द्रपुर पुस्तक मेले में अपनी स्टॉल लगायी थी। अचानक करीब 70 पुलिस कर्मियों ने उस स्टॉल को घेर लिया। पुलिस वालों ने स्टॉल में रखी शहीद भगत सिंह, अर्नेस्टो चे ग्वेरा, क्लारा जेटकिन, बाबूराम भट्टराई, आनन्द स्वरूप वर्मा और दूसरे लेखकों की पुस्तकें उठा लीं। इन पुस्तकों में से एक भी पाबन्दीशुदा नहीं थी।

इन पुस्तकों को बेचने के आरोप में सुनीता कुमारी पर गैरकानूनी कार्रवाइयाँ निरोधक कानून– 2004 की धारा 18 लगायी गयी है। यह कानून पोटा की जगह लाया गया था। साथ ही उनसे कहा गया है कि जब भी कभी जाँच या पूछताछ की जरूरत होगी तो उन्हें हाजिर होना पड़ेगा। पुलिस वालों ने सुनीता से पूछा कि जब देश आजाद हो चुका है, तब वह भगतसिंह की विचारधारावाली पुस्तकें क्यों बेच रही है। इसका जवाब तो यही हो सकता है कि यह कैसी आजादी है जहाँ भगत सिंह की किताब बेचना गैरकानूनी है, अपराध है? गौरतलब है कि 28 सितम्बर 2007 को शहीदेआजम भगत सिंह के 100वें जन्म दिवस के उपलक्ष में देशभर में उनकी जन्मशती मनायी जा रही है।

शासक वर्गों को पता होना चाहिए कि भगतसिंह एक विचारधारा है। संगीनों से रोको तो वह और भी प्रखर होकर फैलती चली जाती है।

अफगानिस्तान और इराक में अमरीका की पराजयः एक विश्लेषण

■ अरविन्द

अफगानिस्तान, इराक और लेबनान में अमरीका और उसके नाटो सहयोगियों को भारी पराजय का मुँह देखना पड़ा है। विगत कुछ महीनों से अफगानी प्रतिरोध योद्धाओं द्वारा नाटो सेनाओं पर एक के बाद एक कई हमले किये गये और नाटो के जिन देशों ने वहाँ सेनाएँ भेजी हैं, वे अमरीका से गुहार लगा रहे हैं कि वह अफगानिस्तान में और सैनिक भेजे। नाटो ने खुद भी यह निर्णय किया है कि अफगानिस्तान में कुमुक बढ़ायी जायेगी। आश्चर्य है कि अमरीका और नाटो के उसके सहयोगी देश अपने सारे साधन लगाकर भी अफगानिस्तान पर अधिपत्य नहीं कायम कर सके। करजई की हुकूमत राष्ट्रपति निवास तक सीमित है। कुछेक जगहों पर बाड़ों में नाटो की सेनाएँ रहती हैं और पूरी तैयारी के साथ बीच-बीच में सैनिक अभियान पर निकलती हैं। समूचे अफगानिस्तान में प्रतिरोध योद्धाओं की तूती बोलती है। अफगानिस्तान सीमा से लगे पाकिस्तानी इलाके में लाखों की संख्या में अफगान शरणार्थी बसे हुए हैं जहाँ कबाइलियों और उनके सरदारों का राज है। प्रतिरोध योद्धाओं को वहाँ से भी तन-मन-धन से समर्थन मिलता है। पाकिस्तान सरकार की अफगान नीति के चलते उसका भी मौन समर्थन उन्हें मिल रहा है जिसपर अमरीका बीच-बीच में हाय-तौबा करता रहता है।

इराक में अमरीका की और उसके सहयोगी देशों की सेनाएँ लगातार पराजय का मुँह देख रही हैं। अमरीकी साम्राज्यवादियों ने इराक को गृहयुद्ध की आग में धकेल दिया है। शिया और सुन्नी एक-दूसरे की गर्दन नापने के लिए तत्पर दिखायी देते हैं। सद्दाम को फाँसी देने के बाद उन देशों में भी जिनके हुक्मरान अमरीकापन्थी हैं और जिनके पेट्रोडालर अमरीकी बैंकों में सुरक्षित हैं, वहाँ भी व्यापक जनता में असन्तोष की आग जलने लगी है। इस तरह अरब क्षेत्र में जनता के बीच अमरीका विरोधी लहर दिखायी देती है। दुनियाभर के सुन्नी मुसलमान, वे जहाँ कहीं भी हों, अमरीकी नीतियों के खिलाफ हैं और अमरीका के प्रति उनमें जबरदस्त नफरत है। लेबनान भी गृहयुद्ध के कगार पर है। अभी चन्द महीनों पहले अमरीका के लठैत इजरायल को वहाँ मुँह की खानी पड़ी थी। वहाँ के शासक वर्गों के बीच इस पराजय को लेकर आपस में थुक्का-फजीहत चल रही है। इजरायली सेनापति को हटा दिया गया है। फिलिस्तीनियों को अमरीकियों ने बाँट रखा है और वहाँ भी फतह और हमास आपस में लड़ रहे हैं व अपनी फिलिस्तीनी आजादी की लड़ाई को कमजोर कर रहे हैं।

सोमालिया में अमरीकी जहाज बम बरसा रहे हैं। अमरीकापन्थी इथोपियाई सरकार उसकी सेना के बल पर सोमालिया की राजधानी पर कब्जा करके वहाँ की पहली सरकार की सेनाओं को भगाकर अपना आधिपत्य कायम करने के लिए प्रयासरत है। इस तरह देखा जा सकता है कि पाकिस्तान के पश्चिमी इलाके से लेकर बेरूत तक और भूमध्य सागर के उस पार, सोमालिया-इथोपिया तक हर कहीं एक युद्ध का मैदान बना हुआ है।

इराक और अफगानिस्तान में अमरीकी सेना की पराजय तथा उसके कारणों तथा विश्व पर आधिपत्य कायम करने के अमरीकी मन्सूबे और उसके भविष्य की चर्चा हम आगे करेंगे। लेकिन इन मुद्दों पर आने के पहले हम आज की दुनिया में क्रियाशील अन्तर्धाराओं, उनकी प्रकृति और उनके स्वरूप की संक्षेप में चर्चा करेंगे। इस परिप्रेक्ष्य में ही आज दुनिया के इतने विस्तृत रणक्षेत्र में लड़े जा रहे युद्धों को, उलझन में डाल देने वाली उनकी धाराओं, उपधाराओं को तथा उनके निहितार्थों को समझ पाना सम्भव होगा।

* * *

आज हम देख रहे हैं कि हमारे अपने देश में जम्मू कश्मीर के लोग हथियार लेकर लड़ रहे हैं। इण्डोनेशिया और

यहाँ तक कि चीन के योगूर प्रान्त में भी स्वायत्त क्षेत्रों में वे अपनी उपस्थिति दर्ज करते रहते हैं। चेचेन्या और मध्य एशिया के विभिन्न हिस्सों में भी मुस्लिम आतंकवादियों की खबरें सुनायी देती हैं। अरब अफ्रीका का कोई देश नहीं जहाँ इस्लामी आतंकवादी मौजूद न हों।

दूसरी ओर भारत के पूर्वोत्तर राज्यों में संघर्ष हो रहे हैं। लंका के तमिल टाइगर्स लम्बे समय से लड़ रहे हैं और वहाँ की सरकार व तमिल चीतों के बीच घमासान मचा हुआ है। मध्य और पूर्वी यूरोप, खासकर सर्बिया, स्लोवाकिया, कोसोवो और अल्बानिया, अभी हाल तक एक दूसरे से लड़ते रहे हैं और आज भी यह आग बुझी नहीं है। यही नहीं, स्पेन में बास विद्रोही हथियार उठाये हुए हैं। पूँजीवाद के स्वर्ग उत्तरी अमरीका के कनाडा में वहाँ की सरकार ने कनाडा के भीतर एक और राष्ट्र की घोषणा करके ऐसी ही स्थिति से निजात पा ली है।

अभी कल तक दक्षिणी अमरीका के बहुतेरे देशों की जनता वहाँ के राष्ट्राध्यक्षों के राजप्रसादों और महलों में घुसकर उन्हें दौड़ा-दौड़ा कर मारने लगी थी और महलों से भागकर उन्होंने अपनी जानें बचायीं। मेक्सिको में चुनावी धाँधली करके वहाँ दक्षिणपन्थी राष्ट्राध्यक्ष चुना गया और उसके विरुद्ध जनता सड़कों पर उतर आयी।

इस तरह हम देख रहे हैं कि दुनिया के कोने-कोने में अशान्ति है, अराजकता है, दमन का प्रतिरोध है और संघर्ष है। हम कह सकते हैं कि स्वर्ग में तूफान आया हुआ है जो थमने का नाम नहीं ले रहा है। आसमान में गर्म हवाओं के झोंके चल रहे हैं और समय-बा-समय वे एक प्रबल झंझावात का रूप ले लेते हैं।

आखिर इसका कारण क्या है?

1985 से 90 के बीच रूस के आधुनिक संशोधनवादियों, राजकीय पूँजीपतियों और सामाजिक-साम्राज्यवादियों का स्वर्ग उनकी आँखों के सामने ही बिखर गया। इसमें उस समाज के भीतर चल रही आर्थिक-राजनीतिक-सामाजिक शक्तियों की अपनी आन्तरिक गति ही प्रधान थी लेकिन रूसी बुर्जुवाजी के स्वर्ग को छिन्न-भिन्न कर देने, उसे टुकड़े-टुकड़े में विभाजित कर देने में अमरीका और उसके पश्चिमी सहयोगी देशों की भी बड़ी भूमिका थी।

पूँजीवाद के स्वर्ग अमरीका, ब्रिटेन जर्मनी, जापान, फ्रांस इत्यादि के स्वर्गाधिपतियों ने अमरीका की अगुवाई में रूसी पूँजीपति वर्ग के हजारों टूटे हुए टुकड़ों को बटोरना और सहेजना शुरू किया और अपने स्वर्ग को महास्वर्ग का रूप देना चाहा। काफी हद तक इन्हें सफलता भी मिली। अमरीकी नेतृत्व में साम्राज्यवादी समूह अपने देश में मजदूर वर्ग का शोषण, लूट-खसोट बढ़ाने के साथ-साथ तीसरी दुनिया के देशों पर आधिपत्य जमा कर उनपर एक नयी गुलामी थोप देने का प्रयास करने लगा। अमरीकी साम्राज्यवाद का मंसूबा तो विश्व पर अपना एकछत्र राज कायम करना था और अभी भी है। वह पुराने रोम की नकल में उससे ज्यादा बड़े और उससे भी ज्यादा वैभवशाली रोम का ख्वाब देखने लगा।

1990 के बाद विश्व स्तर पर शक्ति सन्तुलन में बहुत बड़ा परिवर्तन हुआ। इस नयी विश्व परिस्थिति में तीसरी दुनिया के ज्यादातर देशों के शोषक और शासक वर्ग अपने संकीर्ण स्वार्थों की पूर्ति के लिए अपने देश के हितों को पूरी तरह तिलांजलि देकर साम्राज्यवादी समूह से जा मिले। कुछ देशों के शासक वर्गों ने ऐसा नहीं भी किया।

अमरीकी नेतृत्व में साम्राज्यवादी समूह के साथ तीसरी दुनिया के शासकों के इस गठजोड़ के विरुद्ध इन देशों की विशाल जनता का अन्तरविरोध तीखा होकर सतह पर आ गया। यह तीव्र से तीव्रतर होता गया। इधर समाजवादी शिविर के टूटने बिखरने और समाजवादी देशों में पूँजीवाद के फिर से स्थापित होने और उसकी चरम परिणति के रूप में पूर्व समाजवादी देशों के छिन्न-भिन्न होने के कारण दुनिया में समाजवादी विचारधारा के प्रति निष्ठा भंग हुई, विश्वास कमजोर हुआ और भ्रम की स्थिति पैदा हुई। दुनिया भर के संशोधनवादियों और आधुनिक संशोधनवादी पार्टियों ने अपनी करनी से समाजवाद को बदनाम किया, समाजवादी विचारधारा को बदनाम किया और इस प्रश्न पर लोगों में काफी विभ्रम पैदा किया। क्यूबा जैसे कुछ देश और कुछ छोटी-मोटी मार्क्सवादी-लेनिनवादी पार्टियाँ, संगठन और ग्रुप मार्क्सवाद-लेनिनवाद की हिफाजत करते रहे लेकिन वे इतने समर्थ नहीं कि दुनिया के पैमाने पर फैले इस कुहासे को छाँट सकें। अपनी लाख सदिच्छा और नेकनीयती के बावजूद वे वस्तुगत तौर पर गैर-सर्वहारा, विजातीय विचारों से मुक्त नहीं रहे।

लेकिन, वर्ग-संघर्ष रुकता नहीं, वह निरन्तर जारी रहता है। यह संघर्ष कभी स्पष्ट तो कभी अस्पष्ट, कभी अनेक विकृतियों से भरा हुआ तो कभी अपने उत्कृष्ट रूप में, लगातार चलता रहता है। जीवन की गति कभी थमती नहीं, संघर्ष की धारा कभी रुकती नहीं,

चाहे परिणाम जो भी हों। अच्छे नहीं तो बुरे रूप में ही सही, संघर्ष अपनी निरन्तरता बनाये रखता है।

आज दुनिया के पैमाने पर तीन बड़ी अन्तरधाराएँ गतिमान हैं। पहली धारा–देश आजादी चाहते हैं, दूसरी–राष्ट्र मुक्ति चाहते हैं, और तीसरी–जनता क्रान्ति चाहती है। ईरान, उत्तरी कोरिया, क्यूबा, वेनेजुएला, बोलीविया, पैरागुए तथा अन्य देशों में, जो अपनी आजादी, अपनी सम्प्रभुता की हिफाजत के लिए जूझ रहे हैं, पहली धारा की अभिव्यक्ति देखी जा सकती है।

दूसरी धारा, राष्ट्र मुक्ति चाहते हैं कि अभिव्यक्ति कश्मीर और पूर्वोत्तर राज्यों, फिलिस्तीन, कुर्दिस्तान, श्रीलंका के तमिल टाइगर, स्पेन के बास तथा अन्य जगहों पर देखी जा सकती है।

वेनेजुएला, बोलीविया, अर्जेण्टीना व अन्य बहुतेरे देशों में जनता कुछ दिनों पूर्व तक वहाँ के राष्ट्राध्यक्षों को राज प्रासादों से निकाल बाहर किया करती थी। फ्रांस में बेराजगारी के खिलाफ जनविद्रोह, भारत में विशेष आर्थिक क्षेत्र बनाये जाने, विस्थापित किये जाने या अन्य मुद्दों को लेकर जनता का सड़कों पर उतर आना तथा विभिन्न देशों में इसी तरह की लड़ाइयों में जनता क्रान्ति चाहती है, की अभिव्यक्ति होती है।

दुनिया के किसी एक हिस्से में कहीं पहली धारा, कहीं दूसरी धारा तो कहीं तीसरी धारा प्रवाहमान है। कहीं दो धाराएँ मिल कर एक सशक्त अन्तर्धारा का निर्माण करती हैं तो कहीं तीनों ही मिलकर एक प्रबलतर अन्तर्धारा बन जाती हैं। ये सभी धाराएँ स्थान व काल के अनुरूप एक दूसरे को स्थानापन्न भी करती रहती हैं। ये तीनों धाराएँ मिलाकर आज संघर्ष के इतने रूपों को जन्म देती रहती हैं, आपस में इस तरह घुल मिल जाती हैं कि सामान्य बुद्धि चकराने लगती है और अच्छे खासे समझदार लोगों में भी भ्रम की स्थिति पैदा हो जाती है। यह समझना मुश्किल हो जाता है कि क्या हो रहा है। जनता को, **संघर्षरत जनता को एक दिशा चाहिए, सपना चाहिए, यूटोपिया चाहिए, एक प्रेरणा का स्रोत चाहिए।** इसके बगैर संघर्ष आगे नहीं बढ़ते। 19वीं सदी के उत्तरार्द्ध से लेकर 20वीं सदी के पूर्वार्द्ध और उसके दो दशकों बाद तक दुनिया की मेहनतकश जनता के संघर्षों की दिशा, उनका सपना, उनका यूटोपिया, उनका प्रेरणास्रोत, समाजवादी विचारधारा रही है। यह आज भी कहीं-कहीं कमजोर और क्षीण रूप में ही सही मौजूद है, लेकिन दुनिया की जनता का बहुलांश इससे दूर हो चुका है। अपने सपने के लिए, अपने यूटोपिया के लिए, अपने प्रेरणास्रोत के लिए, वह धर्मों की तरफ मुड़ी है। अरब देशों में, खाड़ी के देशों में, अरब-अफ्रीका में, वहाँ के लोग इस्लाम की ओर मुड़े हैं और ये नये किस्म के कट्टर, कठमुल्ला इस्लामपन्थी उनका नेतृत्व कर रहे हैं। अमरीका के नेतृत्व में साम्राज्यवादी समूह के देशों के शासक वर्गों तथा तीसरी दुनिया के शासकों-शोषकों के संश्रय के विरुद्ध ये शक्तियाँ ही आज दुनिया के कई देशों में जनता के संघर्षों को गति दे रही हैं, उनका संचालन कर रही हैं।

सभी लोग जानते है कि आज अफगानी लड़ाके बहुत ही कट्टर किस्म के कठमुल्लावादी इस्लामपन्थी हैं। इराक में लड़ने वाले लोग भी कमोबेश इसी तरह के हैं। जो लोग कट्टर नहीं थे, वे भी इराक पर अमरीकी हमले से लेकर अब तक, वहीं तक जाने को बाध्य हुए हैं, अपनी-अपनी अस्मिता की तलाश करते हुए वे वहाँ तक बढ़ते चले गये। सर्वविदित है कि फिलिस्तीन के हमास भी इसी तरह के कट्टर कठमुल्लावादी इस्लामपन्थी हैं। लेबनान के हिज्बुल्ला और कश्मीर की आजादी के लिए लड़ने वाले कई ग्रुप भी ठीक इसी तरह के लोग हैं। सोमालिया में शासन कर रहा तबका भी, जिसे अमरीकियों ने अभी अपदस्थ किया है, इसी तरह के लोगों को लेकर बनाया गया है।

स्पष्ट है कि यह विचारधारा एक स्वस्थ वर्ग-संघर्ष को जन्म नहीं दे

ब्रिटिश सेनानायक जल्दी इराक छोड़ना चाहता है

ब्रिटिश सेनानायक सर रिचार्ड ने कहा है कि ब्रिटेन को इराक से जल्दी ही अपनी सेनाएँ वापस बुला लेनी चाहिए वरना इराकी और ब्रिटिश समाज को इसके गम्भीर परिणाम भुगतने होंगे। उसका कहना था कि "मैं यह नहीं कहता कि दुनियाभर में हम जितनी सारी कठिनाइयाँ झेल रहे हैं, उन सबका कारण इराक में हमारी मौजूदगी है लेकिन इसमें कोई सन्देह नहीं कि इराक में हमारी उपस्थिति उन्हें तीव्र कर रही है।"

ब्रिटेन के किसी सेनापति द्वारा सरकार की नीतियों की खुली आलोचना वहाँ के इतिहास की अनोखी घटना है। इसलिए यह बयान वहाँ के प्रधानमन्त्री के गाल पर करारा झापड़ है।

दो दिन बाद ब्लेयर ने अपने जनरल के इस बयान को जहर की तरह पीते हुए इस बात पर अपनी सहमति जाहिर की।

सकती, एक स्वस्थ समाज का निर्माण नहीं कर सकती और साम्राज्यवादी समूह के अस्तित्व को नहीं मिटा सकती। लेकिन वही पुरानी बात कि जब तक कोई स्वस्थ विकल्प इसकी जगह नहीं लेता तब तक ऐसा ही चलता रहेगा। स्थान और काल के मुताबिक इसके रूप भिन्न-भिन्न हो सकते हैं, इसकी प्रकृति और इसका सारतत्व प्रतिक्रियावादी ही रहेगा और यह यूटोपिया किसी अंजाम तक नहीं पहुँच सकता। फिर भी वस्तुगत तौर पर आज इसकी भूमिका, साम्राज्यवाद विरोधी होने के चलते, नकारात्मक नहीं है और जनता के भीतर इसके व्यापक समर्थन का कारण भी यही है।

आज के विश्व को गति देने वाला प्रधान अन्तरविरोध, जो इसके विकास का महत्वपूर्ण कारक है, वह है–अमरीका के नेतृत्व में साम्राज्यवादी समूह और तीसरी दुनिया के शासक वर्गों के गठजोड़ के विरुद्ध तीसरी दुनिया के देशों की जनता के विशाल बहुमत का अन्तरविरोध। यहाँ स्पष्ट करना जरूरी है कि तीसरी दुनिया के सभी देशों के शासक वर्ग साम्राज्यवादी समूह के साथ नहीं जा मिले हैं। कई देशों के शासक वर्ग अपनी आज़ादी बचाये रखने के लिए संघर्षरत हैं।

यही प्रधान अन्तरविरोध आज भारतीय उपमहाद्वीप से लेकर बेरुत तक और मध्य एशिया से अरब-अफ्रीका तक के विशाल क्षेत्र में घनीभूत रूप से अभिव्यक्त हो रहे हैं। इस विशाल क्षेत्र में भी इराक, ईरान, सीरिया, सोमालिया, सूडान, इथोपिया आज इस झंझावात के केन्द्र में हैं। यहीं साम्राज्यवादी देशों के भीतर के अन्तरविरोध भी तीव्रता से अभिव्यक्त होते हैं। यह पूरा इलाका बहुत बड़े ऊर्जा स्रोतों से भरा पड़ा है जिससे आज विश्व की--विकसित देशों और नवोदित विकासशील में से अग्रणी देशों की ऊर्जा की जरूरतें पूरी होती हैं तथा इनके बल पर ही इन देशों के उद्योग-धन्धे फल-फूल रहे हैं। जापान, चीन, यूरोप और उत्तरी अमरीका के देश, मुख्यत: इन्हीं ऊर्जा स्रोतों पर निर्भर हैं। इसलिए स्वाभाविक है कि यही इलाका साम्राज्यवादी समूह के देशों की प्रतिद्वन्द्विता का कारण बने।

आज चाहे इराक हो या अफगानिस्तान, या फिर ईरान, फिलिस्तीन, सोमालिया, सूडान, सऊदी अरब सहित अरब के देश, सभी बारूद के ढेर पर बैठे हुए हैं।

* * *

अब हम अपने मूल विषय पर वापस आते हैं। 1988-89 के बाद अमरीकी साम्राज्यवाद, जिसका मंसूबा दुनिया पर अपना प्रभुत्व कायम करना है और जो आज की दुनिया में पुराने रोम के एतिहासिक गौरव, सम्पन्नता और शक्ति का उत्तराधिकारी बनना चाहता है, उसने पूर्वी यूरोप, केन्द्रीय यूरोप और रूस से अलग हुए एशियाई देशों में पीली, गुलाबी, नारंगी और मखमली ''क्रान्तियाँ'' प्रायोजित करके उन्हें अपने प्रभाव क्षेत्र में शामिल करने के बाद सबसे पहले मध्यपूर्व पर अपना आधिपत्य स्थापित करने की योजना को ही कार्यान्वित करने का प्रयास किया। वियतनाम युद्ध में पिटने और अमरीकी शासक वर्गों के वियतनाम सिण्ड्रोम से ग्रस्त होने के बाद, तत्कालीन विश्व में साम्राज्यवादी देशों के आपसी अन्तरविरोधों का लाभ उठाकर तीसरी दुनिया के देश अपनी आर्थिक आजादी के विस्तार की ओर अग्रसर हुए थे। ओपेक का गठन उसी अन्तरराष्ट्रीय परिस्थिति की देन था। अमरीका और अन्य सभी साम्राज्यवादी भी इस बात को फूटी आँखों नहीं देखना चाहते थे कि तेल की कीमतें बढ़ें, उनकी तेल कम्पनियों का राष्ट्रीयकरण हो और तेल उत्पादक देश उनके चंगुल से मुक्त हों। लेकिन 1988-89 और इसके बाद के घटनाक्रमों ने एक बार फिर अमरीकी साम्राज्यवाद की महत्वाकांक्षा को बढ़ाने का काम किया।

उसकी योजना के मुताबिक अरब देशों में एक-एक करके ''लोकतन्त्र'' लाने का षड्यन्त्र शुरू हो गया। उसका लठैत इजरायल वहाँ पहले से मौजूद था ही। उसने उन देशों में सीधे दखलन्दाजी करने का मन बना लिया। इसी बीच 11 सितम्बर 2001 को अमरीका के व्यापार केन्द्र व पेण्टागन पर जहाज टकराये और अमरीका को एक बहाना मिल गया। सभ्यताओं के टकराव का सिद्धान्त पेश किया गया जो साम्राज्यवादियों और दुनिया भर के ठगों के लिए बहुत लाभकारी है और उनके शोषण, लूट-खसोट, दमन-उत्पीड़न को छिपाने के लिए पर्दे का काम करता है। पता नहीं हटिंगटन भी इतिहास के अन्त की घोषणा करने वाले फूकोयामा की तरह ही साम्राज्यवादियों का वेतनभोगी है या कुछ और? जो भी हो, उसका यह एतिहासिक सिद्धान्त अमरीका या साम्राज्यवादी समूह की सेवा तो करता ही है।

अमरीकी साम्राज्यवादियों ने अफगानिस्तान पर अपनी पूरी ताकत और आधुनिकतम हथियारों के साथ हमला बोला तथा अपनी पूरी सामरिक शक्ति अफगानिस्तान में झोंक दी। अफगानिस्तान तबाह हो गया। बम वर्षकों ने खेतों-खलिहानों, खूबसूरत वादियों,

पहाड़ियों और शहरों को धूल में बदल दिया तथा अफगानी जनता के लिए कहर बन गये। बिन लादेन और मुल्ला उमर जैसे सिरफिरे लोगों ने अमरीका को इस काम के लिए मानो न्योता दे दिया हो–आ बैल मुझे मार। लेकिन कहर तो अफगानी जनता पर बरपा।

इराक में सद्दाम हुसैन की एक भूल ने अमरीका को दूसरा मौका दिया। यह सही है कि कुवैत इराक का एक हिस्सा था और उपनिवेशवादियों ने ही उसे एक अलग राज्य बनाया था। यह भी सही है कि कुवैत के अमीर-उमरा अमरीकी साम्राज्यवाद के हिमायती और वफादार हैं और उनके पेट्रोडालर अमरीकी बैंकों में ही जमा होते हैं। सद्दाम हुसैन ने अपनी शक्ति का गलत अन्दाजा लगा लिया और वह कुवैत पर आक्रमण कर बैठे। कुवैत, सऊदी अरब, कतर और खाड़ी के सारे प्रतिक्रियावादी शेख-उमरा भयाक्रान्त हो गये और अमरीकी सेना से गुहार लगाने लगे। सद्दाम हुसैन की शक्ति इतनी ज्यादा नहीं थी कि उपनिवेशवादियों द्वारा किये गये सभी कुकर्मों को ठीक कर लें। चीन आज एक बहुत ही ताकतवर देश है लेकिन वहाँ के शासकों ने ताइवान पर आक्रमण करके उसे अपने देश में नहीं मिलाया। कुवैत पर इराकी हमले का लाभ उठाकर अमरीकी साम्राज्यवादियों ने पहले इराक पर छोटा हमला किया और उसपर प्रतिबन्ध लगाये। बाद में एक सर्वव्यापी हमला बोल कर वहाँ अपना आधिपत्य जमाने और नयी गुलामी थोपने के प्रयास में लग गया। इराक में भी उसने वही किया जो अफगानिस्तान में। बेबीलोन और मेसोपोटामिया की बहुमूल्य सांस्कृतिक विरासत को उसने मिट्टी में मिला दिया और उसके सैनिकों और अन्य अमरीकियों ने डाकुओं की तरह संग्रहालयों को लूटा। अफगानिस्तान की तरह इराक में भी उसे तात्कलिक सफलता मिली और वहाँ के शासक वर्ग पराजित हुए।

अफगानिस्तान में नाटो की सेनाएँ बुरी तरह हार रही थीं। इससे पहले कि वे भगदड़ मचाते हुए पीछे लौटें, अमरीका ने अफगानिस्तान में कमान सम्भाल ली और वहाँ अपने फौजियों की संख्या भी बढ़ा दी।

अफगानिस्तान में लड़ रही आजादी पसन्द जनता अब अमरीका का भी वही हाल करेगी जो उसने नाटो का किया है।

लेकिन आज अमरीका एक के बाद एक बहुत बुरी तरह मुँह की खा रहा है। इधर नाटो की सेनाएँ हार रही हैं तो उधर अमरीका की। लेकिन फिर भी इराक को उसने एक भयावह पीड़ा के समुद्र में धकेल दिया है। वहाँ की जनता के दुख का कोई अन्त नहीं है। न जाने कितने बच्चे, बूढ़े, औरत, मर्द, लड़के, लड़कियाँ मौत के घाट उतार दिये गये या मानसिक सन्त्रास में जी रहे हैं। आज शिया व सुन्नी दोनों एक-दूसरे को दुश्मनों की तरह मार रहे हैं। 100 से ज्यादा लोग रोज ही मारे जाते हैं। कोई भी सुरक्षित नहीं है, न शिया, न सुन्नी और न ही कुर्द। कोई भी, मारा जा सकता है। रोज वहाँ अबूगरीब दोहराया जाता है और अमरीकी क्रूरता का ताण्डव होता है। तीन हजार से ज्यादा अमरीकी फौजी मारे जा चुके हैं। बुरी तरह से हारने के बाद बुश अब वहाँ 21 हजार फौज भेजने की कोशिश कर रहा है। उसके सेनापति कहते हैं कि हम युद्ध नहीं जीत सकते। व्यवस्था के उच्च पदस्थ अनुभवी लोग कहते हैं कि अमरीका युद्ध नहीं जीत सकता। अमरीका के विश्वस्त अनुचर टोनी ब्लेयर के सेनापति ने स्पष्ट कहा कि इराक में जाना गलत था और वहाँ से सेना वापिस बुलानी चाहिए। बुश और ब्लेयर दोनों ही रोज थूकते और चाटते हैं। उसके बहुत ही भरोसेमन्द मित्र और निष्ठावान सहयोगी जापान का रक्षा मन्त्री कहता है कि इराक में जाना गलत था। अमरीका धमकी दे चुका है कि जापान का रक्षा मन्त्री यदि ऐसा ही बयान देता रहा तो आगे होने वाली रक्षामन्त्रियों और विदेश मन्त्रियों की बैठक रद्द कर दी जायेगी। दुनियाभर के लोग अमरीका की इराक में मौजूदगी का विरोध कर रहे हैं। जो मुँह पर नहीं बोल सकते वे भी विरोध कर रहे हैं। अमरीका की जनता भी इसका विरोध कर रही है। वियतनाम युद्ध का प्रतिवाद करने वालों में अग्रणी और बहुत ही मुखर जेन फुण्डा आज इराक युद्ध के विरोध में सड़क पर उतर आयी हैं और उन्होंने कहा है कि 34 वर्षों बाद वह अमरीका द्वारा संचालित युद्ध में सड़कों पर उतरी हैं।

बुश कांग्रेस और सीनेट के चुनाव में बुरी तरह हार चुका है। एक आयोग जिसमें बहुत ही विश्वस्त, अनुभवी राजनयिकों और विद्वत्जनों को शामिल किया गया था, उसने 6 माह के गहरे और विस्तृत अध्ययन के बाद बताया कि हम युद्ध जीत नहीं सकते। हमें इराक में एक भी सैनिक अड्डा कायम रखने के प्रलोभन और इराकी तेल के

लोभ से छुटकारा पाना चाहिए। लेकिन फिर भी शराबी पियक्कड़ रहा ये मनोरोगी अमरीका के अधोपतित इजारेदारों के एक समूह के आर्थिक स्वार्थों के लिए जुआ खेलता जा रहा है? अमरीकी कांग्रेस के आगे गिड़गिड़ाते हुए उसने कहा है कि हमें एक मौका और दिया जाये। जाहिर है दो साल बाद वह नहीं रहेगा।

अमरीकी शासक वर्ग के अनुभवी राजनीतिज्ञों के भीतर नीतिगत विरोध जरूर है लेकिन उनमें कोई बुनियादी विरोध नहीं है। सबका लक्ष्य एक है जिसपर सब एक मत हैं। यह अलग बात है कि जब कोई बुरी तरह फँस जाता है तो दूसरे उसे गाली देते हैं और आलोचना करते हैं। डेमोक्रेटस के बहुमत वाली कांग्रेस में एक ऐसा प्रस्ताव पास करके इराक में अधिक फौज भेजने का विरोध किया गया है लेकिन यह प्रस्ताव बाध्यकारी नहीं है। स्पष्ट है कि कांग्रेस बाध्यकारी प्रस्ताव भी पास कर सकती थी।

सद्दाम को फाँसी पर चढ़ाकर बुश ने बदला तो ले लिया लेकिन मरने के बाद सद्दाम का कद और इज्जत, दोनों ही बहुत बढ़ गये। वह उपनिवेशवाद और साम्राज्यवाद के विरोध में लड़ते हुए शहीदों की कतारों में जा खड़ा हुआ और अरब विश्व की सुन्नी जनता का हर दिल अजीज हो गया। शियाओं के बीच के आम समझदार आदमी भी सद्दाम को फाँसी दिये जाने के विरोधी हैं और उन्होंने भी उसके गम में आँसू बहाये हैं। परम्परागत प्रतिशोध के चलते कट्टरपन्थी शियाओं और मुल्लाओं ने फाँसी का समर्थन करके अपने दोनों हाथ खून में रंग लिये हैं जिसे दजला-फरात का पानी सदियों तक धोकर साफ नहीं कर सकता। सच है धर्मान्धता आदमी को पागल बना देती है। आज जिन लुटेरे और हत्यारे अमरीकी साम्राज्यवादियों ने शियाओं से मिलकर सद्दाम को फाँसी चढ़ाया, वे ही कल सुन्नियों के साथ मिलकर अयातुल्ला सिस्तानी को फाँसी पर चढ़ायेंगे। लेकिन ये धर्मान्ध मुल्ला और उनका अन्धानुकरण करने वाले अनुयायी हर चीज को मजहब और फिरके के चश्मे से देखते हैं। मरा हुआ सद्दाम जिन्दा सद्दाम से कहीं ज्यादा शक्तिशाली हो गया। सद्दाम का भूत पूरे युद्धक्षेत्र में अमरीकियों और उनके शिया अनुचरों को सताता रहेगा।

आखिर क्या बात है कि नाटो की सेनाएँ, अमरीका और उसके सहयोगी देशों की सेनाएँ अफगानिस्तान और इराक में हार चुकी हैं। यह भी एक तयशुदा बात है कि 21 हजार अमरीकी सिपाही बढ़ा दिये जाने से भी इराक युद्ध जीता नहीं जा सकता। इसके साथ आधी सदी बाद पहली बार अमरीकी लठैत इजरायल भी लेबनान में पिटा है। इजरायली शासक वर्गों और उनके राजनीतिक घेरे में पुनर्विचार हो रहा है और इसके कारणों की तलाश की जा रही है। इतिहास की गति को, उसकी अन्तर्धाराओं को, उसकी विकास की दिशा को समझने वाले लोग तो पहले भी जानते थे कि इराक और अफगानिस्तान में अमरीका और नाटो का हारना निश्चित है। अफगानिस्तान से लेकर बेरूत तक और मध्य एशिया से लेकर अरब देशों और अरब-अफ्रीका तक लोकतन्त्र एक मजाक बनकर रह गया है। लोग अमरीकी मंसूबों को अच्छी तरह से समझने लगे हैं। शोषण, लूट-खसोट, दमन-उत्पीड़न के साथ प्रतिरोध और उसकी शक्तियाँ भी बढ़ने लगी हैं। जिस आतंकवाद का नाटक रचाकर अमरीका प्रतिरोध की शक्तियों को तोड़ना चाहता है, आज रक्तबीज की तरह एक के बदले हजार आतंकवादी पैदा हो जाते हैं। उनका जनाधार बढ़ता जा रहा है और उनका नैतिक समर्थन व्यापक होता जा रहा है। छिटपुट आतंकवाद की घटनाएँ अब जनप्रतिरोध की अभेद्य दीवार बनकर उठ खड़ी होने लगी हैं और लगातार आक्रामक रुख अख्तियार करती जा रही हैं। आखिर साम्राज्यवादी समूह की विशाल आर्थिक ताकत, उसके आधुनिकतम सैनिक साजो-सामान, उसकी जल, थल और वायु सेनाएँ, उसकी समूची ताकत क्यों हार रही है? क्यों इस विशाल युद्ध क्षेत्र में एक नहीं, बहुतेरे इतिहास पुरुष, असंख्य उमर मुख्तार पैदा होने लगे हैं?

अमरीकी साम्राज्यवाद की इन पराजयों के बारे में ढेर से उपलब्ध तथ्यों, रिपोर्टों, कूटनीतिक वक्तव्यों और सामरिक-तकनीकी ब्योरों में न जाकर इससे सम्बन्धित एक ऐतिहासिक घटना के जरिये अपनी बात स्पष्ट करना चाहेंगे।

नेपोलियन बोनापार्ट एक विलक्षण प्रतिभा का धनी सैन्य विशारद था। आधुनिक यूरोप ने इससे बड़ी कोई सैनिक प्रतिभा नहीं पैदा की है। टाम पेन अपने युग के एक महान अन्तरराष्ट्रवादी क्रान्तिकारी थे जो मूलत: ब्रिटेन के निवासी थे और अमरीका जाकर बस गये थे। 1776 की अमरीकी स्वाधीनता की लड़ाई में वे वाशिंगटन के साथ थे। पर्चे और छोटी पुस्तिकाएँ लिखने में उनका कोई सानी नहीं था। जब भी अमरीकी स्वतन्त्रता सेनानी पराजय के करीब होते, वाशिंगटन और उनका नेतृत्व अलग-थलग पड़ जाता तो वाशिंगटन टाम पेन से अनुरोध करते–"टाम पेन एक और पर्चा लिखो।" टाम पेन ने उस समय संकट शृंखला–1,2,3...के नाम से पर्चे लिखे जो

आज भी पढ़े जाते हैं।

अमरीकी स्वाधीनता संग्राम में जीत के बाद फ्रांस में हो रही 1789 की क्रान्ति में शरीक होने के लिए टाम पेन यूरोप चले आये। फ्रांसीसी क्रान्ति पूरी हो चुकी थी और नेपोलियन बोनापार्ट फ्रांस और यूरोप के बहुत बड़े हिस्से का सम्राट बन चुका था। टाम पेन पेरिस से दूर एक छोटी कुटिया में रह रहे थे और काफी बूढ़े हो चुके थे। हम पहले कह चुके हैं कि टाम पेन मूलत: अंग्रेज थे। यूरोप का शहंशाह नेपोलियन टाम पेन से मिलने उनकी कुटिया में पहुँचा और उनसे पूछा–"महाशय टाम पेन, अगर इंग्लैण्ड पर हमला कर दिया जाये, तो क्या हम जीत जायेंगे?" टाम पेन का जवाब था–"नेपोलियन, हो सकता है एक इंग्लैण्ड को तुम जीत लो, लेकिन दूसरा इंग्लैण्ड तुम्हारे साम्राज्य की ईंट से ईंट बजा देगा, तुम्हारी मिट्टी पलीद कर देगा।" नेपोलियन बोनापार्ट अवाक रह गया। इतिहास टाम पेन को दुर्मुख के रूप में जानता है। यूरोप के शहंशाह को ऐसे वचन सुनने की उम्मीद नहीं थी। लेकिन हुआ वही जो टाम पेन ने कहा था। दूसरे यूरोप से अर्थात यूरोप के मजदूरों से, वहाँ के मेहनतकश अवाम से, वहाँ की जनता से नेपोलियन बुरी तरह हारा। वाटरलू और सेण्ट हेलेना आज भी इतिहास के हरेक विद्यार्थी की जबान पर होता है।

अमरीकियों ने बिन लादेन और मूल्ला उमर पर तो जीत हासिल कर ली लेकिन अफगानी जनता नाटो के लिए हर रोज कब्रें खोद रही है। ठीक इसी तरह सद्दाम उसकी सेना और सरकार को तो अमरीका ने ध्वस्त कर दिया लेकिन इराक की जनता उसके लिए रोज कब्रें खोद रही है। अब अमरीकी साम्राज्यवादियों को तय करना है कि वे कहाँ दफन होना चाहते हैं।

21 हजार नहीं 21 लाख सैनिक भी इराक की जनता को गुलाम नहीं बना सकते और अफगानों का तो इतिहास ही रहा है कि जब भी उपनिवेशवादियों ने उनकी सरहद में घुसने की कोशिश की तो बहादुर अफगानों ने उन्हें वहीं दफन कर दिया। रूसी साम्राज्यवाद की पूरी ताकत अफगानों को नहीं हरा सकी, उल्टे वह खुद जरूर विघटित हो गयी। यह बहुत हाल की बात है। लेकिन लालची, खुदगर्ज और मगरूर लोग तर्कशक्ति खो देते हैं। यह कहावत बिल्कुल सही है कि प्रतिक्रियावादी ताकतें, प्रगति विरोधी ताकत एक बड़ा सा पत्थर उठाकर अपने ऊपर पटक लेती हैं और अपने विनाश को निमन्त्रित करती हैं।

बुश का अहंकार, उसका गरूर, उसकी हेकड़ी इराकी रेगिस्तान में मोम की तरह पिघलने लगी है। लोकतन्त्र और हजारों तरह के ऐसे ही लुभावने नारों के पीछे का छल-प्रपंच, ढोंग-पाखण्ड, सब कुछ बेनकाब हो चुका है। अफगानिस्तान और इराक ने अमरीकी साम्राज्यवाद की हदें तय कर दी हैं। अगर इस पियक्कड़ मनोरोगी पर और ज्यादा पागलपन सवार हुआ और इसने ईरान और सीरिया पर आक्रमण करने या इजरायल से आक्रमण करवाने की कोशिश की तो यह युद्ध क्षेत्र काफी दूर तक फैल जायेगा, देशों और राष्ट्रों की सीमाओं को पार कर जायेगा और दुनिया पर राज करने के अमरीका के मंसूबे को हमेशा के लिए दफन कर दिया जायेगा। ▣

दो नावों पर सवारी

6 फरवरी को अपनी दो दिन की ईरान यात्रा की शुरुआत में भारत के विदेशमन्त्री प्रणव मुखर्जी ने तेहरान में संवाददाताओं को बताया कि ईरान के नाभिकीय कार्यक्रम पर बढ़ते हुए तनाव को "वार्ताओं और बहस-मुबाहिसे के जरिये" कम किया जाना चाहिए।

उन्होंने कहा कि भारत "पहले ही कह चुका है कि सैनिक साधनों का इस्तेमाल इस मामले का कोई हल नहीं है। इसका हल केवल वार्ताओं के जरिये निकालना पड़ेगा, भले ही यह कितना ही श्रमसाध्य क्यों न हो।" "किसी भी देश की तरह ईरान का भी यह अधिकार है कि वह शान्तिपूर्ण नागरिक नाभिकीय ऊर्जा कार्यक्रम जारी रखे।...इसलिए हमारी अवस्थिति यह है कि इस मुद्दे को बातचीत के जरिये निपटाया जाना चाहिए। जोर-जबरदस्ती के तरीकों से इसे हल नहीं किया जा सकता।"

दूसरी ओर 22 फरवरी को अन्तरराष्ट्रीय परमाणु ऊर्जा एजेन्सी की ईरान पर रिपोर्ट आने से ठीक पहले भारत ने ईरान को परमाणु तकनीक के "प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष" निर्यात पर रोक लगा दी।

भारतीय शासक वर्ग की महाशक्ति बनने की महत्वाकांक्षा, अमरीका द्वारा नाभिकीय अप्रसार के लिए उसके साथ किये जा रहे छल-बल, भारतीय विदेश नीति में उलटफेर और दुविधा के सन्दर्भ में ही इसे समझा जा सकता है। एक तरफ तीसरी दुनिया के सामने वह तटस्थ विदेश नीति की पुरानी परम्परा का दिखावा कर रहा है तो दूसरी तरफ अमरीकी साम्राज्यवाद के प्रति वफादार भी बने रहना चाहता है।

उत्तरी कोरिया और उद्धत-उन्मत्त बुश

■ संजय

विनय न मानत जलधि जड़, गये तीन दिन बीत।
बोले राम सकोप तब, भय बिनु होय न प्रीत।

समूचे विश्व पर एकछत्र प्रभुत्व कायम करना अमरीकी साम्राज्यवाद की कार्यसूची पर तभी लाया गया था जब 1989-90 में विश्व के राजनीतिक मंच पर कुछ महत्वपूर्ण घटनाओं के फलस्वरूप विश्व शक्ति सन्तुलन बदल गया था। यह वहाँ के सामायादारों की आम सहमति की नीति है।

सबसे पहले उसने पूर्व सोवियत गणराज्य से अलग हुए देशों तथा उसके खेमे के पूर्वी और केन्द्रीय यूरोप के पूर्व-समाजवादी देशों को नाटो देशों के सहयोग से अपने अधीन करने की कोशिश की।

इसके साथ ही, अमरीका के सामने समर्पण न करने वाले देशों– क्यूबा, उत्तरी कोरिया, लीबिया, ईरान इत्यादि को उसने येन-केन-प्रकारेण अपने अधीन करने की मुहिम छेड़ दी।

अमरीका का वास्तविक दुश्मन और प्रतिद्वन्द्वी चीन है। इसके विरुद्ध एक लम्बी और विश्वव्यापी रणनीति बनाकर वह उसे शिकस्त देना चाहता है। लीबिया के कागजी शेर ने बाद में अमरीका के सामने आत्मसमर्पण कर दिया। उत्तरी कोरिया को धौंस-धमकी दी गयी और हर तरह से उसे झुकाने का प्रयास किया गया। वहाँ की सरकार एक सम्मानजनक समझौते के लिए तैयार थी। इसके लिए 6 देश– रूस, चीन, अमरीका, जापान, दक्षिणी कोरिया और उत्तरी कोरिया– सुलह समझौते के लिए बातचीत करते रहे।

इराक पर हमले के शुरुआती दिनों में मिली तात्कलिक सफलता ने बुश को पागल बना दिया। वह उन्मत्त साँड़ की तरह व्यवहार करने लगा। बुश प्रशासन ने अफवाहें उड़ानी और झूठी कहानियाँ गढ़नी शुरू कर दीं कि उत्तरी कोरिया ने लीबिया को बम बनाने के लिए कुछ प्लूटोनियम और दो टन यूरेनियम हेक्साफ्लोराइड दिया है जो बम बनाने के ईंधन को समृद्ध करने के काम आता है। उसकी मंशा थी, उत्तरी कोरिया को भी क्यूबा की तरह चारों ओर से घेरकर वहाँ की सरकार को हटाना।

इस उकसावे और भड़काने की कार्रवाई के बाद उत्तरी कोरिया ने घोषणा कर दी कि उसके पास आणविक हथियार हैं और वह 6 देशों की फरवरी 2005 की वार्ता में शामिल नहीं होगा। इसके कुछ महीने बाद अक्तूबर 2006 में उसने बम विस्फोट किया। दक्षिणी कोरिया भयाक्रान्त हो उठा, जापान दहशत में आ गया और बुश की हेकड़ी मोम ही तरह पिघलने लगी।

उत्तरी कोरिया ने 6 देशों की सुलह-समझौते की वार्ता में फिर से शामिल होने के लिए दो-तीन शर्तें रखी हैं। एक महत्पूर्ण शर्त तो यह है कि वह अमरीका के साथ सीधे-सीधे बात करना चाहता है। उत्तरी कोरिया अच्छी तरह जानता है कि दक्षिणी कोरिया और जापान में स्थित अमरीकी नाभिकीय अड्डे अमरीका के पूर्ण नियन्त्रण में हैं और अमरीकी कमाण्डर की इजाजत के बिना उनके गेट के भीतर वहाँ के प्रधानमन्त्री, राष्ट्रपति या महाराजाधिराज भी नहीं घुस सकते। दोनों देश उसकी नाभिकीय छतरी के नीचे ही सुरक्षित हैं। इसलिए अन्तिम और निर्णायक बात अमरीका के साथ ही हो सकती है। उत्तरी कोरिया की दूसरी शर्त है कि अमरीका ने 2003 से मकाऊ के बैंक में जमा उसका जो पैसा जब्त करवा रखा है, उसे वह छोड़े। साथ ही उसका यह भी कहना है कि अमरीका धौंस-धमकी देना बन्द करे, तभी वह बातचीत और सुलह-समझौते में शामिल होगा।

अमरीकी सरमायादार और वहाँ का शासक वर्ग केवल बन्दूक की भाषा समझते हैं, वे कोई और भाषा नहीं जानते। अमरीका लम्बे समय से उत्तरी कोरिया को धौंस-धमकी देता रहा है और उसे डराने-धमकाने की कोशिशें करता रहा है।

लेकिन उत्तरी कोरिया के पास बम हो जाने के साथ ही उसकी हेकड़ी गुम हो गयी है। इसका एक ही अर्थ निकलता है कि जब तक किसी देश के पास बम न हो तब तक अमरीकी साम्राज्यवाद और साम्राज्यवादी समूह उसे डराते-धमकाते रहेंगे, उसके साथ मनमाना व्यवहार करते रहेंगे, उसे लूटते रहेंगे और अपने अधीन करने की सारी तिकड़म और कुकर्म करते रहेंगे। उत्तरी कोरिया और अमरीका दोनों एक-दूसरे को अच्छी तरह समझते हैं। अब सुलह-समझौते का दौर चलेगा क्योंकि उत्तरी कोरिया के पास भी अब बम है।

अगर भय दिखाने से ही काम बनता है और इसी से सम्प्रभुता सुरक्षित रह सकती है, आजादी कायम रह सकती है तो भला ईरान इसमें क्यों पीछे रहे? ईरान, उत्तरी कोरिया या किसी भी अन्य देश पर संयुक्त राष्ट्र संघ की सुरक्षा परिषद द्वारा दबाव डाला जाना और तरह-तरह के प्रतिबन्ध लगाना निहायत गलत है। उसकी ऐसी कार्रवाइयाँ अमरीकी साम्राज्यवाद के हित में उठाये गये कदम हैं।

जहाँ तक आणविक-परमाणविक बमों का सवाल है, अमरीका सबसे ज्यादा गैरजिम्मेदार देश है क्योंकि अभी तक केवल उसी ने नागासाकी और हिरोशिमा में बम का इस्तेमाल किया है और आये दिन वह बम का इस्तेमाल करने की धमकी देता रहता है। फिलहाल तो रूस और चीन के बम भी आक्रामक नहीं हैं, वे बचाव के लिए ही हैं। आज विश्व पर प्रभुत्व कायम करने की इनकी महत्वाकांक्षा और मंसूबा नहीं है। आने वाले कल की बात दीगर है। फ्रांस और ब्रिटेन के परमाणु बम भी आक्रामक नहीं हैं। अमरीकियों के ही शब्दों में-ब्रिटेन अमरीका का कभी न डूबने वाला विमान-वाहक युद्धपोत है। इजरायल का बम अमरीका द्वारा नियन्त्रित होता है और उसके इशारे पर ही इस्तेमाल होगा। इजरायली खुद इसके इस्तेमाल का साहस नहीं जुटा सकते। भारत और पाकिस्तान दोनों के पास बम होने के चलते इनमें से किसी द्वारा बम का इस्तेमाल करना मुश्किल है। यह सशक्त प्रतिरोधक है। यदि किसी के पास बम नहीं रहना है तो अमरीका पहला देश है जिसके पास बम नहीं होना चाहिए। पूर्ण निरस्त्रीकरण में बाधक भी अमरीका ही है।

गतवर्ष 150 देशों ने नाभिकीय हथियारों के उन्मूलन के लिए एक सम्मेलन बुलाने के प्रस्ताव का समर्थन किया। लेकिन अमरीका, ब्रिटेन, फ्रांस तथा इजरायल ने इसका विरोध किया। दुर्भाग्य की बात है कि विरोध करने वालों की सूची में भारत का भी नाम है क्योंकि यहाँ के सरमायादार जनता को भूखों रख कर और भीख माँग कर महाशक्ति बनने का ख्वाब देखते हैं।

अमरीकी सरमायादार अनुनय-विनय, न्याय-औचित्य और सदाशयता की भाषा नहीं समझते। वे युद्ध, बम और भय की ही भाषा समझते हैं। ▣

30 जनवरी 2007

छपते-छपते:

(इस लेख के लिखे जाने के दो हफ्ते बाद ही उत्तरी कोरिया के परमाणु-प्रकरण में एक नाटकीय मोड़ आया जो लेख में व्यक्त विचारों की पुष्टि करता है। प्रस्तुत है इससे सम्बन्धित कुछ जरूरी तथ्य और सूचनाएँ)

उत्तरी कोरिया के नाभिकीय कार्यक्रम के मुद्दे पर 6 देशों- उत्तरी कोरिया, चीन, अमरीका, रूस, दक्षिणी कोरिया और जापान के बीच चल रही वार्ताओं में एक नाटकीय घटनाक्रम के तहत 13 फरवरी को समझौता हो गया जिसे ''संयुक्त वक्तव्य को लागू करने के लिए शुरुआती कदम'' की संज्ञा दी गयी है।

यह संयुक्त वक्तव्य, वार्ताओं के चौथे चक्र के अन्त में 19 सितम्बर 2005 को हुए एक समझौते पर आधारित है जिसमें उत्तरी कोरिया ने ''सभी नाभिकीय हथियारों और जारी परमाणु कार्यक्रमों को खत्म करने, जल्दी से जल्दी नाभिकीय हथियार अप्रसार सन्धि (एन.पी.टी.) की ओर लौटने और अन्तरराष्ट्रीय परमाणु ऊर्जा एजेन्सी के सुरक्षा मानकों का पालन करने'' का वचन दिया था। बदले में अमरीका ने उत्तरी कोरिया से अपने रिश्ते सामान्य करने और उसकी सम्प्रभुता का सम्मान करने का वायदा किया था।

संयुक्त वक्तव्य में आम सहमति की उन्हीं बातों को दोहराया गया था जिन पर 21 अक्तूबर 1994 को भी दोनों देशों के बीच सहमति हो चुकी थी और उसके आधार पर 'सहमति का एक खाका' बनाया गया था।

इन दोनों समझौतों के बावजूद उत्तरी कोरिया ने अक्तूबर 2006 में नाभिकीय बम विस्फोट क्यों किया?

इसकी जिम्मेदारी पूरी तरह से अमरीका के ऊपर जाती है। सबसे पहले जनवरी 2002 में उत्तरी कोरिया को 'शैतान की धुरी' का हिस्सा बताते

हुए अमरीका ने धमकी देना शुरू किया। इससे दोनों देशों के बीच एकता का पहले से ही कमजोर राजनीतिक आधार और भी कमजोर हो गया । अमरीका ने समझौते के आर्थिक आधार को भी अपनी वायदा खिलाफी से भंग कर दिया। उसे उत्तरी कोरिया को योंगब्योन में निर्माणाधीन ग्रेफाइट नियन्त्रित रिएक्टर और प्लूटोनियम पुनर्शोधन सुविधाओं के बदले भारी तेल और हल्के पानी के रिएक्टर जैसे ऊर्जा के वैकल्पिक "सुरक्षित" स्रोत मुहैया करने थे। यह भी उसने नहीं किया। अब यह उत्तरी कोरिया पर था कि कब वह अपने परमाणु कार्यक्रम को फिर से चालू करे क्योंकि अमरीका इकतरफा तौर पर पहले ही उस समझौते से मुकर चुका था। जनवरी 2003 में उत्तरी कोरिया ने औपचारिक तौर पर नाभिकीय अप्रसार सन्धि की सदस्यता त्याग दी।

उत्तरी कोरिया को झुकाने में असफल रहने पर निराशोन्मत्त बुश प्रशासन ने चीन से दोबारा बातचीत करवाने के लिए मदद माँगी। एक बार फिर चीन की अध्यक्षता में 6 पक्षीय वार्ताएँ शुरू हुईं और सितम्बर 2005 में अमरीकी वार्ताकार क्रिस्टोफर हिल के साथ समझौते के बाद 'संयुक्त वक्तव्य' जारी किया गया।

लेकिन अभी समझौते की वार्ताएँ चल ही रही थीं कि अमरीकी वित्त मन्त्रालय ने पिछले दरवाजे से उत्तरी कोरिया पर प्रतिबन्ध थोप दिये। मकाओ स्थित बांको डेल्टा बेसिन को अमरीका ने निशाना बनाया था जहाँ से होकर उत्तरी कोरिया का अधिकांश विदेशी व्यापार होता है। बुश प्रशासन सोचता था कि ऐसा करके वह उत्तरी कोरिया को झुकने को मजबूर कर देगा। लेकिन उसका दाँव उल्टा पड़ा। उत्तरी कोरिया ने अपने नाभिकीय कार्यक्रम को आगे बढ़ाते हुए 9 अक्तूबर 2006 को नाभिकीय विस्फोट कर दिया।

तब अमरीका ने सुरक्षा परिषद से उत्तरी कोरिया को दण्डित करवाने की कोशिश की, हालाँकि उत्तरी कोरिया से पहले 1998 में भारत और पाकिस्तान भी इसी तरह बम विस्फोट कर चुके थे। इस मामले पर शुरू में चीन अमरीका के साथ था। लेकिन बाद में अमरीका द्वारा सख्त कदम उठाने के खतरनाक नतीजों के बारे में अन्दाजा करके वह पीछे हट गया और उसने अमरीका को भी रोका। दक्षिणी कोरिया ने भी दो टूक शब्दों में जोर-जबरदस्ती करने की मुखालफत की ऐसे में अमरीका की कड़ी कार्रवाई करने की लाइन का समर्थन करने वाला सिर्फ जापान ही रह गया। लेकिन उत्तरी कोरिया द्वारा नाभिकीय विस्फोट के बाद उसकी भी हवा निकल गयी।

चीन की मध्यस्थता और दबाव से हुए मौजूदा समझौते में अमरीका कुछ झुकता सा दिखायी देता है। इसकी वजह उत्तरी कोरिया द्वारा अपनी सम्प्रभुता की हिफाजत के लिए सभी तरह के दबावों को झेलते हुए नाभिकीय विस्फोट करना तथा अमरीका को समझौते के लिए बाध्य करना है। लेकिन साथ ही अमरीका की धूर्तता और छल-प्रपंच भी इसकी एक वजह है। अमरीका इराक में बुरी तरह उलझा हुआ है और ईरान के प्रति उसके रवैये की दुनियाभर में आलोचना हो रही है। इसलिए फिलहाल वह सोचता है कि उत्तरी कोरिया के साथ विवाद को टाल देने में ही फायदा है। इसीलिए 13 फरवरी के समझौते में उत्तरी कोरिया से ज्यादा माँग नहीं की गयी है।

इस समझौते के मुताबिक उत्तरी कोरिया 60 दिनों के भीतर योंगब्योन के रिएक्टर्स को बन्द कर देगा और समझौते के दूसरे चरण के लागू होने के पहले वह सभी नाभिकीय सेवाओं की सूची बनाकर उन्हें ठप्प कर देगा।

बदले में अमरीका उसे शुरुआत में ही 50 हजार टन भारी तेल की आपूर्ति सुनिश्चित करेगा और श्रीमान हिल ने वायदा किया है कि 30 दिनों के भीतर उत्तरी कोरिया पर लगे आर्थिक प्रतिबन्ध हटा लिये जायेंगे, हालाँकि यह

बुश के खिलाफ बढ़ता जनमत

दुनिया भर में जार्ज बुश की नीतियों के खिलाफ विरोध के स्वर बढ़ते जा रहे हैं। बी.बी.सी. वर्ल्ड सर्विस द्वारा 25 देशों के 26,000 लोगों के बीच करवाये गये एक सर्वे से पता चला कि जहाँ दो साल पहले 40%और एक साल पहले तक 36% लोग बुश की नीतियों को मुख्यत: सही मानते थे वहीं अब सिर्फ 29%लोग ऐसा सोचते हैं।

सर्वे के मुताबिक आज अमरीका की उत्तरी कोरिया के नाभिकीय कार्यक्रम के बारे में नीति के विपक्ष में 54%, ईरान के नाभिकीय कार्यक्रम के बारे में नीति के विपक्ष में 60%, विश्व का तापमान बढ़ने के बारे में नीति के विपक्ष में 56%, इराक युद्ध के विपक्ष में 73%, ग्वान्तानामों के बन्दियों के साथ दुर्व्यवहार के विपक्ष में 67% और इजरायल-हिज्बुल्ला युद्ध के बारे में नीति के विपक्ष में 65%लोग हैं।

स्रोत: BBC ग्लोबल स्कैन PIPA

समझौते में लिखा नहीं गया है। दूसरे चरण के लागू होने के पहले अमरीका उत्तरी कोरिया को मानवीय सहायता के तौर पर 9 लाख 50 हजार टन भारी तेल की अतिरिक्त आपूर्ति करेगा।

इस समझौते में पहली बार अमरीका ने साफ शब्दों में वचन दिया है कि परस्पर कूटनीतिक रिश्ते कायम करने के लिए द्विपक्षीय वार्ताएँ की जायेंगी। वह ''उत्तरी कोरिया को आतंकवाद को बढ़ावा देने वाला राज्य कहना और उसके सन्दर्भ में 'दुश्मन के साथ अमरीकी व्यापार कानून' को लागू करना बन्द करने की प्रक्रिया शुरू करेगा।''

इस समझौते में ''कोरिया प्रायद्वीप को शीघ्र नाभिकीय हथियार विहीन'' करने की बात की गयी है लेकिन कहीं भी उत्तरी कोरिया को नाभिकीय हथियार खत्म करने और नाभिकीय अप्रसार सन्धि में फिर से शामिल होने के लिए नहीं कहा गया है।

अमरीका के इतिहास और मौजूदा वार्ताओं के प्रति उसके रवैये को देखते हुए यह स्पष्ट है कि अमरीका के ऊपर भरोसा नहीं किया जा सकता। अपनी साम्राज्यवादी रणनीति को अमली जामा पहनाने के लिए वह किसी भी छल-प्रपंच और धोखाधड़ी से बाज नहीं आयेगा। यह समझौता तभी तक है जब तक अमरीका में राजनीतिक शक्ति सन्तुलन बुश के खिलाफ है और पश्चिमी एशिया में सैनिक शक्ति सन्तुलन अमरीका के हक में मोड़ नहीं लेता जहाँ तथाकथित 'शैतान की धुरी' के अन्य देशों को काबू में करने का काम अभी बाकी है।

चीन का रवैया अवसरवादी और सन्दिग्ध है। इस मुद्दे पर रणनीतिक रूप से वह अमरीका के साथ है। लेकिन एक तरफ जहाँ इलाकाई अस्थिरता के डर से वह उत्तरी कोरिया पर दबाव नहीं डाल पा रहा है, वहीं दूसरी ओर एक हद से ज्यादा अमरीका को समर्थन देना भी अपने स्वार्थों के अनुरूप नहीं पाता। ▣

भूखा और कुपोषित भारत

सरकारी आँकड़े बताते हैं कि 1993 से 2000 के बीच भारत में गरीबी 36% से गिरकर 26% ही रह गयी।

इस सरकारी झूठ का पर्दाफाश किया गया है, भोजन के अधिकार के बारे में संयुक्त राष्ट्र संघ की विशेष रिपोर्ट–'भारत में चिरकालिक भूख और कुपोषण का फैलाव' में। रिपोर्ट बताती है–

* **भारत में पैदा होने वाले 30% बच्चों का वजन सामान्य से कम होता है।**
* **हर साल 20 लाख बच्चे गम्भीर कुपोषण से मर जाते हैं।**
* **भारत में कुल बच्चों और महिलाओं की लगभग आधी संख्या गम्भीर और चिरकालिक कुपोषण और अल्पपोषण की शिकार है।**
* **लगभग 47% बच्चों का वजन कम है और 46% का विकास बाधित हो गया है। भारत में यह संख्या सबसहारा अफ्रीका के निर्धनतम देशों से भी ज्यादा है।**
* **30% निर्धनतम आबादी 1700 किलो कैलोरी से कम भोजन ग्रहण करती है, जबकि अन्तरराष्ट्रीय न्यूनतम मानक 2100 किलो कैलोरी है। यह तब, जबकि वे अपनी कमाई का 70% भोजन पर ही खर्च करते हैं।**
* **कर्ज देकर बंधुआ मजदूर बनाना गैर कानूनी है, फिर भी देश में 2 से 6 करोड़ के बीच बंधुआ मजदूर हैं और उनमें से 85% दलित और आदिवासी हैं।**
* **औरतों की मजदूरी पुरुषों से कम है। देश में औसत खेत मजदूरी औरतों के लिए 16.40 रु. है और पुरुषों के लिए 23.40 रु. है।**

हमारे दौर के नायक-नायिकाएँ

■ अजय

विश्व सुन्दरी सुष्मिता सेन ने पिछले दिनों दिल्ली में एक बड़े व्यापारी के घर शादी की पार्टी में जाकर डांस किया। उसके साथ दिया मिर्जा और ईशा कोप्पिकर भी थीं। करीना कपूर ने भी दिल्ली में ही एक बड़ी व्यापारी कम्पनी के वार्षिक समारोह में जाकर डांस किया। मल्लिका शेरावत द्वारा मुम्बई के एक पाँच सितारा होटल में नये साल के स्वागत में आयोजित कार्यक्रम में किया गया डांस, जिसमें 5,000 से 10,000 रुपये के टिकट खरीद कर भारी भीड़ उमड़ी थी, काफी विवादों में रहा। मल्लिका के पहनावे और डांस को अश्लील और फूहड़ बताते हुए किसी व्यक्ति ने उनके और आयोजकों के खिलाफ जनहित याचिका और आपराधिक मुकदमा दायर किया।

कुछ ही वर्ष पहले दुबई में दाऊद इब्राहिम के घर पर मुम्बइया फिल्मी सितारों की गोपनीय महफिल जमी थी। मामले का भण्डाफोड़ हो गया और उस कार्यक्रम का वीडियो टेप टीवी पर प्रसारित हुआ जिसमें बड़े-बड़े 'कलाकार' दाऊद का सानिध्य पाकर फूले नहीं समा रहे थे।

फिल्मी कलाकारों में पैसा कमाने की ऐसी हवस समायी है जो कभी खत्म ही नहीं होती। फिल्मों से इफरात पैसा कमाने के बावजूद, वे दुनियाभर में घूम-घूम कर स्टेज शो करने, बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के सामानों का प्रचार करने और उनका ब्राण्ड एम्बेसडर बनने, फैशन शो ओर मॉडलिंग करने से लेकर किसी धन कुबेर के घर उसके बच्चों के जन्म दिन, मुण्डन, शादी-विवाह या प्राइवेट पार्टी में जाकर नाचने-गाने तक, कोई मौका हाथ से नहीं जाने देते।

बिस्मिल्ला खाँ को जब अमरीकियों ने कैलीफोर्निया में आकर रहने का प्रस्ताव दिया तो उन्होंने विनम्रतापूर्वक उसे ठुकराते हुए अमरीकी प्रतिनिधि से कहा था कि हमारे ऊपर अपने परिवार की जिम्मेदारी है जिसमें लगभग 100 लोग शामिल हैं। वे उनके पूरे परिवार सहित उन्हें वहाँ ले जाने को तैयार हो गये। इसी तरह उन्होंने एक के बाद एक कई कठोर शर्तें उनके सामने रखीं और वे सब को स्वीकार करते गये। लेकिन उन्हें बनारस तो छोड़ना नहीं था। अन्त में उन्होंने बड़े ही सहज भाव से कहा कि "ठीक है, आप इतना जिद करते हो तो मैं भी तैयार हूँ। लेकिन एक शर्त है, आप को इस गंगा (नदी) को भी वहाँ ले चलना होगा।" संगीत के प्रति जीवन की अन्तिम साँस तक समर्पित, अपनी बोली, संस्कृति, समाज और अपने लोगों के साथ ऐसा गहरा लगाव रखने वाला ऐसा सहज-सरल व्यक्तित्व और सच्चा कलाकार आज के दौर में दुर्लभ है। क्या फिल्मी दुनिया में बिस्मिल्ला के पैर की धूल के बराबर भी कोई है?

आज की युवा पीढ़ी पर फिल्मों के इन नकली नायक-नायिकाओं का नशा छाया हुआ है। सर से पाँव तक भ्रष्टाचार के कीचड़ में सने राजनीतिक पार्टियों के नेता आज जनता की नजरों से गिर चुके हैं। उनकी सभाओं और रैलियों में जाना तो दूर, लोग उनके नाम पर थूकते हैं। जब उनकी साख दो कौड़ी के बराबर भी नहीं रही और जनता को बरगलाने के पुराने नुस्खे चुक गये, तो उन्होंने लोगों के बीच फिल्मी सितारों और क्रिकेट खिलाड़ियों की लोकप्रियता को भुनाने के लिए उन्हें 'आदर्शों' और असली नायक-नायिकाओं के रूप में पेश करना शुरू किया। सभी पार्टियाँ अपनी चुनावी सभाओं में भीड़ जुटाने के लिए किसी न किसी फिल्मी सितारे या क्रिकेट खिलाड़ी को अपना स्टार प्रचारक घोषित करती रहती हैं। आसानी से सीट निकालने के लिए वे उनमें से किसी को चुनावी दंगल में भी उतार देती हैं। देश के सबसे महँगे क्लब (संसद) में प्रवेश पाने के लिए ये 'कलाकार' और खिलाड़ी भी कम लालायित नहीं रहते। इसका ताजा उदाहरण पंजाब में देखने को मिला। पुराने क्रिकेट खिलाड़ी

और मनोरंजन उद्योग में सक्रिय, अमृतसर के सांसद नवजोत सिंह सिद्धू को पंजाब उच्च न्यायालय ने हत्या के जुर्म में तीन साल की सजा सुनायी थी जिसके चलते उसे संसद से इस्तीफा देना पड़ा था। अभी कुछ ही महीने बीते कि पंजाब में चुनाव आ गया। भाजपा ने सिद्धू को दोबारा चुनाव मैदान में उतारने के लिए कमर कस ली। कानूनी दाँव-पेंच और बड़े-बड़े वकीलों के दम पर सर्वोच्च न्यायालय से उसकी सजा स्थगित करवा ली गयी। चुनावी वैतरणी पार करने के लिए दूसरी पार्टियाँ भी ऐसे ही आदर्श नमूने पेश करती रहती हैं।

इन नकली नायक-नायिकाओं की असली जिन्दगी और उनका चरित्र किसी से छिपा नहीं है। अखबारों में अक्सर इनका कच्चा-चिट्ठा छपता रहता है। माफिया सरगनाओं, भ्रष्ट नेताओं, अपराधियों और हर तरीके से काला धन कमाने वालों के साथ इनके मधुर सम्बन्ध होते हैं। टैक्स चुराने और काला धन जमा करने में ये सबसे आगे हैं।

कुछ दिन पहले ऐश्वर्या राय के घर विदेश से भेजा हुआ लाखों रुपये का बेनामी पार्सल आया जिसके बारे में उसे कुछ पता नहीं था। कुछ समय पहले तत्कालीन केन्द्रीय मन्त्री सुखराम को भी अपने पूजा घर में रखे करोड़ों रुपये के बारे में पता नहीं था कि किसने उनके साथ ऐसा मजाक किया। 'महानायक' अमिताभ बच्चन ने 'कौन बनेगा करोड़पति' से कमाये 48 करोड़ रुपये पर टैक्स जमा नहीं किया। इसके लिए तर्क यह दिया कि स्टार प्लस एक विदेशी कम्पनी है और विदेशों में कमाये गये धन पर टैक्स में छूट है।

ऐसे ही लोगों को हमारी युवा पीढ़ी का आदर्श बना दिया गया है। अखबारों के पन्ने इन्हीं के चित्रों से रंगे होते हैं और वे इनकी हर छोटी-बड़ी हरकत का ब्योरा छापते रहते हैं। बड़े-बड़े सरकारी समारोहों में ये आदर पूर्वक बुलाये जाते हैं, उन्हें पुरस्कारों और उपाधियों से विभूषित किया जाता है। आखिर क्यों?

इस संकटग्रस्त पूँजीवादी व्यवस्था के झण्डाबरदार और उनके प्रचार-मध्यम विदेशों से आयातित, पतित साम्राज्यवादी संस्कृति तथा देशी सामन्ती संस्कृति और सड़े-गले मूल्यों-संस्कारों का कॉकटेल बनाकर देश की युवा पीढ़ी के सामने दिन-रात परोस रहे हैं। सरकार की जनविरोधी नीतियों के चलते महँगी शिक्षा, बढ़ती बेरोजगारी और दूसरी ढेर सारी समस्याओं के खिलाफ लोगों का आक्रोश भीतर-भीतर सुलग रहा है। जनाक्रोश की इस आग से अपने आप को बचाने के लिए नौजवानों की चेतना की धार को कुन्द करना और उन्हें दिमागी गुलामी में जकड़ना जरूरी है। फिल्मी कलाकार इस काम में पूँजीवादी व्यवस्था के सक्षम सहयोगी हैं, जिनका पेशा ही मनोरंजन के नाम पर लोगों को उनकी असली जिन्दगी की कड़वी सच्चाइयों से दूर, एक मायावी और काल्पनिक दुनिया में ले जाना, अपनी हसीन अदाओं से सही को गलत और गलत को सही ठहराना तथा उन्हें पलायनवादी और यथास्थितिवादी बनाना है। वे इस पूँजीवादी व्यवस्था की ताल पर नाचने और लोगों को भी नचाने में माहिर हैं। इन नकली नायक-नायिकाओं को आदर्श के रूप में स्थापित करने और उन्हें महिमामण्डित करने के पीछे यही मकसद छिपा हुआ है।

इन आदर्श नायक-नायिकाओं की चारित्रिक विशेषताएँ क्या हैं? मानवीय मूल्यों, भाव-भावनाओं और संवेदनाओं से शून्य, बौद्धिक रूप से दिवालिया, अपने देश, समाज और जनता की समस्याओं से पूरी तरह उदासीन, सफलता की सीढ़ी चढ़ने के लिए किसी भी हद तक गिरने को हमेशा तैयार, धूर्तता, मक्कारी और अय्याशी में एक से बढ़कर एक, सभी आदर्शों को ताक पर रखकर हमेशा बिकने के लिए तत्पर, सुपारी देकर अपने प्रतिस्पर्धी की हत्या करवाने और कानून को जूते की नोक पर रखकर विलुप्तप्राय वन्य जीवों का शिकार करने वाले, नशे में धुत्त होकर गाड़ी चलाने और लोगों को कुचलकर मार डालने वाले क्या किसी देश की युवा पीढ़ी के आदर्श हो सकते हैं? वे उनके मन में कैसी प्रेरणा जागृत करेंगे? यह प्रश्न देश के नौजवानों और बुद्धिजीवियों से गम्भीरतापूर्वक विचार करने की माँग करता है। निश्चय ही आज देश को हजारों-हजार नायक-नायिकाओं की जरूरत है। लेकिन इन नकली लोगों से काम नहीं चलेगा। समाज हमेशा अपनी समस्याओं का समाधान करने और इतिहास को आगे बढ़ाने के लिए जनता के बीच से अपने नये नायकों को तैयार करता रहा है। दुर्गा भाभी, चन्द्रशेखर आजाद, भगत सिंह, अशफाक उल्ला और बिस्मिल जनता के ऐसे ही सच्चे नायक थे। कल ऐसे नायक फिर आगे आयेंगे। ▣

मर्दवाद का किताबी विरोध और
आगे बढ़ने के लिए खूँखार
और सत्तावादी मर्दों के साथ
गलबाँही–शुक, यह कैरियरवादी नारीवाद है।
–देवी प्रसाद मिश्र

शिल्पा शेट्टी प्रकरण

नस्लवाद केवल गोरी चमड़ी वालों में ही नहीं

■ आयशा

ब्रिटेन के चैनल-4 पर प्रसारित होने वाले दो कौड़ी के एक कार्यक्रम "सिलेब्रिटी बिग ब्रदर" में अभिनय के दौरान शिल्पा शेट्टी के साथ काम करने वाली एक गोरी अभिनेत्री ने उसके भारतीय खान-पान, उच्चारण और रहन-सहन की खिल्ली उड़ायी और गन्दी गालियाँ दीं। इस नस्लवादी दृश्य के प्रसारण के खिलाफ वहाँ के हजारों दर्शकों ने अपना विरोध जताया। मामला मीडिया की सुर्खियों में आया। देश के शिक्षित मध्य वर्ग ने काफी आक्रोश व्यक्त किया। कई जगह लोग सड़कों पर भी उतर आये। राजनयिक स्तर पर भी सरगर्मी दिखायी दी। उसी समय ब्रिटेन का एक वरिष्ठ राजनेता पूँजीपतियों का प्रतिनिधि मण्डल लेकर भारत आया था। यहाँ के वाणिज्यमन्त्री और वित्तमन्त्री ने उसे घटना की जानकारी दी। दोनों ही देशों के नेताओं ने इस घटना की भर्त्सना करते हुए नस्लवाद के विरुद्ध अपनी वचनबद्धता दोहरायी।

तीन दिन बाद उस कार्यक्रम के निर्माता ने दर्शकों के बीच फोन मत संग्रह करवा कर उस गोरी अभिनेत्री को कार्यक्रम से अलग कर दिया। साथ ही शिल्पा शेट्टी को लगभग 3 करोड़ रु. का मुआवजा देकर मामले को रफा-दफा कर दिया गया। हमारे देश में भी ऐसे मामलों में मुआवजा देने का चलन है। अभी हाल में ही किसी महिला के साथ बलात्कार का मामला एक विधायक ने महाराष्ट्र विधानसभा में उठाया। जवाब में सरकार ने उस उत्पीड़ित महिला को मुआवजा देने की घोषणा कर दी। जब विधायक ने यह कहा कि उस महिला के साथ दो बार बलात्कार हुआ है, तो सरकार का भावशून्य जवाब था कि हम मुआवजे की राशि बढ़ाकर दोगुनी कर देते हैं।

शिल्पा शेट्टी प्रकरण में जो कुछ भी हुआ, वह नस्लीय भेदभाव का एक घटिया उदाहरण है लेकिन यह कोई अप्रत्याशित और अनहोनी घटना नहीं। अप्रवासी भारतीयों के साथ विदेशों में नस्लवादी बर्ताव की इससे भी अधिक शर्मनाक घटनायें बड़े पैमाने पर होती रहती हैं। ज्यादा दिन नहीं हुए जब ब्रिटेन में लगभग 30,000 उच्च शिक्षित भारतीयों को नस्लवादी आधार पर नौकरी से निकाल बाहर करने का प्रयास किया गया था। लेकिन तब न तो सरकार ने ऐसी मुस्तैदी दिखायी, न भारतीय मध्यम वर्ग ने 'मोबाइल उठाओ, मैसेज दागो' आन्दोलन छेड़ा और न ही कोई हो-हल्ला हुआ। ढेर सारे लोगों को तो इस बात की जानकारी भी नहीं हुई क्योंकि वे हजारों लोग 'सिलेब्रिटी' या 'बिग ब्रदर' नहीं थे।

इसमें कोई संदेह नहीं कि अधिकांश गोरी चमड़ी वालों में नस्लवादी अहंकार और हेकड़ी कूट-कूट कर भरी होती है। इस मनोविकृति की जड़ें उनके इतिहास में हैं। एशिया, अफ्रीका और अमरीका के देशों पर हमला करने, उन्हें गुलाम बनाने, लूटने-पाटने की अपनी पाशविक कार्रवाइयों को उचित ठहराने के लिए यूरोप के उपनिवेशवादियों ने एक सिद्धान्त गढ़ लिया था—दुनिया को सभ्य बनाने का भार गौरांग महाप्रभुओं के कन्धे पर है। इसकी आड़ में चलाये गये बर्बरतापूर्ण अभियानों को उपनिवेशों की जनता ने कई-कई पीढ़ियों तक बर्दाश्त किया और आज भी दरिद्रता, पिछड़ापन, आन्तरिक कलह-विग्रह और सैकड़ों अन्य समस्याओं के रूप में उसका अभिशाप झेल रही है। उनके द्वारा रोपे गये विषवृक्ष अनुकूल आबोहवा पाकर दुनियाभर में दोबारा पनपने और फूलने-फलने लगे हैं।

सवाल यह है कि क्या नस्लवादी मनोविकृति केवल गोरी चमड़ी वालों में ही मौजूद है? हमारे देश के भूरी चमड़ी वाले अभिजात और मध्यम वर्ग के अधिकांश लोगों के मन में अपने ही देश के दलित-शोषित लोगों के प्रति कौन-सी समानता और भाईचारे की भावना विद्यमान है? उच्च शिक्षण संस्थाओं, दफ्तरों, गाँवों-मुहल्लों और यहाँ तक कि संसद और विधान सभाओं में भी दलितों, पिछड़ों और आदिवासियों को जातिसूचक शब्दों से सम्बोधित करने और अपमानित करने की घटनाएँ प्रायः होती रहती हैं। खैरलांजी की घटना तथा अम्बेडकर और पेरियार की मूर्ति का अपमान करना नस्लवादी मनोवृत्ति का इजहार नहीं तो भला और क्या है? ऐसी घटनाओं के प्रति कुछ व्यक्तियों को छोड़कर सवर्ण लोगों की क्या प्रतिक्रिया होती है?

हमारे देश के अभिजात वर्ग और जातिगत अहंकार से ग्रसित सवर्णों में असहिष्णुता और भेदभाव निकृष्टतम रूपों में मौजूद है। यह केवल चमड़ी के रंग तक ही सीमित नहीं है। दलितों के प्रति आदिवासियों के प्रति, औरतों के प्रति, धार्मिक अल्पसंख्यकों के प्रति, गरीब प्रदेशों और पिछड़े इलाकों के निवासियों के प्रति नफरत और भेदभाव व्यापक पैमाने पर हर कहीं दिखायी देता है। मुहावरों, कहावतों, गालियों और चुटकुलों-लतीफों में भी इसे देखा जा सकता है। फिल्मों और टेलीविजन कार्यक्रमों में इसके ढेरों उदाहरण मिल जायेंगे। बिहारी, दक्षिण भारतीय और पूर्वोत्तर के लोगों, घर के नौकर-नौकरानियों तथा ग्रामीण लोगों की बोलचाल, पहनावे और रहन-सहन का मजाक उड़ाते हुए जिस घटिया दर्जे का हास्य पैदा करने का प्रयास किया जाता है, उसे देखकर उबकाई आती है।

मध्यवर्ग के भीतर आज भी ऐसे लोगों की भरमार है जो भारत को असभ्यों और गँवारों का देश समझने वाले और इसे गुलाम बनाने वाले फिरंगियों के प्रति बड़े ही आदर और सम्मान का भाव रखते हैं, जबकि अपने ही देश की जनता को हिकारत की नजर से देखते हैं। गुलाम मानसिकता वाले ये नकलची लोग गोरों की उपनिवेशवादी, नस्लवादी, कुत्सित संस्कृति का जूठन चाटने और उसकी भौंडी नकल करने को ही अपने सभ्य होने का पैमाना मानते हैं। उनका सौन्दर्यबोध भी उपनिवेशवादी है। उदाहरण के लिए एक मशहूर गीत है–"चाँदी जैसा रंग है तेरा, सोने जैसे बाल। एक तू ही धनवान है गोरी, बाकी सब कंगाल।" क्या सुन्दरता के इन मानदण्डों का हमारे देश के आम लोगों की रुचि और पसन्द से रत्तीभर भी कोई मेल है? क्या यह किसी गौरांग फिरंगी नायिका का यशगान नहीं? लेकिन मध्य वर्ग के लोग इस गीत पर भाव-विभोर होकर मुण्ड हिलाते हैं और ताली बजाते हैं। अखबारों में छपने वाले वैवाहिक विज्ञापनों में गोरे रंग को विशेष योग्यता और अनिवार्य शर्त के रूप में दर्ज कराया जाता है। फिर यदि मेडिकल कॉलेज की एक प्रतिभावान छात्रा साँवली होने की कुण्ठा से आत्महत्या कर लेती है तो भला इसमें आश्चर्य की क्या बात है?

परत-दर-परत भेदभाव और सामाजिक अन्याय के माहौल में पले और वैसे ही साँचे में ढले अभिजात और मध्यम वर्ग के लोग अपने दुर्भाग्य पर पछताते हैं कि गौरांग विदेशी हमें भी आम भारतीय लोगों जैसा असभ्य और गँवार क्यों समझते हैं, वे हमारे साथ वही सुलूक क्यों करते हैं जो हम अपने देश के जनसाधारण के साथ करते हैं, वे हमारे साथ भद्रजनोचित 'ग्लोबल सिटिजन' जैसा व्यवहार क्यों नहीं करते? शासक वर्ग के लोग इस बात से दुखी रहते हैं कि साम्राज्यवादियों के वर्ग सहयोगी बन जाने के बावजूद वे उनके साथ भेदभावपूर्ण रवैया क्यों अपनाते हैं। उनकी दशा उस कौए के समान है जो मोर का पंख लगाकर मोरों की जमात में शामिल होने की कोशिश में अपनी फजीहत करवाता फिरता था। भला इससे शर्मनाक बात क्या हो सकती है कि विदेश यात्रा के दौरान वहाँ पर हमारे देश के मन्त्रियों की जामा-तलाशी और नंगा-झाड़ी ली जाय। यह सब यहाँ के शासक वर्गों के अपने कुकर्मों का फल है। देश के स्वाभिमान को साम्राज्यवादियों की झोली में डाल देने के बाद वे भला और क्या उम्मीद कर सकते हैं। अपने देश की 80 फीसदी जनता को उपेक्षा और बदहाली का शिकार बनाने वाले शासकों का घर-बाहर, हर जगह अपमानित और तिरस्कृत होना लाजिमी है। उन्होंने जैसा बोया है, वैसा ही काट रहे हैं।

इस बात को कि नस्लवादी भेदभाव का किसी देश की आर्थिक हैसियत से सीधा सम्बन्ध होता है, चीन का उदाहरण अच्छी तरह स्पष्ट करता है। 1949 में क्रान्ति होने से पहले चीन एक गरीब और पिछड़ा देश था। वहाँ के लोग दुनियाभर में कुलीगीरी या फेरी लगाकर सामान बेचने जैसे काम करते थे। कदम-कदम पर उन्हें अपमान झेलना पड़ता था। लेकिन क्रान्ति के बाद वहाँ आर्थिक-सामाजिक जीवन में जो परिवर्तन हुआ, जो खुशहाली आयी उसने चीनी राष्ट्र के पुराने कलंकों को धो दिया। समाजवाद से मुँह फेरकर पूँजीवादी रास्ते पर चल पड़ने के बावजूद चीन को क्रान्ति की उपलब्धियाँ और सुफल आज भी मिल रहे हैं। क्या मजाल कि विदेशों में कोई किसी चीनी का कपड़ा उतरवा ले, जैसा हमारे देश के नेताओं के साथ होता है। वे तुरन्त बदले की कार्रवाई करेंगे। जब अमरीका ने 'आतंकवाद के खिलाफ युद्ध' के बहाने वहाँ जाने वालों का फिंगर प्रिण्ट लेना शुरू किया तो ईरान ने भी अपने देश में आने वाले अमरीकियों के फिंगर प्रिण्ट लेने का आदेश जारी कर दिया। क्या भारत के शासकों में ऐसा करने की हिम्मत है?

ऐसा मुमकिन नहीं कि भारतीय कंगाल हों और भारत सम्पन्न राष्ट्र बन जाये, भारतीय अपने ही देश में तिरस्कृत हों और भारत दुनिया का सरताज बन जाय। इसलिए जिनके मन में अपने देश और देशवासियों के प्रति थोड़ा भी आदरभाव है तथा जिनके मन में नस्लवादी भेदभाव के प्रति सचमुच आक्रोश है, उन्हें अपने देश की कंगाली, बदहाली और पिछड़ेपन के कारणों और उनके समाधानों के बारे में गम्भीरता से विचार करना होगा। शासक वर्गों की वर्तमान नीतियाँ जो लोगों को उच्छिष्ट पूँजीवाद, जूठन पूँजीवाद का सपना दिखाती हैं और इसकी खुली वकालत करती हैं, उनके रहते एक समृद्ध, स्वावलम्बी और स्वाभिमानी राष्ट्र का निर्माण एक कपोल-कल्पना ही साबित होगा। ▣

भारतीय गणराज्यः हमारा, तुम्हारा, या उन लोगों का?

58वें गणतन्त्र दिवस के अवसर पर जिन लोगों को पद्मविभूषण, पद्मभूषण और पद्मश्री सम्मानों से अलंकृत किया गया उनमें बहुराष्ट्रीय निगमों के बड़े पदाधिकारी, प्रवासी भारतीयों के बड़े नाम और भारत की गुलामी को और उसकी नयी उत्पादन प्रणाली को कार्यरूप देने वाले लोग शामिल हैं। दो-चार छुटभइये भी हैं।

हर व्यवस्था अपने समाज के महत्वपूर्ण स्तम्भों को ही राजकीय सम्मान से अलंकृत करती है। न्यायप्रियता के प्रदर्शन के लिए दो-एक छुटभइयों को भी शामिल कर लिया जाता है।

लेकिन इस बार राजकीय सम्मान से अलंकृत होने वाले नामों की जो सूची जारी की गयी है उसमें आज के भारतीय शासक वर्गों की नीतियों की स्पष्ट अभिव्यक्ति हुई है। सूची में 13 नाम विदेशी हैं। पद्मभूषण में तो हद ही हो गयी है, इसमें एक-तिहाई नाम विदेशी हैं।

पद्म सम्मान पाने वालों की सूची में साम्राज्यवादी समूह के देशों के नागरिक, प्रवासी भारतीय, और व्यवस्था के प्रति निष्ठावान और चाटुकार लोगों के नाम हैं, जो नयी गुलामी के पैरोकार हैं। ये निष्ठावान चाटुकार उन्हीं के आदमी हैं, जिनके हित साम्राज्यवादी समूह के हितों के साथ जुड़ गये हैं।

सूची का विश्लेषण किया जाये तो इसमें भारतीय काले अंग्रेजों की अन्तरराष्ट्रीय पूँजी और उनके सहयोगी देशी थैलीशाहों के प्रति पूरी प्रतिबद्धता और निष्ठा स्पष्ट दिखायी देती है। साथ ही इसमें न केवल भारतीय जनता की, मजदूरों, किसानों, प्रगतिशील बुद्धिजीवियों की, बल्कि समग्र मेहनतकश जनता की उपेक्षा, तिरस्कार और अवमानना भी साफ दिखायी देती है। ये पुरस्कृत लोग भारत को गुलाम बनाने के लिए निरन्तर प्रयासरत हैं और ''इण्डिया शाइनिंग'' के हिस्से हैं। ये भारत को और उसकी जनता को अपनी लूट और शोषण का साधन-मात्र समझते हैं।

प्रश्न उठता है कि जिस हवा में हम साँस लेते हैं, जिस पानी को हम पीते हैं, जिस मिट्टी से हम बने हैं–यह धरती, आसमान, नदियाँ, समुद्र और भारत की सारी सम्पदा क्या हमारी है? क्या हम एक नये तरह के गुलाम में नहीं तब्दील हो गये हैं?

हर भारतवासी के लिए यह गम्भीर और विचारणीय प्रश्न है।

ब्रिटेन में फीस भरने के लिए छात्राएँ वेश्यावृत्ति को मजबूर

ब्रिटेन के किंग्सटन विश्वविद्यालय में हुए एक शोध के मुताबिक वहाँ की कॉलेज की छात्राएँ भारी-भरकम फीस चुकाने के लिए वेश्यावृत्ति करने को मजबूर हैं। पिछले 6 वर्षों में उनकी संख्या में 50 फीसदी इजाफ़ा हुआ है। 1998 में स्नातक कक्षाओं की फीस 1,000 पौण्ड (87,400 रु.) से बढ़कर अब 3,000 पौण्ड (2,62,520 रु.) हो गई है। इसके चलते वहाँ के विद्यार्थियों के ऊपर स्नातक स्तर की पढ़ाई पूरी करने तक औसतन 8,948 पौण्ड (7,82,520 रु.) का बैंक कर्ज था।

नवउदारवादी नीतियों के तहत ब्रिटेन में शिक्षा, चिकित्सा इत्यादि को महँगा करने की शुरुआत मार्गरेट थैचर ने की थी, जिसे बाद में दुनिया के पूँजीवादी शासकों ने धार्मिक अनुष्ठान की तरह अपनाया।

पूँजीवाद की चरम पतनशीलता की इससे घटिया मिसाल क्या होगी, जो अपनी युवा पीढ़ी को वेश्यावृत्ति की ओर धकेलता है और इस घृणास्पद काम को सेक्स इण्डस्ट्री कहकर महिमा मण्डित करता है।

ईरान पर हमले की तैयारी में अमरीका

अमरीका की न्यू स्टेट्समैन मैग्जीन के हाल ही में प्रकाशित एक प्रमुख लेख– ''हमला–रहस्योद्घाटन: ईरान पर हमले की अमरीकी योजनाएँ'' में यह सनसनीखेज खुलासा किया गया है कि अमरीका ईरान पर हमले की तैयारियाँ ''पूरी'' कर चुका है और हमला ''किसी भी दिन'' हो सकता है।''

लेख में कहा गया है कि अमरीकी तैयारियाँ सन्देहास्पद ईरानी नाभिकीय प्रतिष्ठानों को निशाना बनाने से ''बहुत आगे तक बढ़ चुकी हैं।'' अमरीका एक ''बड़े परम्परागत युद्ध'' की योजनाएँ बना रहा है जिसके द्वारा ''राष्ट्रपति बुश ईरान की सैनिक, राजनीतिक और आर्थिक बुनियाद को परम्परागत हथियारों के जरिये रातोंरात तबाह कर सकेंगे।'' स्कूल ऑफ ओरियेण्टल एण्ड अफ्रीकन स्टडीज के एक अग्रणी प्रतिरक्षा विशेषज्ञ डॉन प्लेश ने ''हमले के लिए तैयार'' शीर्षक रिपोर्ट में ब्रिटिश सैनिक स्रोतों के हवाले से बताया है कि हमले की तैयारियाँ पिछले 4 सालों से चल रही थीं।

रिपोर्ट के मुताबिक ''अमरीकी थलसेना, नौसेना और वायुसेना तथा समुद्री बेड़े सभी युद्ध की योजनाएँ बना चुके हैं। वे आपरेशन ईरानियन फ्रीडम (ईरानी आजादी अभियान) के लिए प्रशिक्षण और अड्डे तैयार करने में 4 सालों से जुटे थे। अमरीकी केन्द्रीय कमान के नये प्रमुख एडमिरल फालन को 'थियेटर ईरान नियर टर्म' (टिरान्नट) के नाम से पहले से ही तैयार की गयी ये कम्प्यूटरीकृत योजनाएँ प्राप्त हुईं।''

''ईरान पर अमरीकी हमले की कोई भी आम योजना बने, अब अमरीका या दियागोगार्सिया से उड़ान भरने वाले लड़ाकू विमानों के जरिये कम से कम 10 हजार ठिकानों पर एक ही बार में हमला किया जायेगा। पिछले कुछ सालों में सैन्य तकनीक पर अन्धाधुन्ध पैसा बहाकर 'स्मार्ट बमों' को और ज्यादा विकसित कर दिया गया है।''

पत्रिका के अमरीकी सम्पादक एण्ड्रयू स्टीफन के मुताबिक हालाँकि कोई अमरीकी प्रशासक हमले को आसन्न नहीं बता रहा है लेकिन ''अन्दरूनी स्रोत'' अन्ततोगत्वा इस सम्भावना से इनकार नहीं करते।

अमरीका द्वारा युद्ध के लिए उकसाने की कार्रवाइयाँ शुरू हो चुकी हैं। ईरान पर आरोप लगाते हुए बयानबाजियाँ शुरू को गयी हैं। दो विमानवाही युद्धपोतों के नेतृत्व में अमरीका का 50 जहाजों का एक बेड़ा ईरान के करीब पहुँच चुका है, मिसाइल रोधी ''पेट्रियट'' मिसाइल भी तैनात किये जा रहे हैं जिनका मुख्य लक्ष्य ईरान की मिसाइलों को मार गिराना है, अमरीकी नौसेना को हारमूस ज़ल डमरू मध्य से गुजरने वाले ईरानी जहाजों को युद्ध की स्थिति में तत्काल रोक देने का प्रशिक्षण दिया गया है। अमरीका ईरानी कम्पनियों और बैंको को अलगाव में डालने की कोशिश कर रहा है और यूरोपीय और एशियाई बैंकों पर दबाव डालकर उन्हें ईरान स्थित अपनी शाखाएँ बन्द करने करने के लिए बाध्य कर रहा है।

लगता है अफगानिस्तान और इराक में हुई शर्मनाक हार और फजीहत से अभी अमरीका का मन नहीं भरा।

सच ही कहा है कि जब गीदड़ की मौत आती है तो वह शहर की ओर भागता है।

साम्राज्यवादी नाटो सैनिक गठबन्धन में भगदड़

21 फरवरी को इटली के प्रधानमन्त्री रोमानो प्रोदी को अफगानिस्तान में अपनी सेना तैनात करने और विसेन्जा (इटली) में अमरीकी सैनिक अड्डे का विस्तार करने के मुद्दे पर भारी विरोध के चलते इस्तीफा देना पड़ा। सरकार समर्थक कम्युनिस्ट पार्टी और पर्यावरणवादी ग्रीन पार्टी तथा आम जनता शुरू से ही अफगानिस्तान और इराक में सेना भेजे जाने का जबरदस्त विरोध कर रहे थे। पिछले साल मई में सत्ता सम्भालने के बाद प्रोदी ने इराक से तो सेना वापस बुला ली थी लेकिन अफगानिस्तान में नाटो की कमान में अभी भी इटली के सैनिक तैनात हैं।

21 फरवरी को ही टोनी ब्लेयर ने घोषणा की कि अगले कुछ महीनों में इराक में तैनात ब्रिटिश सैनिकों की संख्या में भारी कटौती की जायेगी और अगले साल के अन्त तक वहाँ से पूरी सेना वापस बुला ली जायेगी।

22 फरवरी को डेनमार्क की सरकार ने भी आगामी अगस्त तक इराक से अपनी सेना वापस बुलाने की घोषणा की।

पराभव की ओर बढ़ता अमरीका

* अमरीका के ऊपर कुल उधार और कर्ज 70 ट्रिलियन डालर या 30,97,500 अरब रुपये है। केवल सन 2005 में ही वहाँ का बजट घाटा 750 अरब डालर और चालूखाता घाटा 800 अरब डालर था। अमरीका से प्रकाशित पत्रिका 'बिजनेस वीक' ने नवम्बर 2006 में बताया था कि अगले एक साल में अमरीका में आयात किये गये सामानों और सेवाओं का मूल्य अमरीकी सरकार द्वारा वसूले गये राजस्व से ज्यादा हो जायेगा। यह राजस्व फिलहाल 2,400 अरब डालर (1,06,200 अरब रुपये) है। नोबेल पुरस्कार विजेता अर्थशास्त्री जोसेफ स्टिगलिट्ज बताते हैं कि अर्थव्यवस्था के संचालन में यदि तत्काल कोई बुनियादी परिवर्तन नहीं किया गया तो 12 से 24 महीनों के भीतर उसका बहुत बड़ा हिस्सा नष्ट हो जायेगा।

* उधर, फिलीपीन्स के शहर सेबू में हुए 'पूर्वी एशिया सम्मेलन' में भविष्य की जो रूपरेखा तय की गयी है, उसमें अमरीका को शामिल नहीं किया गया है। जापान ने इराक पर अमरीकी हमले को "गलत" बताते हुए अपनी सेना वहाँ से वापस बुला ली है। पूर्वी एशिया में अमरीकी सेना की तैनाती एक बड़ा मुद्दा बनने वाली है और इसे लेकर अमरीका की आलोचना हो रही है। 'पूर्वी एशिया सम्मेलन' के प्रभावशाली देश हैं–चीन, जापान और दक्षिणी कोरिया। चीन दो अन्य संगठनों–'शंघाई सहयोग संगठन' और 'आशियान प्लस थ्री' को बहुत ज्यादा महत्व देता है। इनमें से किसी भी समूह में अमरीका को शामिल नहीं किया गया है।

* मध्यपूर्व में अमरीका को करारी हार का सामना करना पड़ा है। एक अमरीकी राजनयिक का कहना है कि इराक में अमरीका की शिकस्त हो चुकी है। बुश ने भी घुमा फिराकर इस हार को स्वीकार किया है। उसके सहयोगी जापान, ब्रिटेन आदि देश एक-एक करके उसका साथ छोड़कर भाग रहे हैं या भाग चुके हैं। अमरीकी नागरिक भी वहाँ से सेना वापस बुलाने की माँग कर रहे हैं। हिजबुल्ला ने लेबनान में अमरीका के लठैत इजरायल को जो शिकस्त दी है, उससे उसका अहंकार चूर-चूर हो गया है। फिलिस्तीन में हमास छापमारों का संघर्ष जारी है। लाख कोशिशों के बावजूद ईरान को झुका पाना ओर वहाँ अपनी कार्यसूची लागू कर पाना अमरीका के लिए अभी सम्भव नहीं हो पाया है। अमरीका और उसके नाटो सहयोगी सारे साधनों के बावजूद अफगानिस्तान पर अपना आधिपत्य स्थापित नहीं कर पाये हैं। अमरीका को उत्तरी कोरिया के आगे झुकना पड़ा है और उसके साथ द्विपक्षीय वर्ता शुरू करनी पड़ी है।

उपरोक्त तीनों सच्चाइयों को एक साथ मिलाकर देखा जाये तो इससे उभरने वाला चित्र स्पष्ट बयान करता है कि नये रोमन साम्राज्य का सपना देखने वाले नीरो, जार्ज बुश, की वास्तविक स्थिति क्या है?

जोसेफ स्टिगलिट्ज ने यह तो साफ़ ही कर दिया है कि इस साम्राज्यवादी-पूँजीवादी व्यवस्था में बुनियादी बदलाव के अलावा और कोई रास्ता नहीं है। साम्राज्यवादी-पूँजीवादी व्यवस्था के विकल्प के रूप में कौन सी समाज व्यवस्था होगी, इसका फैसला दुनिया की जनता करेगी।

गाँजा-भाँग अमरीका की सबसे बड़ी नगदी फसल

नशीले पदार्थों के उत्पादन के खिलाफ अमरीका दुनिया भर में अभियान चलाता रहा है। कोलम्बिया और लातिन अमरीका के अन्य देशों में अपनी कठपुतली सरकारों के माध्यम से विद्रोही कोका उत्पादक किसानों पर अमरीका लंम्बे समय से कहर बरपा करता रहा है।

लेकिन खुद अमरीका में क्या होता है? यकीन मानिये, अमरीका की सबसे बड़ी नकदी फसल मारीजुआना, यानी गाँजा-भाँग है। अमरीका में हर साल 10,000 टन मारीजुआना पैदा होता है, जिसका मूल्य 35.8 अरब डालर, यानी 1,584 अरब रुपये है। मारीजुआना के बाद मक्का है जिसका उत्पादन 1,031 अरब रुपये सालाना है। इसी तरह सोयाबीन का 779 अरब रुपये, पशुओं के चारे का 540 अरब रुपये, सब्जियों का 491 अरब रुपये और गेहूँ का 327 अरब रुपये का सालाना उत्पादन होता है। मतलब यह कि अमरीका में गेहूँ की पैदावार की तुलना में मारीजुआना, यानी गाँजा-भाँग से होने वाली कमाई 5 गुना है।

पिछले 25 सालों में वहाँ मारीजुआना के उत्पादन में दस गुने की वृद्धि हुई है। 9/11 को विश्व व्यापार केन्द्र पर हमले के बाद इसकी पैदावार में सबसे ज्यादा बढ़ोत्तरी हुई है। आश्चर्य तो यह है कि अमरीका के एक-दो राज्यों में नहीं, 12 राज्यों में मारीजुआना सबसे बड़ी फसल है। जार्जिया राज्य में इसने मूँगफली को पछाड़ दिया है और उत्तरी कैरोलिना व दक्षिणी कैरोलिना राज्यों में तम्बाकू को पीछे छोड़ दिया है।

मजे की बात है कि अमरीका में आज भी मारीजुआना का उत्पादन गैरकानूनी है। तो क्या अमरीका के दूर संवेदी उपग्रहों और प्रशासन की नजरों से यह बात छिपी होगी? यह बात इस सच्चाई की ओर इशारा करती है कि अमरीकी अर्थव्यवस्था पर ड्रग माफियाओं की पकड़ कितनी मजबूत है। और अब तो इसे वैधानिक मान्यता देने की बात भी उठने लगी है।

कानून के मुताबिक इसका दवा के रूप में कोई महत्व नहीं है और नशे के रूप में दुरुपयोग किये जाने की पूरी सम्भावना है।

जिस देश में मारीजुआना की इतनी पैदावार होती हो, जाहिर है कि उसमें उसकी खपत भी उतनी ही ज्यादा होती होगी। इसका अर्थ यह है कि अमरीका के लोग सबसे ज्यादा गाँजा-भाँग का सेवन करते हैं और जैफरसनों तथा वाशिंगटनों का देश मानसिक रूप से बीमार लोगों का देश बनता जा रहा है। नशा, यानी जिन्दगी के गमों से फौरी तौर पर निजात। अमरीकी साम्राज्यवादी शोषणकारी व्यवस्था लोगों को शोषण तथा उससे पैदा होने वाले गमों के सिवाय और दे भी क्या सकती है?

इन आँकड़ों के पीछे शेखचिल्लीपन या षड्यन्त्र?

दुनिया के सबसे बड़े निवेश बैंक गोल्डमैन साक्स के पूर्व चेयरमैन हेनरी पॉलसन बुश प्रशासन में ट्रेजरी सेक्रेटरी हैं। इस बैंक की शोध शाखा बी.आर.आई.सी. ने बताया है कि भारत 2050 तक अमरीका को पीछे छोड़ देगा और चीन के बाद दुनिया की दूसरी सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था बन जायेगा।

इसके लिए जरूरी शर्त के तौर पर बैंक ने यह सलाह दी है कि भारतीय अर्थव्यवस्था के सभी क्षेत्रों को पूरी तरह से खुला कर दिया जाये। पूरी तरह खुला कर देने से विदेशी थैलीशाह सब जगह अपने हाथ-पाँव फैला सकेंगे। जितना खोला गया है उससे वे सन्तुष्ट नहीं हैं।

सरकारी प्रचार तन्त्र, टीवी चैनल, अखबार व पत्र-पत्रिकाएँ इस तरह की खबरें अक्सर देते रहते हैं। यह बात दिन-रात बतायी जाती है कि भारत बहुत तेजी से तरक्की कर रहा है, भारत महाशक्ति बन जायेगा, विश्व राजनीति में इसको नजरन्दाज करके कुछ भी नहीं किया जा सकता, बहुत सारे मामलों में यह चीन को भी जल्दी ही पीछे छोड़ देगा, इत्यादि।

वैसे तो यहाँ के धर्माचार्य और देश के पढ़े-लिखे लोगों का एक हिस्सा भारत के विश्वगुरू होने का दावा हमेशा से करते आये हैं।

लेकिन आखिर बी.आर.आई.सी. की इस घोषणा का उद्देश्य क्या है? इसका उद्देश्य है एक ओर अर्थव्यवस्था राजनीति और संस्कृति पर पूरी तरह विदेशी थैलीशाहों और उनके देशी अनुचरों का आधिपत्य कायम करना और दूसरी ओर सुनहरे सपने दिखा कर जनता को मुगालते में रखना, उसे धोखा देना और ठगना।

जब ब्रिटेन में घोड़ा-गाड़ी, बग्घियाँ और टमटम चला करते थे तो आँकड़ों के जानकार एक व्यक्ति ने जोड़-घटा कर बताया कि पचास सालों में लन्दन की सड़कों पर 30 फुट घोड़े की लीद जमा हो जायेगी। बहुत सारे लोगों ने इस पर यकीन भी कर लिया था क्योंकि आँकड़ा देने वाला अपने समय का जाना-माना और समझदार आदमी था। लेकिन गणना के 50 साल बाद घोड़े की लीद जमा होना तो दूर, लन्दन में न टमटम रहे, न ताँगे, न बग्घियाँ और न ही घोड़े। फिर भी, उस सांख्यिकीविद् ने जो जोड़-घटाव किये थे वे ईमानदारी से किये थे।

आज के सांख्यिकीविद् इतने ईमानदार और भोले नहीं हैं।

हमारी गुलामी जितनी ज्यादा बढ़ती जायेगी, जितना ज्यादा शिकंजा कसता जायेगा, उतने ही ज्यादा हमें सब्जबाग दिखाये जायेंगे।

धर्माचार्य इस बात की हमेशा दुहाई देते आये हैं कि गरीबी, कंगाली और बदहाली का जीवन जी रहे लोग ही स्वर्ग के अधिकारी होते हैं, सेठ-साहूकार-सत्ताधारी के लिए केवल नर्क ही सुरक्षित है। वे इसी तरह स्वर्ग के सुख का भ्रम फैला कर धरती पर अपने स्वर्ग की रक्षा करते हैं।

लागों को ऐसे सांख्यिकीविदों ओर उनकी भविष्यवाणियों से सावधान रहना चाहिए।

भारत-अमरीका नाभिकीय समझौता

आखिरकार भाण्डा फूटा और सच्चाई सामने आयी

भारत-अमरीका नाभिकीय समझौते में भारत के हितों की रक्षा करने और अमरीकी दबाव के आगे न झुकने का दावा करने वाली भारत सरकार के झूठ का एक बार फिर भण्डाफोड़ हुआ और वह भी एक अमरीकी अधिकारी के जरिये।

'ईरान, उत्तरी कोरिया और नाभिकीय अप्रसार सन्धि का भविष्य' विषय पर रक्षा अध्ययन और विश्लेषण संस्थान में बोलते हुए अमरीका के पूर्व नाभिकीय अप्रसार सहायक सचिव स्टीफन जी. रोडेमेकर ने यह रहस्योद्घाटन किया कि जुलाई 2005 में हुए नाभिकीय समझौते ने "अप्रसार" के बारे में भारत के रवैये में बहुत बड़ा परिवर्तन ला दिया है। "इसका सबसे अच्छा उदाहरण है **अन्तरराष्ट्रीय परमाणु ऊर्जा एजेन्सी में भारत द्वारा दो बार ईरान के खिलाफ वोट देना। इस बात को स्वीकार करने वाला मैं पहला आदमी हूँ कि यह वोट जोर-जबरदस्ती से डलवाये गये।**" बदले में "पिछले साल नागरिक नाभिकीय सेवाओं सम्बन्धी प्रस्ताव पर कांग्रेस में वोट का रास्ता साफ हुआ।"

उन्होंने कहा कि हालाँकि कांग्रेस ने बिल पास कर दिया है लेकिन अभी "**भारत से और ज्यादा करने की माँग की जायेगी** क्योंकि ईरान और उत्तरी कोरिया की समस्याएँ हल नहीं हुई हैं।" ईरान के मुद्दे पर "हमें यह देखना है कि संयुक्त राष्ट्र और कड़े प्रतिबन्ध लगायेगी या उसकी परिधि के बाहर और कदम उठाये जायें।"

"यदि संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद ईरान के खिलाफ कदम उठाती है तो इससे भारत जैसे देशों को सुविधा होगी। लेकिन यदि घटनाएँ दूसरी तरफ मोड़ लेती हैं और अमरीका, यूरोपीय संघ ओर जापान का संश्रय उसके ऊपर आर्थिक दबाव बढ़ाने का निर्णय करता है तो भारत को तय करना होगा कि वह क्या करे।" इन देशों का साथ दे या नहीं। "यह भारत के अधिकार में है कि वह क्या निर्णय करे लेकिन अगर वह उनका साथ नहीं देता तो यह एक बहुत बड़ी भूल होगी और वह एक मौका चूक जायेगा। मुझे उम्मीद है कि अपने खुद के हित में भारत इन कदमों का समर्थन करेगा।"

ईरान पर शिकंजा कसने की ओर "पहले कदम" के तौर पर भारत को ईरान-पाकिस्तान-भारत पाइप लाइन परियोजना से खुद को अलग कर लेना चाहिए। "यह ईरान के लिए एक कड़ा सन्देश होगा जबकि भारत के आर्थिक हितों को कोई नुकसान नहीं पहुँचेगा।" क्योंकि यह परियोजना आर्थिक तौर पर फायदेमन्द साबित हो, इसकी सम्भावना नहीं है। "मैं पक्के तौर पर नहीं कह सकता कि ईरान और पाकिस्तान होकर गुजरने वाली इस पाइप लाइन में कैसे लोग निवेश करेंगे। क्या होगा अगर कश्मीर में कोई उसे उड़ा दे?" इसलिए इस परियोजना से निकलकर बाहर आना "भारत के लिए एक सस्ता सौदा होगा जिसके जरिये वह नाभिकीय अप्रसार के प्रति अपनी वचनबद्धता का इजहार कर सकता है।"

उन्होंने स्पष्ट किया कि अमरीका इस परियोजना से निकलने को भारत के लिए "लिटमस टेस्ट" नहीं समझता लेकिन यह भारत के लिए अच्छा होगा। उन्होंने जोर दिया कि **"भारत को अपने को तीसरी दुनिया का देश समझना बन्द करने...और खुद को पहली दुनिया के साथ पंक्तिबद्ध करने की शुरुआत करने की जरूरत है।"**

(स्टीफन जी. रोडेमेकर 2002 में अमरीकी गृह मन्त्रालय में शस्त्र नियन्त्रण के सहायक सचिव बनाये गये थे। 2005 में उन्हें इसके साथ-साथ नाभिकीय अप्रसार और अन्तरराष्ट्रीय सुरक्षा का भी सहायक सचिव बनाया गया। दिसम्बर 2006 में वह यह पद छोड़कर एक लॉबिंग कम्पनी बारबर ग्रिफिथ एण्ड रोजर्स में चले गये जो भारत के लिए भी काम करती है। स्टीफन भारत और अमरीका के बीच नाभिकीय मुद्दे पर चली द्विपक्षीय वार्ताओं में शामिल रहे हैं। जुलाई 2005 में हुए समझौते के तरन्त बाद नाभिकीय आपूर्तिकर्ता समूह की दो बैठकों में वे अमरीकी दल के प्रमुख की हैसियत से शामिल थे।)

विदर्भ में किसान आन्दोलन का बर्बर दमन

8 दिसम्बर 2006 को देश के प्रधानमन्त्री यह बता रहे थे कि खेती और किसानों के हितों पर सबसे पहले ध्यान दिया जायेगा। सरकार कैसे ध्यान देगी इसकी एक झलक उसी दिन महराष्ट्र के विदर्भ इलाके में देखने को मिली जहाँ कपास के समर्थन मूल्य की माँग को लेकर आन्दोलन कर रहे किसानों पर पुलिस ने गोली चलायी और एक किसान को मार डाला।

जिस सप्ताह महाराष्ट्र की विधान सभा में विपक्षी पार्टियाँ किसानों के हक के लिए सरकार का जनाजा निकालने का नाटक कर रही थीं उसी सप्ताह विदर्भ के गाँवों की असली जिन्दगी में 20 से ज्यादा किसानों की अर्थियाँ उठायी गयीं।

विदर्भ में कपास की सरकारी खरीद में देरी होने के कारण पहले से ही बदहाल किसानों को अपनी फसल औने-पौने दामों पर निजी व्यापारियों को बेचनी पड़ रही है। 3 साल पहले वहाँ लगभग 300 सरकारी खरीद केन्द्र थे, जबकि इस साल सिर्फ 56 रह गये हैं और अभी तक सरकार ने 350 लाख कुन्तल की अनुमानित पैदावार में से 4 लाख कुन्तल कपास भी नहीं खरीदी है।

दूसरे, सरकार की ओर से किसानों को मिलने वाला एडवांस बोनस भी खत्म कर दिया गया है जिससे कपास के रेट 2250 रु. प्रति कुन्तल से घटकर 1700-1900 रु. पर आ गये हैं।

आखिरकार इन सरकारी नीतियों से त्रस्त किसानों के सब्र का बाँध टूट गया। उनका आक्रोश कपास का समर्थन मूल्य 2700 रु. प्रति कुन्तल किये जाने की माँग को लेकर आन्दोलन के रूप में फूट पड़ा। इस आन्दोलन को कुचलने और किसानों का मनोबल तोड़ने के लिए पुलिस ने वहाँ गोली चलायी, जिससे एक किसान दिनेश घुगाल शहीद हो गया।

किसानों की दुर्दशा और उनके प्रति सरकार का यह रवैया कोई नया नहीं है। सरकार और उसकी पुलिस हमेशा ही पूँजीपतियों, मिल मालिकों और व्यापारियों की हिफाजत के लिए किसानों पर लाठी-गोली चलाती रही है।

किसानों पर ये बर्बर जुल्म वही सरकार कर रही है जिसके खुद के दस्तावेज में यह स्वीकार किया गया है कि सरकार द्वारा घोषित "समर्थन मूल्य किसानों की लागत से 20-30% कम है (महाराष्ट्र में किसानों को दी जाने वाली सब्सिडी: एक समीक्षा)। सरकार यह भी मानती है कि इस इलाके में 1 करोड़ लोग संकट के शिकार हैं जिनमें से 20 लाख "बुरी तरह संकट में फँसे हैं" और "प्रधानमन्त्री और मुख्यमन्त्री द्वारा राहत पैकज दिये जाने के बावजूद विदर्भ के 6 संकटग्रस्त जिलों में अभी भी हर महीने 100 से ज्यादा किसान आत्महत्या करने को मजबूर हैं।"

तब क्या किसानों पर गोली चलाने के बजाय उनकी माँग नहीं मानी जानी चाहिए थी?

यह हत्यारी सरकार खुद स्वीकार करती है कि अमरीका अपने कपास उत्पादक 20 हजार किसानों को भारी सब्सिडी देकर इस इलाके के लाखों किसानों को तबाह कर रहा है। पिछले साल अमरीका की सरकार ने वहाँ के किसानों को कुल 212 अरब रुपये की सब्सिडी दी जबकि उन्होंने सिर्फ 176 अरब रुपये की कपास उगायी थी। इतनी भारी सब्सिडी ने दुनिया के बाजार में कपास की कीमतें तेजी से गिरा दीं। भला इतनी सस्ती कपास का मुकाबला विदर्भ का एक गरीब किसान कैसे कर सकता है जिसकी कपास को मिलने वाला समर्थन मूल्य भी लागत मूल्य से 20-30% कम है और बाजार में वह इससे भी कम दाम पर अपनी फसल बेचने को मजबूर है।

इसके बावजूद हमारे देश की सरकार ने अमरीकी कपास पर आयात शुल्क नहीं बढ़ाया। खुद राज्य सरकार के अपने दस्तावेज के मुताबिक--"अब आयातित कपास 17 हजार रुपये प्रति गाँठ बिक रही है जबकि हमारी कपास 19 हजार रुपये की पड़ती है।" इसके कारण 2001-02 में भारत में "अमरीकी कपास का आयात तीन गुना बढ़कर 10 लाख गाँठ हो गया था।"

विदेशों से सस्ती कपास के आयात से किसानों की सुरक्षा करने के बजाय सरकार ने उन्हें समर्थन मूल्य या सब्सिडी के रूप में मिल रही नाममात्र की सहायता भी उनसे छीन ली है। किसानों पर गोली चलाकर सरकार ने एक बार फिर साबित कर दिया है कि उसे देश के किसानों से ज्यादा अमरीकी फार्मरों और भारत के बड़े कपास के व्यापारियों के हितों की चिन्ता है।

मुख्य विपक्षी पार्टियाँ विधान सभा में विरोध का नाटक तो कर रही हैं लेकिन विदर्भ के कपास पैदा करने वाले

किसान आज जिस भयावह दुर्दशा के शिकार हैं, उसका उन्हें थोड़ा भी अहसास नहीं है। यही कारण है कि किसानों को गोलबन्द करने और उनकी माँगों को लेकर एक सशक्त आन्दोलन खड़ा करने में आज किसी भी विपक्षी पार्टी या नेता की कोई दिलचस्पी नहीं है।

एक नायाब नुस्खा यह पेश किया जा रहा है कि किसान कपास की खेती छोड़कर गन्ना बोना शुरू कर दें। ऐसा सुझाव देने वालों का विदर्भ के किसानों और वहाँ की जमीनी हकीकत से कोई लेना-देना नहीं। सभी जानते हैं कि गन्ने की खेती में सिंचाई के लिए बहुत ज्यादा पानी की जरूरत होती है जबकि विदर्भ में पानी की भारी किल्लत है। दूसरे, महाराष्ट्र में गन्ने की खेती करने वाले किसान भी लगातार संकट की ओर अग्रसर हैं। यह संकट किसी एक फसल या किसी एक इलाके का है ही नहीं। देश के विभिन्न इलाकों से अलग-अलग फसल उगाने वाले किसानों की तबाही की खबरें आती रहती हैं। यह संकट पिछले डेढ़ दशक की उन सरकारी नीतियों की देन है जिन्होंने किसानों को बड़े व्यापारियों और पूँजीपतियों की लूट के आगे असहाय छोड़ दिया है। बाजार में बैठे इन मगरमच्छों के जबड़े में वे कभी सुरक्षित नहीं रह सकते।

विदर्भ के पहले से ही दुर्दशा के शिकार किसानों द्वारा अपनी न्यायसंगत माँगों को लेकर चलाये जाने वाले आन्दोलन का सरकारी दमन निश्चय ही आक्रोश और क्षोभ से भर देने वाली घटना है। लेकिन सकारात्मक बात यह है कि कल तक प्रतिवाद या प्रतिरोध में कोई आवाज उठाये बिना चरम हताशा और निराशा की हालत में आत्महत्या कर लेने वाले किसान अब एकजुट होकर आन्दोलन की राह पर बढ़ चले हैं। जिन्दगी के यथार्थ ने उन्हें यह सबक दिया है कि सामूहिक प्रयासों और कुर्बानियों से ही इतिहास आगे बढ़ता है। पराजय और पलायन की सोच से कुछ हासिल नहीं होता।

कॉरपोरेट और स्वयंसेवी संगठन

मधुर भण्डारकर ने 'कारपोरेट' फिल्म में दो सरमायादार घरानों के बीच टकराव और उनमें से एक द्वारा एन.जी.ओ. का इस्तेमाल करने का जो यथार्थ-चित्रण किया है वह सच्चाई का सौवाँ हिस्सा भी नहीं है। कॉरपोरेट क्षेत्र किस तरह से एन.जी.ओ. बनाता, पालता और प्रयोग में लाता है, इसका उदाहरण हाल ही में बहुत नग्न रूप में सामने आया है।

कीटनाशक और कृषि रसायन बनाने वाली भारत की सबसे बड़ी कम्पनी यूनाइटेड फास्फोरस ने क्रॉप केयर फेडरेशन (सी.सी.एफ.) नाम से एक एन.जी.ओ. बनायी। इसका उद्देश्य ऐसे लोगों के खिलाफ मुहिम चलाना है जो कीटनाशकों के खिलाफ प्रचार करते हैं। कीटनाशक उद्योग ने इस पहलकदमी को हाथोंहाथ लिया और इस मुहिम में बढ़-चढ़ कर हाथ बँटाया। जब एक एन.जी.ओ. से काम नहीं चला तो पर्यावरण और कृषि रसायन केन्द्र (सी.ई.ए.) नाम से दूसरा एन.जी.ओ. भी खोल दिया गया।

सी.सी.एफ. ने दिल्ली में फॉर्मरों की एक बैठक बुलाकर अपने चेयरमैन रज्जू श्राफ को, जो यूनाइटेड फॉस्फोरस के भी चेयरमैन हैं, ''सर्वोत्कृष्ट कार्यकर्ता'' के सम्मान से नवाजा। सम्मान देने वाला कोई और नहीं, कृषि मन्त्री शरद पवार थे। इस ''सर्वोत्कृष्ट कार्यकर्ता'' की क्या उपलब्धि है? इसे जानने के लिए सी.सी.एफ. की पत्रिका 'क्रॉप केयर' के कुछ अंकों पर केवल सरसरी निगाह डालना ही काफी होगा। अलग-अलग अंकों में 'क्रॉप केयर' ने एक नहीं, चार-चार गन्दे कार्टून छापे और विज्ञान और पर्यावरण केन्द (सी.एस.ई.) की निदेशक सुनीता नारायण का चरित्र-हनन किया, जिन्होंने बोतलबन्द पानी और कोका कोला-पेप्सी कोला में कीटनाशक होने का पर्दाफाश किया था। इनमें से एक कार्टून में सुनीता नारायण को शौचालय से निकल कर भागते हुए दिखाया गया है। भागती हुई महिला चिल्ला रही है–''बचाओ! तिलचट्टा।'' बाहर खड़ा व्यक्ति उस महिला को देख रहा है और कहता है–''हमने कहा था सुनीता, कि भले ही सार्वजनिक रूप से तुम कीटनाशकों की बुराई करो, लेकिन हमें अपने घरों में इनका प्रयोग जरूर करना चाहिए।'' रज्जू श्राफ प्रफुल्लित होकर बताते हैं, ''मुझे कार्टून बनाना बहुत पसन्द है।''

सुनीता नारायण जैसे लोगों को 'क्रॉप केयर फेडरेशन' के चेयरमैन ''पर्यावरणवादी आतंकवादी'' कहते हैं और बताते हैं कि इनके खिलाफ ''कीटनाशक उद्योग एक जुट हो रहा है।'' वे दम्भ के साथ यह भी कहते हैं कि अब ''ऐसे लोगों को अदालत में घसीटा जायेगा।'' सुनीता नारायण को तो घसीटा भी जा चुका है।

उद्योगों के मालिकों और उनके कर्ता-धर्ता चेयरमैनों, डायरेक्टरों, मैनेजरों की कोई नैतिकता नहीं होती। वे मुनाफे की हवस को पूरा करने के लिए पतन की गर्त तक भी जा सकते हैं। इसी हवस को पूरा करने के लिए वे कभी एकजुट हो जाते हैं और साँठ-गाँठ करते हैं तो कभी एक-दूसरे का गला काटने को तैयार रहते हैं। जहाँ सी.सी.एफ. जैसी पालतू एन.जी.ओ उनकी ''एकजुटता'' को दर्शाती हैं वहीं बकौल रतन टाटा ''सिंगूर में उनके प्रतिस्पर्धियों द्वारा आग में घी डालना'' उनके बीच गलाकाटू प्रतियोगिता का नमूना है। दअसल गलाकाटू चरित्र ही उनका प्रधान पहलू है।

साम्राज्यवादी समूह और देशी सरमायादारों द्वारा प्रायोजित-संचालित स्वयंसेवी संगठनों का एक ही प्रमुख काम है कि जब वे इन्सानियत का बलात्कार करें तो ये संगठन चादर पर लगे खून के धब्बों को धोकर साफ कर दें और फिर से साफ-सुथरी चादर बिछा दें।

अफ्रीकॉम: अफ्रीका तक पहुँची अमरीकी सेनाएँ

पिछले सप्ताह अमरीका ने अफ्रीका महाद्वीप के लिए पेण्टागन (रक्षा विभाग) की एक नयी कमान कायम करने का फैसला किया जिसे अफ्रीकॉम कहा जायेगा।

इस्लामी आतंकवाद का मुकाबला करने के नाम पर अमरीका ने जिबुती, हार्न ऑफ अफ्रीका में अपना बेस बनाया था जहाँ सोमालिया पर हमला कर रही इथोपियाई सेनाओं को ट्रेनिंग दी गयी। अल्जीरिया में अमरीका के विशेष दस्ते पहले से ही मौजूद हैं और ट्रांस सहारा के 10 देशों में उसने पहले ही आतंकवाद के खिलाफ एक साझेदारी कायम कर रखी थी। अफ्रीकॉम इसी नीति का पूरे अफ्रीका महाद्वीप में विस्तार है जो अमरीका और अन्य साम्राज्यवादियों की लूट को सुनिश्चित करेगा। अफ्रीकॉम के बारे में बुश के शब्द जाल हैं कि यह "हमारे शान्ति, सुरक्षा, विकास, स्वास्थ्य, शिक्षा, लोकतन्त्र और आर्थिक वृद्धि के साझा उद्देश्यों को आगे बढ़ायेगा।"

जाहिर है आने वाले दिनों में साम्राज्यवादियों के मंसूबों की टकराहट अफ्रीका को भी अपनी चपेट में लेने वाली है। एक अनुमान के मुताबिक नाइजीरिया और अंगोला सहित गिनी की खाड़ी के देश अगले दशक में अमरीका को उसकी 25% तेल की माँग की आपूर्ति करने लगेंगे। चीन भी संसाधनों और बाजार के लिए अफ्रीका में हाथ-पाँव मार रहा है। हाल ही में इसी उद्देश्य से उसने अफ्रीका के 40 देशों की एक बैठक भी आयोजित की थी।

अमरीकी मंसूबों ने पूरी दुनिया को अपनी गिरफ्त में ले लिया है। सितम्बर 2008 में समाप्त हो रहे वित्तीय वर्ष में पेण्टागन का कुल रक्षा बजट 716.5 अरब डॉलर पर पहुँच गया है जो क्लिण्टन के जमाने में हो रहे खर्च से दोगुना है। इसकी तुलना में रूस का इस साल का रक्षा बजट 31 अरब डालर और चीन का 87 अरब डालर है।

रूस ने अमरीकी उद्धतता की भर्त्सना की

जर्मनी के म्यूनिख शहर में एक सुरक्षा मंच को सम्बोधित करते हुए रूस के राष्ट्रपति पुतिन ने कहा:

"दुनिया का एकध्रुवीय मॉडल न सिर्फ अस्वीकार्य है बल्कि उसे साकार भी नहीं किया जा सकता क्योंकि आज की दुनिया में किसी के पास भी उसे लागू करवाने के लिए पर्याप्त राजनीतिक या आर्थिक संसाधन नहीं हैं।"

पुतिन ने कहा कि भारत और चीन के सकल घरेलू उत्पाद का योग पहले ही अमरीका से ज्यादा हो चुका है जबकि ब्रिक (बी.आर.आई.सी.)देशों यानी ब्राजील, रूस, भारत और चीन का कुल सकल घरेलू उत्पाद यूरोपीय संघ से ज्यादा है। "इसमें कोई सन्देह नहीं कि निकट भविष्य में सत्ता के इन नये केन्द्रों की आर्थिक सम्भावनाएँ अनिवार्य रूप से एक राजनीतिक शक्ति में बदलेंगी और बहुध्रुवीय विश्वव्यवस्था को मजबूती प्रदान करेंगी।

"हम अन्तरराष्ट्रीय सम्बन्धों के मामले में करीब-करीब बेलगाम और बेहिसाब बलप्रयोग होते देख रहे हैं जो दुनिया को टकरावों के भँवर में धकेल रहा है। एकतरफा और गैर कानूनी सैनिक कार्रवाइयों से एक भी समस्या हल नहीं हुई है, उल्टे इसने ज्यादा मौतों और तनाव ग्रस्त इलाकों को जन्म दिया है।

"हम अन्तरराष्ट्रीय कानूनों और बुनियादी सिद्धान्तों को रौंदे जाते देख रहे हैं। संयुक्त राज्य अमरीका एक ऐसा राज्य है जो अपनी राष्ट्रीय सीमाओं के बाहर जाकर दूसरे राज्यों पर अपनी कानून व्यवस्था को आर्थिक, राजनीतिक और मानवीय, सभी क्षेत्रों में थोप रहा है। कौन इसे पसन्द करेगा? यह बहुत खतरनाक है। कोई भी देश सुरक्षित महसूस नहीं करता क्योंकि कोई भी खुद को अन्तरराष्ट्रीय कानून द्वारा संरक्षित नहीं महसूस कर पा रहा है। यह नीति हथियारों की होड़ को भड़काती है...देशों को जनसंहार के हथियार हासिल करने के लिए उकसाती है।

"वे रूस को लोकतन्त्र का पाठ पढ़ाते रहते हैं लेकिन खुद उसे नहीं सीखना चाहते। वे हमेशा बम गिराने और गोले बरसाने का ही सहारा क्यों लेते हैं? क्या इसका कारण एक राजनीतिक संस्कृति का अभाव और लोकतन्त्र व कानून के प्रति सम्मान की कमी है?"

हाल ही में अमरीका ने पोलैण्ड और चेक गणराज्य में एण्टी मिसाइल डिफेंस शील्ड तैनात करने की योजना बनायी

है। इस सन्दर्भ में पुतिन ने भूतपूर्व सोवियत संघ से नाटो द्वारा किये गये इस वायदे की याद दिलायी कि पूर्वी यूरोप में सेना नहीं लगायी जायेगी, और सवाल किया:

"तुम्हारे वायदे कहाँ गये? यह क्यों जरूरी है कि नाटो के सैनिक ढाँचे का रूस की सीमाओं तक विस्तार किया जाये? वैश्विक खतरों का मुकाबला करने से इसका भला क्या ताल्लुक?

पुतिन ने आरोप लगाया कि अमरीका एक ऐसी दुनिया बनाना चाहता है जिसमें शक्ति का केन्द्र केवल वही हो और सारे निर्णय सिर्फ वही करे। एक ऐसी "दुनिया जिसका वही अकेला मालिक हो, अकेला सम्राट हो।"

"एकध्रुवीय विश्व न सिर्फ उसमें रहने वालों बल्कि उसके मालिक के लिए भी विनाशकारी है क्योंकि यह उसे भीतर से नष्ट कर देगा। इसका कारण यह है कि उसका लोकतन्त्र से कोई लेना-देना ही नहीं।"

पुतिन ने जिस सुरक्षा मंच को सम्बोधित किया उसमें जर्मनी की चांसलर एंजेला मर्केल और अमरीकी रक्षा सचिव राबर्टस् गेट्स सहित दुनियाभर के लगभग 250 अधिकारी और राजनेता उपस्थित थे।

इस अवसर पर बोलते हुए रूस के रक्षामन्त्री सर्गेइ इवानोव ने भी अमरीका और रूस के बीच मौजूदा रिश्ते की एक और बानगी पेश की। 1987 में अमरीका और सोवियत संघ के बीच मध्यम दूरी तक मार करने वाली मिसाइलों को नष्ट करने सम्बन्धी एक सन्धि हुई थी। इसके तहत 500 से 5500 किमी के बीच मार करने वाली सैकड़ों मिसाइलों को दोनों देशों ने नष्ट किया था। उस सन्धि को "शीत युद्ध का अवशेष" बताते हुए रूसी रक्षामन्त्री ने उसे रद्द करने की जरूरत पर बल दिया और कहा कि "आज उत्तरी कोरिया, चीन, भारत, पाकिस्तान, ईरान और इजरायल, सभी के पास कम या मध्यम दूरी तक मार करने वाली मिसाइलें है। केवल दो देशों– रूस और अमरीका को ही ऐसी मिसाइलें रखने का अधिकार नहीं है। यह बहुत दिनों तक नहीं चल सकता।"

अमरीका ने इन बयानों पर प्रतिक्रिया देते हुए कहा था कि चेक और पोलैण्ड की सीमा पर तैनात किये गये मिसाइलों का निशाना रूस नहीं है। उसका इरादा रूस के साथ तनाव बढ़ाना भी नहीं है। उसने सफाई दी थी कि इन मिसाइलों का तैनाती मकसद उत्तरी कोरिया और ईरान से अपने यूरोपीय सहयोगियों की हिफाजत करना है।

रूस ने इस सफाई को खारिज करते हुए कहा कि "अगर अमरीका ने मिसाइल योजना को आगे बढ़ाया तो रूस मिसाइल सन्धि तोड़ लेगा। रूसी सेना नायक ने साफ तौर पर घोषणा की कि "यदि चेक और पोलैण्ड सरकार ने मिसाइल रोधी अमरीकी योजना को मंजूरी दी तो हमारा रणनीतिक मिसाइल बल भी इस बात के लिए समर्थ है कि वह उन ठिकानों पर हमला करे जहाँ मिसाइल लगे हों।"

चेक और पोलैण्ड सरकार ने इस अमरीकी योजना का समर्थन किया है जबकि जर्मन विदेशमन्त्री ने सावधानी बरतने और बातचीत से समस्या को हल करने की अपील की है।

भ्रष्टाचार के खिलाफ सरकारी 'अभियान' का एक नमूना

सरकार भ्रष्टाचार रोकने के प्रति कितनी गम्भीर है इसका ताजा उदाहरण है इलाहाबाद हाई कोर्ट के जज जगदीश भल्ला की केरल हाईकोर्ट के चीफ जस्टिस के रूप में नियुक्ति जिसकी पत्नी नोएडा भूमि घोटाले में फँसी है।

भल्ला का नाम प्रस्तावित करने वाले सुप्रीम कोर्ट के तीन वरिष्ठ जजों की टीम में से एक जज ने भल्ला के नाम पर आपत्ति की थी। साथ ही कुछ प्रतिष्ठित वकीलों ने भी राष्ट्रपति और लोकसभा अध्यक्ष को पत्र लिखकर अपनी शिकायतें दर्ज की थीं। इन्हीं बातों को ध्यान में रखते हुए राष्ट्रपति ने इस फैसले को पुनर्विचार के लिए लौटा दिया है।

देश की राजनीतिक व्यवस्था और पुलिस-प्रशासन का भ्रष्टाचार तो जगजाहिर है लेकिन न्यायपालिका में मौजूद भ्रष्टाचार पर अक्सर पर्दा डाला जाता है। (इनमें से कुछ की चर्चा हम देश-विदेश में पहले कर चुके हैं।) इसका सबसे हाल का उदाहरण है– एक स्टिंग आपरेशन के जरिये रिश्वत देकर राष्ट्रपति कलाम के नाम जमानती वारण्ट जारी करवाने वाले पत्रकारों को सुप्रीम कोर्ट का नोटिस, जो कहता है कि "निचली अदालत की छवि को धूमिल करने वाली ऐसी शरारत की अनुमति नहीं दी जा सकती।"

देश की ऊपरी अदालतों में भाई-भतीजावाद चरम पर है। कुछ दिनों पहले खुद सुप्रीम कोर्ट के मुख्य न्यायाधीश ने माना था कि सुप्रीम कोर्ट में 20% तक जज भ्रष्ट हो सकते हैं।

महँगाई मार गयी

देश की आम जनता कमरतोड़ महँगाई से परेशान है। रोजमर्रा की जरूरत की तमाम चीजों– गेंहू, चावल, दाल, सब्जी, खाद्य तेल, दूध, ईंधन इत्यादि के दाम आसमान छूते जा रहे हैं। मुद्रास्फीति की दर पिछले दो सालों का रिकार्ड तोड़ते हुए 6.73% पर जा पहुँची है।

पिछले एक वर्ष के दौरान गेहूँ के दाम लगभग 12 फीसदी, दाल 22 फीसदी, सब्जी 10 फीसदी, फल 15 फीसदी, खाद्य तेल 12 फीसदी, सीमेण्ट 17 फीसदी, लोहा और लकड़ी के दाम 20 फीसदी बढ़ गये। जिन गरीब परिवारों की आमदनी बढ़ने के बजाय लगातार घट रही हो और पहले ही किसी तरह खींचतान करके घर चला रहे हों उनके लिए यह बोझ असहनीय है।

महँगाई बढ़ने से देशी-विदेशी पूँजीपतियों का सीधा फायदा होता है, इसलिए पूँजीपतियों, राजनीतिक पार्टियों और सरकार की महँगाई रोकने में कोई दिलचस्पी नहीं होती। जनता का कोपभाजन बनने से बचने के लिए कुछ घड़ियाली आँसू बहाये जाते हैं, महँगाई विरोध के नाटक किये जाते हैं और कभी-कभार कुछ राहत भी दे दी जाती है लेकिन महँगाई का बढ़ना जारी रहता है।

सरकार के पास पूँजीपतियों को फायदा पहुँचाने के हजारों तरीके हैं जिनमें महँगाई बढ़ाना भी एक तरीका है। कीमतों में हुई हाल की तेज बढ़ोत्तरी के प्रमुख कारण हैं– खाद्यान्न की सरकारी खरीद बन्द करके देशी-विदेशी कम्पनियों को किसानों से सीधी खरीद और जमाखोरी करने की छूट देना, कृषि उत्पादों का विदेशों को निर्यात और कृषि क्षेत्र में भी वायदा कारोबार या फ्यूचर ट्रेडिंग की खुली छूट देना जिस पर पहले रोक थी।

बढ़ते हुए विरोध को देखते हुए अब जाकर गेहूँ, चावल, दालों और चीनी के निर्यात पर रोक लगायी गयी है। प्याज के निर्यात पर भी रोक लगाने की माँग दिल्ली की मुख्यमन्त्री शीला दीक्षित ने की है। तेल की कीमतों को भी कुछ घटाया गया है लेकिन संसदीय समिति की सिफारिशों के बावजूद कृषि जिन्सों के वायदा कारोबार पर अभी तक रोक नहीं लगायी गयी है। स्पष्ट है कि यदि भूखों मरते लोग विरोध न करें और वोट लेने की मजबूरी न हो तो सरकार कभी महँगाई कम करने के बारे में नहीं सोचेगी।

मौजूदा महँगाई सरकार की देशी-विदेशी पूँजीपतियों के पक्ष में बनायी गयी इन्हीं जनविरोधी नीतियों का परिणाम है। इन नीतियों में परिवर्तन के बिना कुछ सतही कदम उठाने मात्र से इस समस्या का समाधान नहीं हो सकता। सरकार इस मसले पर कितनी गम्भीर है यह उसके हाल में उठाये गये एक और कदम से स्पष्ट हो जाता है। सरकार ने इलेक्ट्रॉनिक्स के सामानों, स्टेशनरी और खेल के सामानों के खुदरा व्यापार में विदेशी कम्पनियों को 51% तक मालिकाने के साथ पूँजी लगाने की छूट दे दी है। इससे न सिर्फ महँगाई बढ़ेगी बल्कि इन क्षेत्रों से जुड़े लाखों छोटे दुकानदारों और मजदूरों की तबाही का भी रास्ता साफ हो जायेगा।

बच्चों के लिए नरक

रायटर एलर्टनेस' अभियान (इंग्लैण्ड) द्वारा किये गये एक सर्वेक्षण में यह बताया गया है कि दुनिया का सबसे बड़ा लोकतन्त्र, दुनिया में तीसरे नम्बर का अनाज उत्पादक और सुरक्षा पर खर्च करने वालों में तीसरा सबसे बड़ा देश होने के बावजूद बच्चों के लिए खतरनाक देशों में भारत का छठा स्थान है। इस मामले में भारत का स्थान सूडान, युगाण्डा, काँगो और सोमालिया के समकक्ष है।

* दुनिया के कुल भूखे लोगों में से आधे (38 करोड़) लोग भारत में रहते हैं। इनमें बच्चों की स्थिति सबसे खराब है।
* विश्व खाद्य कार्यक्रम के मुताबिक 5 वर्ष से कम उम्र के आधे से अधिक बच्चे कुपोषण के शिकार हैं और उनका शारीरिक विकास रुक गया है।
* भारत में अनुमानतः 6 से 17 करोड़ के बीच बाल मजदूर हैं जो दुनिया में सबसे अधिक हैं। इन बच्चों ने कभी स्कूल के अन्दर कदम नहीं रखा। इनकी ठीक-ठीक संख्या इसलिए मालूम नहीं क्योंकि भारत सरकार ऐसे आँकड़े जमा नहीं करती।
* कई हजार अजन्मी बेटियों को गर्भ में ही मार दिया जाता है क्योंकि माँ-बाप को केवल बेटों की चाहत होती है।
* अबोध बच्चे गरीबी का बोझ उठाते हैं– वे फैक्ट्रियों में खतरनाक काम करते हैं, कचरा चुनते हैं और होटलों में बर्तन माँजते हैं।
* कश्मीर और पूर्वोत्तर के अशान्त राज्यों में भी बच्चों की दुर्दशा काफी भयावह है।

समृद्ध महाराष्ट्र: भूखों मरते बच्चे

देश की आर्थिक राजधानी मुम्बई से सटा महाराष्ट्र का आदिवासी बहुल थाणे जिला कुपोषण के चलते बच्चों की मौत के मामले में अग्रणी है। 6 साल से कम उम्र के 1100 बच्चे अप्रैल 2005 से मार्च 2006 के बीच एक साल में मर गये।

बॉम्बे हाईकोर्ट ने नवम्बर 2006 में एक जनहित याचिका की सुनवाई करने के बाद आदेश दिया कि कुपोषण के चलते बच्चों की मौतों में कमी लाने के लिए एक कमेटी बनायी जाये। याचिका में बताया गया था कि महाराष्ट्र में पिछले ढाई वर्षों में 21,000 बच्चे कुपोषण से मर गये।

महाराष्ट्र सरकार ने लक्ष्य रखा था कि शिशु मृत्यु दर घटा कर 2004 में 25 प्रति हजार और 2010 में 15 प्रति हजार तक लायी जायेगी। आज वहाँ शिशु मृत्यु दर 43 प्रति हजार है। अध्ययनकर्ताओं का मानना है कि यदि हालात ऐसे ही बने रहे तो अगले बीस वर्षों में 15 लाख बच्चे कुपोषण की भेंट चढ़ जायेंगे।

भारत-चीन-रूस के विदेशमन्त्रियों की बैठक

तीन चूहे और एक बिल्ली: बुश के गले में कौन बाँधे घण्टी

14 फरवरी 2007 को भारत, चीन और रूस के विदेश मन्त्रियों के बीच नयी दिल्ली में एक बैठक हुई। बैठक के बाद जारी संयुक्त विज्ञप्ति में कहा गया, "मन्त्री इस बात पर सहमत हुए कि रूस, चीन और भारत अपने बढ़ते अन्तरराष्ट्रीय प्रभाव के चलते विश्व में शान्ति, सुरक्षा और स्थिरता कायम करने में सकारात्मक योगदान कर सकते हैं।" इस सन्दर्भ में उन्होंने विभिन्न क्षेत्रीय और अन्तरराष्ट्रीय सरोकार के मुद्दों पर विचार-विमर्श किया।" रूसी विदेशमन्त्री के मुताबिक पश्चिम एशिया, अफगानिस्तान, ईरान और इराक पर भी बातचीत हुई हालाँकि विज्ञप्ति में इसका अलग से कोई उल्लेख नहीं किया गया है।

उन्होंने संस्कृतियों और सभ्यताओं की विविधता के संरक्षण और सभ्यताओं और धर्मों के बीच संवाद की मौजूदा पहल को बढ़ावा देने की आवश्यकता पर बल दिया। "उन्होंने अपना संकल्प दोहराया कि अन्तरराष्ट्रीय सम्बन्धों का लोकतन्त्रीकरण एक क्रमशः बढ़ती बहुध्रुवीय विश्व व्यवस्था कायम करने की कुंजी है जो छोटे या बड़े सभी राष्ट्रों की समानता, सम्प्रभुता और भौगोलिक अखण्डता, अन्तरराष्ट्रीय कानून और परस्पर सम्मान के सिद्धान्तों पर आधारित होगी।" इसके लिए तीनों पक्ष संयुक्त राष्ट्र संघ को एक महत्वपूर्ण संस्था मानते हैं और उसे पारदर्शी, दक्ष और समकालीन यथार्थ का प्रतिबिम्ब बनाने के बारे में कदम उठाने पर सहमत हैं।

तीनों देशों के बीच इन त्रिपक्षीय वार्ताओं की शुरुआत 2002 में संयुक्त राष्ट्र महासभा की बैठक के दौरान अनौपचारिक बातचीत के रूप में हुई थी। इस समूह की पहली बैठक जून 2005 में हुई थी जिसमें तीनों देशों के विदेश मन्त्रियों ने एक "न्यायसंगत वैश्विक व्यवस्था" के सृजन का संकल्प लिया था जो अन्तरराष्ट्रीय कानून के पालन, समानता, परस्पर सम्मान, सहयोग और बहुध्रुवीय विश्व व्यवस्था की ओर प्रगति पर आधारित होगी। 14 फरवरी की बैठक में यही संकल्प दोहराया गया है।

विडम्बना देखिये कि ये तीनों ही देश अमरीका से अच्छे रिश्ते बनाये हुए हैं क्योंकि अपने क्षेत्रीय और वैश्विक मंसूबों को वे अमरीका के सहयोग के बिना आगे बढ़ाने में असमर्थ हैं लेकिन अमरीका के एकतरफापन और उसके दुनिया पर वर्चस्व कायम करने के मंसूबे को लेकर उनकी बहुत सी शिकायतें भी हैं जिनका सबसे खुला इजहार अभी हाल ही में पुतिन ने किया। हालाँकि अभी अमरीका के साथ इन तीनों देशों की साँठ-गाँठ (कॉलयूजन) ही प्रधान है लेकिन अगर ये अन्तरविरोध बढ़ते हैं तो भविष्य में यह अमरीका द्वारा दुनिया पर एकतरफा थोपी जा रही व्यवस्था का मुकाबला करने का मंच बन सकता है।

टाटा की काली करतूतें

हमारे देश के प्रमुख पूँजीपति घरानों में से एक टाटा ग्रुप के चेयरमैन रतन टाटा की मुनाफे की हवस ने उन्हें विदेशी कम्पनियों का पक्का चाटुकार बना दिया है।

भोपाल गैस काण्ड की हत्यारी कम्पनी यूनियन कार्बाइड का अधिग्रहण करने वाली कम्पनी डोव केमीकल्स भारत में फिर से निवेश कर सके इसके लिए रतन टाटा हर तरह की तीन-तिकड़म करने में लगे हैं। 20 हजार लोगों की हत्या और कितने ही लोगों को अपंग और असहाय बना देने वाली इस कम्पनी ने 23 साल पहले हुए इस हादसे के लिए अभी तक न तो समुचित हर्जाना दिया है, न गैस पीड़ितों को पर्याप्त मुआवजे। कम्पनी द्वारा निर्मित विषैले कीटनाशक अभी भी ज्यों के त्यों पड़े हैं जो भोपाल की जमीन और जमीन के भीतर के पानी को भी प्रदूषित कर रहे हैं।

दुनियाभर में यह माना जाता है कि जिस कम्पनी ने प्रदूषण फैलाया है, वही उसकी सफाई का ख़र्च भी उठाये। इसी के तहत 1995 में यूरोपीय समुदाय को रवाण्डा से 230 टन फफूँदनाशी रसायन मँगवाने पड़े थे और करीब 300 टन बेकार हो चुके कीटनाशकों को यमन से ब्रिटेन वापिस भेज दिया गया था।

लेकिन हमारे देश की सरकार में इतनी हिम्मत कहाँ! यूनियन कार्बाइड के हत्यारे चेयरमैन वारेन एण्डरसन को गिरफ्तार करने की जगह उसे विशेष विमान से अमरीका पहुँचाने वाली सरकार अब उस कम्पनी के नये मालिक–डोव केमीकल्स को भारत में निवेश करने की इजाजत देने के लिए लालायित है। लेकिन भोपाल के गैस पीड़ितों और पर्यावरणवादियों के दबाव में सरकार को मजबूरन कुछ कार्रवाई करनी पड़ रही है। भारी दबाव के बाद जून 2005 में कहीं जाकर कारखाने में पड़े कचरे की सफाई का काम शुरू हो पाया। इसके खर्चे के लिए केन्द्र सरकार ने डोव केमीकल्स से 100 करोड़ रुपये माँगे तो उसने यह कहकर रकम देने से इनकार कर दिया कि वह तब तक भारत में निवेश नहीं करेगी जब तक सरकार उसे इस देनदारी से मुक्त नहीं कर देती। कम्पनी के इस निर्णय से देश के पूँजीपति बेचैन हो उठे जो डोव के साथ गठजोड़ करके देश की जनता को लूटने की आशा लगाये बैठे थे।

यदि डोव कम्पनी भोपाल स्थित कारखाने की सफाई करने और जहरीले कचरे को अमरीका ले जाने के लिए तैयार नहीं तो सरकार को डोव और उसकी सहयोगी कम्पनियों की भारत में लगी पूँजी जब्त कर लेनी चाहिए थी। देश के पूँजीपतियों को उसके साथ गठजोड़ का लालच छोड़कर देश की जनता का साथ देना चाहिए था। लेकिन भारत की सरकार और पूँजीपति वर्ग उनके साथ आपराधिक षड्यन्त्र में मशगूल हैं।

रतन टाटा ने डोव को सफाई की जिम्मेदारी से बचाने के लिए भारत सरकार के सामने यह प्रस्ताव रखा है कि "वह समान विचारों वाले औद्योगिक घरानों से सहयोग लेकर यह रकम जुटाने का प्रयास करेंगे।" बहुत मुमकिन है कि सरकार इसे स्वीकार भी कर ले।

विदेशी पूँजी के साथ गठजोड़ करके देश की जनता को लूटने में लगे देश के पूँजीपतियों से और उम्मीद भी क्या की जा सकती है? रतन टाटा भारत-अमरीका सी.ई.ओ. फोरम के सह अध्यक्ष हैं। अपने प्रस्ताव के जरिये टाटा एक ऐसी कुख्यात बहुराष्ट्रीय कम्पनी की मदद कर रहे हैं जो नापाम, एजेण्ट आरेंज और डाईऑक्सिन जैसे जहरीले रसायनों का उत्पादन करके दुनियाभर में कितने ही लोगों की जान ले चुकी है और पर्यावरण को भारी क्षति पहुँचा चुकी है।

यही रतन टाटा अमरीकी कम्पनी लॉकहीड मार्टिन और बोईंग को वायुसेना से लड़ाकू विमान सप्लाई करने का ठेका दिलवाने की भी कोशिश कर रहे हैं। इन कम्पनियों के विज्ञापन के लिए उन्होंने लगातार दो दिन एफ-16 और एफ-18 लड़ाकू सुपरसोनिक विमानों पर दुस्साहसिक उड़ाने भरीं। वायुसेना के मुताबिक रक्षा क्षेत्र में इन कम्पनियों की विश्वसनीयता रूस और अन्य देशों की तरह नहीं है और इनके लड़ाकू विमान अपेक्षाकृत महँगे हैं। इसके अलावा अमरीका इस तकनीक का हस्तान्तरण भी नहीं करेगा।

सच है पूँजीपति के लिए देश का मान-सम्मान, जनता के दुख-दर्द कोई मायने नहीं रखते। उसकी देशभक्ति उसका राष्ट्रवाद मण्डी में पैदा होता है और मण्डी में ही तिरोहित होता है। उसके लिए मुनाफा ही सब कुछ होता है। मुनाफे के लिए वह देश से गद्दारी कर सकता है और जनता की पीठ में छुरा भोंक सकता है।

वेनेजुएला: राष्ट्रीयकरण के लिए जनादेश

जनवरी के अन्तिम सप्ताह में वेनेजुएला की राष्ट्रीय संसद ने राष्ट्रपति ह्यूगो शावेज को यह अधिकार दिया कि वह 18 महीने तक शासनादेश जारी करके कानून पास कर सकते हैं। शावेज ने "21वीं सदी के समाजवाद" की दिशा में देश को तेजी से बढ़ाने के लिए संसद से ये शक्तियाँ माँगते हुए कहा था कि सबसे पहले वह "सारे क्रान्तिकारी कानूनों की जननी का अनुमोदन" चाहते हैं जो उन्हें ऊर्जा और टेलीकॉम क्षेत्र में राष्ट्रीयकरण करने की इजाजत दे।

भारी बहुमत से दोबारा सत्ता में आते ही शावेज ने प्रमुख औद्योगिक क्षेत्रों, जैसे दूरसंचार और बिजली क्षेत्र का फिर से राष्ट्रीयकरण करने की घोषणा की। शावेज ने कहा कि सरकार तेल और गैस के क्षेत्र में और ज्यादा नियन्त्रण कायम करेगी। उन्होंने देश के केन्द्रीय बैंक की स्वायत्तता भी खत्म कर दी ताकि उसके खासे बड़े मुद्रा भण्डार को विकास परियोजनाओं के लिए उपलब्ध करवाया जा सके।

जनवरी के शुरू में शावेज ने देश की सबसे बड़ी टेलीफोन कम्पनी सी.ए.एन.टी.वी. का फिर से राष्ट्रीयकरण करने की घोषणा की। 1971 तक इस पर राज्य का नियन्त्रण था। इसके अलावा उन्होंने प्राइवेट बिजली कम्पनियों और ओरीनोको नदी घाटी की तेल परियोजनाओं का भी राष्ट्रीयकरण करने की घोषणा की जिनमें पश्चिम की बहुराष्ट्रीय कम्पनियों का काफी बड़ा हिस्सा है।

फरवरी के शुरू में शावेज ने कहा कि सरकार 1 मई तक ओरीनोको बेल्ट में चल रही चार परियोजनाओं में 60% हिस्सेदारी पर नियन्त्रण कायम कर लेगी। बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ अगर थोड़े हिस्से से सन्तुष्ट हों तो वे आ सकती हैं। जनवरी के अन्तिम सप्ताह में शावेज ने अमरीकी राजदूत को राष्ट्रीयकरण की योजनाओं की आलोचना करने पर सार्वजनिक तौर पर लताड़ा कि यदि वह घरेलू राजनीति में हस्तक्षेप करने से बाज नहीं आता तो उसे निष्कासित कर दिया जायेगा।

वेनेजुएला में अपनी क्रान्ति को आगे बढ़ाने के लिए शावेज 5 चालक शक्तियों की जरूरत बताते हैं। पहला, शासनादेश जारी करके कानून बनाने का अधिकार देने वाला जनवरी के अन्तिम सप्ताह में संसद में पारित प्रस्ताव जो सरकार के फैसलों को तेजी से लागू करने में मदद करेगा। दूसरा, क्रान्तिकारी बदलावों के अनुरूप कानूनी ढाँचा तैयार करने के लिए एक संविधान सभा का निर्माण करना। तीसरा, समाजवादी मूल्यों के संस्कार देने के लिए एक बोलीवेरियन शिक्षा व्यवस्था विकसित करना। चौथा, हाशिये पर पड़े इलाकों को भी सत्ता में भागीदार बनाना। पाँचवाँ, सामुदायिक परिषदों का तेजी से निर्माण करना जो अन्ततोगत्वा "पूँजीवादी राज्य को विखण्डित" कर देंगी।

सामुदायिक परिषदों की शुरुआत पिछले साल हुई। इनमें 200-400 परिवार शामिल होते हैं। अपने इलाके में सरकारी फैसलों को लागू करने के बारे में इनका फैसला अन्तिम होता है। 15 साल से ऊपर के सभी लोग परिषदों की निर्णय प्रक्रिया में शामिल हैं। इस साल के अन्त तक 21,000 सामुदायिक परिषदें गठित होंगी जिन्हें 5 अरब डालर सीधे देने की सरकार ने घोषणा की है।

छोटे समुदायों में "मिशन" शुरू किये गये हैं जो स्वास्थ्य सेवाएँ और कम कीमत पर भोजन उपलब्ध कराते हैं। उन इलाकों में जो अभी तक बुनियादी सुविधाओं से वंचित हैं, वे अन्य सामाजिक सेवाएँ भी उपलब्ध करवा रहे हैं। पिछले 8 सालों में 2000 से ज्यादा स्वास्थ्य केन्द्र कायम किये गये हैं जहाँ गरीबों का इलाज होता है। लगभग 47% आबादी सरकार द्वारा खोले गये सस्ती दरों पर खाना उपलब्ध करवाने वाले 15 हजार वितरण केन्द्रों से खाना खरीदती है।

सहकारी क्षेत्र को प्रोत्साहित किया जा रहा है। 10% से ज्यादा वयस्क आबादी इसी क्षेत्र में कार्यरत है। सरकार बन्द पड़ी फैक्ट्रियों को मजदूरों को सौंप रही है और नयी सरकारी फैक्ट्रियाँ भी लगा रही है।

इन नीतियों के परिणाम स्वरूप शावेज के शासन काल में गरीबी रेखा के नीचे रहने वाली आबादी 49% से घटकर 33% रह गयी है। यहाँ तक कि विश्व बैंक तक को इसे "महत्वपूर्ण प्रगति" के तौर पर स्वीकार करना पड़ा है।

अमरीका शावेज के खिलाफ पहले भी एक असफल

तख्तापलट करवा चुका है। अभी हाल ही में उसने लातिन अमरीका की सभी सेनाओं के मध्यम दर्जे तक के अफसरों को सैद्धान्तिक और रणनीतिक प्रशिक्षण देने के लिए खुद को अधिकृत किया है। अमरीका फिर इस तरह की हिमाकत करने से बाज नहीं आयेगा, इस सम्भावना को देखते हुए शावेज अपने देश के 10 लाख लोगों को हथियार चलाने का प्रशिक्षण भी दिलवा रहे हैं।

अमरीका ने शासनादेश के जरिये शासन को ''निरंकुश'' कहकर चिल्लाना शुरू कर दिया है। शावेज को ''तानाशाह'', ''लोकतन्त्र के लिए खतरा'' और उसके प्रयासों को ''लोकतन्त्र का गला घोंटने वाले'' करार दिया गया जबकि 1961 का पुराना संविधान और वर्तमान संविधान दोनों इसकी अनुमति देते हैं। शासनादेश के जरिये शासन करने वाले शावेज 5वें राष्ट्रपति हैं। अमरीका का गृह उप-सचिव जॉन नेग्रोपोण्ट शावेज को लोकतन्त्र के लिए खतरा बता रहा है। वह खुद होण्डुरास में ''मौत के दस्तों'' को बढ़ावा देने और केन्द्रीय अमरीका में 1980 के दशक में चले ''घिनौने युद्धों'' के कारण इतना बदनाम था कि अमरीका की ''गोलार्द्ध के मामलों की परिषद'' (कोहा) ने उसे सार्वजनिक कार्यों के लिए अयोग्य करार दिया था।

शावेज द्वारा देश के प्राकृतिक संसाधनों पर पूर्ण नियन्त्रण कायम करने का प्रयास अमरीका को फूटी आँखों नहीं सुहा रहा है क्योंकि वेनेजुएला में कई अमरीकी तेल कम्पनियों और टेलीफोन कम्पनियों की पूँजी लगी है। 1974 में राष्ट्रपति कार्लोस आन्द्रेज पेरेज ने भी शासनादेश जारी करके आवश्यक वस्तुओं की कीमतों पर नियन्त्रण और न्यूनतम वेतन बढ़ाने जैसे काम किये थे लेकिन अमरीका ने उसका कोई विरोध नहीं किया था क्योंकि वह अमरीका का नजदीकी था और उसने अमरीका की तेल लॉबी को कोई नुकसान नहीं पहुँचाया था। कार्लोस पूरे लातिन अमरीका में वैश्वीकरण का समर्थन करने वालों में अग्रणी था।

शासनादेश के जरिये शासन पर टीवी पर बहस के दौरान वेनेजुएला के उप-राष्ट्रपति राबर्टो हरनान्देज ने वेनेजुएलावासियों का आह्वान किया कि हम क्रान्तिकारी दौर में रह रहे हैं और ''क्रान्ति का बुनियादी लक्ष्य है सामाजिक न्याय।'' ''सामाजिक न्याय के पक्षधर क्रान्तिकारी इन्तजार नहीं करते।'' ''शासनादेश के जरिये शासन'' अन्ततः लोकतन्त्र को मजबूत करेगा।

अब शिक्षा में विदेशियों की घुसपैठ

विश्व व्यापार संगठन (डब्लू.टी.ओ.) को 2003 में दिये गये अपने वचन को निभाते हुए भारत सरकार ने देश में विदेशी विश्वविद्यालय खोलने के मामले में सौ फीसदी प्रत्यक्ष विदेशी पूँजी निवेश (एफ.डी.आई.) की अनुमति देने का निर्णय लिया है। अब कोई भी विदेशी विश्वविद्यालय भारत के किसी संस्थान के साथ मिलकर या अकेले ही अपना शैक्षिक संस्थान स्थापित करने कि लिए स्वतन्त्र होगा। इस बारे में सुझाव देने के लिए गठित मन्त्री समूह की रिपोर्ट आने के बाद सरकार अब 'फॉरेन यूनिवर्सिटीज एण्ट्री एण्ड ऑपरेशन एक्ट-2006' लाने की तैयारी कर रही है।

वैश्वीकरण के इस दौर में हमारे देश के तथा दुनियाभर के सरमायादारों को नये तरह के वकील, बैरिस्टर, जज, टेक्नोक्रेट, ब्यूरोक्रेट, प्रबन्धक, डिजाइनर्स इत्यादि की जरूरत है जो नयी चाल-ढाल की शिक्षा पाये और उपभोक्तावादी संस्कृति में डूबे हों और इस व्यवस्था के विश्वस्त अनुचर बन सकें। इसके लिए शिक्षा की पुरानी व्यवस्था के ऊपर यह नयी व्यवस्था आरोपित की जा रही है जिसमें खुलेआम देशी-विदेशी पूँजीपतियों की जरूरत के हिसाब से तय किया जायेगा कि क्या पढ़ाया जाये।

इस काम को देशी विश्वविद्यालय और महाविद्यालय तो कर ही रहे हैं, अब विदेशी शिक्षण संस्थाएँ भी इस दौड़ में शामिल हो रही हैं।

देश की जनता से किये गये वायदे सरकार को कभी याद नहीं रहते लेकिन पूँजीपतियों को दिये गये वचन और उनकी जरूरतों को पूरा करने के लिए वह कितनी मुस्तैद है!

कमाण्डर फिदेल

■ गैब्रियल गार्सिया मार्क्वेज

वे बात के पक्के हैं। उनमें सम्मोहन की शक्ति है। वे समस्याओं की जड़ तक जाकर उनकी छानबीन करते हैं। उनकी बातचीत की शैली अत्यन्त प्रेरणाप्रद और आवेगपूर्ण है। उनकी किताबों का संग्रह देखकर पता चलता है कि उनकी रुचियाँ कितनी व्यापक हैं। तम्बाकू की आदत का विरोध करने का नैतिक अधिकार हासिल करने के लिए उन्होंने सिगरेट पीना छोड़ दिया था। वे वैज्ञानिक उत्साह के साथ तरह-तरह के व्यंजनों की विधियाँ तैयार करना पसन्द करते हैं। रोज कई घण्टे व्यायाम करके और लगातार तैराकी करके वे अपनी तन्दुरुस्ती बेहतरीन बनाये रखते हैं। अपार धैर्य, सख्त अनुशासन। अपनी कल्पना का विस्तार करके वे अप्रत्याशित चीजों का भी अनुमान लगा लेते हैं।

जोस मार्ती उनके सबसे प्रिय लेखक हैं और उन्हें मार्ती के विचारों को मार्क्सवादी क्रान्ति की आशावादी वेगवान धारा के साथ मिलाने में दक्षता हासिल है। उनके अपने विचारों का सार उनके इस पक्के यकीन में है कि जनकार्य के लिये बुनियादी चीज है एक-एक व्यक्ति के प्रति सरोकार।

यही बात सीधा सम्पर्क बनाने की कार्यशैली पर उनके गहरे भरोसे का खुलासा कर देती है। वे हर नये अवसर के अनुसार नयी और खास भाषा का प्रयोग करते हैं और सामने वाले को कायल बनाने के लिए उस खास व्यक्ति के अनुरूप खास तरीका अपनाते हैं। वे जानते हैं कि खुद को सम्बन्धित व्यक्ति के स्तर तक कैसे ले जाना है। उनकी व्यापक और विविधतापूर्ण जानकारी उन्हें संवाद का कोई भी माध्यम अपनाने में सक्षम बनाती है। एक बात निश्चित है– वे जहाँ, जैसे और जिसके साथ होते हैं, वहीं, वैसे ही और उसी के साथ होते हैं।

जीतना फिदेल कास्त्रो की फितरत है। पराजय का सामना होने पर, चाहे वह रोजमर्रा की जिन्दगी के छोटे-छोटे मामले ही क्यों न हों, लगता है कि वे अपनी एक निजी तर्क पद्धति का पालन करते हैं– पराजय उन्हें स्वीकार नहीं और जब तक बाजी को पलटकर वे उसे जीत में नहीं बदल लेते, एक क्षण के लिए भी चैन से नहीं बैठते।

उनकी सबसे बड़ी सहायक है उनकी स्मरणशक्ति और वे इसका बेहद इस्तेमाल करते हैं जब वे अपने भाषणों और निजी बातचीत को सुसंगत बनाने के लिए इतनी जबरदस्त तर्कशक्ति का प्रयोग करते हैं और इतनी तेजी के साथ आँकड़े पेश करते हैं कि आश्चर्य होता है। उन्हें लगातार ऐसी सूचनाओं की जरूरत पड़ती है जो जुगाली कर-कर के अच्छी तरह पचायी गयी हों। अपने नाश्ते के साथ वे अखबार के कम से कम 200 पन्ने पढ़ लेते हैं। उनको दिये गये उत्तर सटीक होने चाहिए क्योंकि लापरवाही से कही गयी किसी बात में यदि थोड़ा सा भी विरोधाभास हो तो उसे पकड़ने में वे माहिर हैं। उनकी पढ़ने की भूख कभी शान्त नहीं होती। अपने हाथ लगी किसी भी सामग्री को किसी भी समय पढ़ डालने के लिए वे तैयार रहते हैं।

वे अपने को सूचना सम्पन्न बनाने का कोई मौका नहीं चूकते। अंगोला युद्ध के दौरान यूरोप के प्रतिनिधियों के स्वागत समारोह में बोलते हुए उन्होंने युद्ध का इतनी बारीकी से वर्णन किया कि यूरोप के एक राजनयिक को यह समझाना मुश्किल हो गया कि फिदेल कास्त्रो ने खुद उस युद्ध में भाग नहीं लिया है।

लातिन अमरीका के भविष्य के बारे में उनका सपना वही है जो बोलीवार और मार्ती का था– एक एकीकृत और स्वायत्त समुदाय जो दुनिया की नियति को प्रभावित करने में समर्थ हो। क्यूबा के अलावा फिदेल जिस देश के बारे में सबसे ज्यादा जानते हैं, वह है अमरीका– वहाँ के लोगों का स्वभाव, उनकी सत्ता का ढाँचा और सरकारों के छिपे मंसूबे। इस जानकारी ने नाकेबन्दी की अनवरत यन्त्रणा का मुकाबला

करने में उनकी मदद की है।

किसी प्रश्न का उत्तर देने से उन्होंने कभी इनकार नहीं किया, वह चाहे जितना भी उकसाने वाला रहा हो, उन्होंने कभी अपना धैर्य नहीं खोया। यदि कोई उन्हें सच बात बताने में कंजूसी करे और उतनी ही बातें बताये जितना जरूरी है, यह सोचकर कि वे तो जानते ही होंगे, उसे वे तुरन्त पकड़ लेते हैं। ऐसे ही एक अधिकारी से उन्होंने कहा था, "आप मुझसे सच्चाई छिपा रहे हैं ताकि मैं चिन्तित न हो जाऊँ। लेकिन जब आखिरकार मैं उनका पता लगा लूँगा तब उन ढेर सारी सच्चाइयों का अचानक सामना करने पर मैं इस आघात से मर जाऊँगा कि मुझे यह सब बताया क्यों नहीं गया।" उनसे छिपायी जाने वाली सच्चाइयों में सबसे गम्भीर बातें वे हैं जो अपनी कमजोरियों पर परदा डालने के लिए छिपायी जाती हैं, क्योंकि क्रान्ति को स्थायित्व प्रदान करने वाली बहुत सी राजनीतिक, वैज्ञानिक, खेलकूद सम्बन्धी और सांस्कृतिक उपलब्धियों के साथ-साथ विराट नौकरशाहाना अक्षमता भी है जो दैनन्दिन जीवन को और खास तौर पर आन्तरिक खुशहाली को प्रभावित कर रही है।

गली-कूचों में जब वे लोगों से बात कर रहे होते हैं तो उनकी अभिव्यक्ति सशक्त हो उठती है। उसमें सच्चे स्नेह का ठेठ खुलापन आ जाता है। लोग उन्हें फिदेल कहकर बुलाते हैं। वे उनके साथ बेतकल्लुफी से बातें करते हैं, तर्क-वितर्क करते हैं और उनके सामने अपनी माँगें पेश करते हैं। ऐसे मौके पर हमें उनमें एक असाधारण मानव के दर्शन होते हैं जो उनके आभामण्डल के कारण हमारे दृष्टिपटल से ओझल रहता है। मुझे यकीन है कि यही वह फिदेल कास्त्रो है जिसे मैं जानता हूँ। एक संयमी व्यक्ति, एक विराट स्वप्नदर्शी, जिसने पुराने ढंग की औपचारिक पढ़ाई के दौरान सन्तुलित बातचीत और अभिभूत करने वाला लहजा हासिल किया है और जो ऐसे किसी भी विचार को ग्रहण करने में असमर्थ है जो उत्कृष्ट, भव्य और विराट न हो।

मैंने सुना है कि वे ऐसे उपाय ढूँढते रहते हैं जिनसे अपने काम करने के तरीकों में फेरबदल करके अधिक समय निकाल सकें। एक बार जब वे सुदूर भविष्य की ढेर सारी चिन्ताओं में उलझे हुए थे, तभी मैंने उनसे पूछा कि इस दुनिया में ऐसा क्या काम है जिसे आप अभी करना चाहते हैं? उन्होंने तपाक से जवाब दिया– "किसी नुक्कड़ पर खड़ा होना।" ▣

किसिम-किसिम की हिन्दी

'खड़ी बोली का पद्य, पहिला भाग' पुस्तक की भूमिका में अयोध्या प्रसाद खत्री ने खड़ी बोली के पाँच भेद माने हैं–

1 ठेठ हिन्दी
2 पण्डितजी की हिन्दी
3 मुन्शीजी की हिन्दी
4 मौलवी साहब की हिन्दी
5 यूरेशियन हिन्दी

यह पुस्तक नारायण प्रेस, मुजफ्फरपुर से सन् 1887 ई. में प्रकाशित हुई थी।

आज हिंग्लिश का जमाना है। यह पूरे मीडिया के सर चढ़ कर बोल रहा है। पढ़े-लिखे लोग हिंग्लिश बोलते हैं। जो हिंग्लिश नहीं बोलता वह अनपढ़ समझा जाता है।

हिंग्लिश की पहचान आज से 120 वर्ष पहले ही यूरेशियन हिन्दी के रूप में खत्री जी ने कर दी थी–

डार्कनेस छाया हुआ है हिन्द में चारों तरफ।
नाम की भी है कहीं बाकी न लाइट नाउएडेज।

–'खड़ी बोली का पद्य, दूसरा भाग' 1889

पीस का नामो निशाँ अब वर्ल्ड में बाकी नहीं।
हर तरफ सुनने में आता है टु फाइट नाउएडेज।

–वही

ये लिखते ही
ऐसी कविता हैं
जिसका विदेशी भाषाओं में
आसानी से अनुवाद
हो सके।

■ देवी प्रसाद मिश्र

खुदरा व्यापार: देशी-विदेशी मगरमच्छों के जबड़े में

■ संजय

दुनिया की सबसे बड़ी खुदरा व्यापार कम्पनी वालमार्ट के सुनील मित्तल की कम्पनी भारती इण्टरप्राइजेज के साथ गठजोड़ करके भारत के बाजार में दाखिल होने की खबर किसी हादसे से कम नहीं। 27 नवम्बर 2006 को हुए इस करार के मुताबिक देशी-विदेशी सरमायादारों का यह गठजोड़ आजादी की 60वीं वर्षगाँठ पर 15 अगस्त 2007 को देश के विभिन्न शहरों में लगभग 100 खुदरा बिक्री केन्द्रों की शुरुआत करेगा। खुदरा व्यापार से अपनी रोजी-रोटी चलाने वाले देश के 4 करोड़ लोगों के लिए यह उथल-पुथल और तबाही भरे भविष्य का सूचक है।

भारत में केवल एक ब्राण्ड की वस्तुओं के लिए खुदरा व्यापार में 51 फीसदी विदेशी पूँजी निवेश की छूट है। अर्थात सोनी, नाइक, रिबोक या वुडलैण्ड जैसी बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ जो एक ही ब्राण्ड नाम से कई तरह की वस्तुएँ तैयार करती हैं, उन्हें भारत में अपना शो रूम खोलने या अपने किसी एजेण्ट को बिक्री का अधिकार (फ्रेंचाइजी) देने की इजाजत है। लेकिन बड़े-बड़े माल, डिपार्टमेण्टल स्टोर या परचून की दुकानों में एक ही छत के नीचे सैकड़ों तरह के सामान बेचने वाली वालमार्ट जैसी विदेशी कम्पनियों को यहाँ पूँजी लगाने या कारोबार करने की छूट नहीं है।

हर तरह के खुदरा व्यापार को सौ फीसदी हिस्सेदारी के साथ पूरी तरह विदेशी सरमायादारों के लिए खोलने के लिए काफी समय से सरकार पर दबाव पड़ रहा था। बुश की भारत यात्रा के समय वालमार्ट का प्रतिनिधि भी उसके साथ यहाँ आया था और दोनों देशों के पूँजीपतियों ने सरकार को जो माँग पत्र पेश किया था, उसमें खुदरा व्यापार में विदेशी पूँजी निवेश की जबरदस्त सिफारिश की गयी थी। सरकार इस काम के लिए दिलोजान से तैयार है, लेकिन अपने गठबन्धन की प्रमुख सहयोगी, वामपन्थी पार्टियों के विरोध के चलते यह काम एक झटके में कर डालना उसके लिए आसान नहीं। इसीलिए वह इस काम को कई चरणों में पूरा करना चाहती है और इसके रास्ते की एक-एक रुकावट को हटाती जा रही है। अनाज और अन्य उपभोक्ता वस्तुओं की थोक खरीद-बिक्री में विदेशी पूँजी लगाने की छूट, कोटा, परमिट और लाइसेन्स की समाप्ति, वैट लागू करके पूरे देश में बिक्री कर को सरल और समरूप बनाना, सीलिंग के जरिये आवासीय इलाकों से दुकानें हटवाना, शहरों से फड़, खोखा, ठेला, खोमचा हटवाना, बड़े-बड़े शहरों में माल, मार्केटिंग कॉम्प्लेक्स और व्यावसायिक इमारतों के निर्माण के लिए पूँजीपतियों को सस्ती जमीन मुहैया कराना और ऐसे ही ढेर सारे उपाय इसी दिशा में उठाये गये कदम हैं। इसी के साथ-साथ विभिन्न प्रकार की उपभोक्ता वस्तुओं के थोक व्यापार, रख-रखाव, कोल्ड स्टोरेज, फूड प्रोसेसिंग, माल ढुलाई और आपूर्ति जैसे खुदरा व्यापार के लिए जरूरी और सहायक कामों में सरकार ने सौ फीसदी विदेशी पूँजी निवेश की छूट भी दे दी है।

अमरीकी सरकार के जरिये भारत सरकार पर दबाव बनाने के अलावा वालमार्ट ने एक साल पहले भारत में अपना बिजनेस डेवेलपमेण्ट एण्ड मार्केट रिसर्च ऑफिस भी खोला था और अपने एक बड़े अधिकारी को यहाँ तैनात किया था। इसका घोषित उद्देश्य इस बात की जाँच पड़ताल करना था कि भारत के खुदरा व्यापार में मुनाफे की कितनी गुंजाइश है, लेकिन असली मकसद यहाँ के नेताओं, मन्त्रियों और आला अफसरों को अपने पक्ष में करना, अर्थशास्त्रियों, पत्रकारों और मीडिया कर्मियों के साथ सम्पर्क बढ़ाना तथा खुदरा व्यापार में विदेशी पूँजी के लिए अनुकूल माहौल बनाना था। वालमार्ट की पूरी कोशिश थी कि यदि सौ फीसदी हिस्सेदारी की इजाजत न भी हो तो किसी कम्पनी में कुछ आंशिक

हिस्सेदारी और प्रत्यक्ष पूँजी निवेश के साथ ही खुदरा व्यापार में उतरे ताकि कारोबार पर उसका वर्चस्व कायम रहे। कई साल के प्रयास के बाद वह अपने लिए कुछ चोर दरवाजे खुलवाने में कामयाब रही और अन्ततः उसने उन्हीं के सहारे, एक 'ट्रोजन हॉर्स' की मदद से, भारत के बाजार में घुसपैठ का रास्ता अपनाया। साथ ही, भारत सरकार ने उसे आश्वस्त भी किया है कि आने वाले दिनों में कम्पनी जैसा चाहती है, वैसा ही होगा।

भारत में पाँव पसारने के लिए वालमार्ट ने जिस भारती ग्रुप के साथ नापाक गठबन्धन कायम किया है, उसने पहले भी भारत में बहने वाली वैश्वीकरण-उदारीकरण-निजीकरण की बयार का भरपूर फायदा उठाया है। विदेशी सरमायादारों के साथ साँठ-गाँठ करके उसने रातोंरात बेहिसाब मुनाफा बटोरा है। 1992 में इसने फ्रांसीसी कम्पनी विवण्डी से गठजोड़ किया। इसके बाद ब्रिटिश टेलीकॉम, टेलीकॉम इटालिया, सिंगटेल और वोडाफोन से करार करके 10 वर्षों में ही 5000 करोड़ रुपये से अधिक मुनाफा कमाने वाली दूरसंचार कम्पनियों में शामिल हो गयी। कृषि उत्पाद के क्षेत्र में दो साल पहले जर्मन कम्पनी रोथ्सचाइल्ड के साथ गठजोड़ करके इसने फील्डफ्रेशर नाम की कम्पनी खड़ी की जिसका प्रचार करने के लिए प्रधानमन्त्री मनमोहन सिंह ने भुट्टा खाते हुए फोटो खिंचवाया था। यह कम्पनी पंजाब में 5000 एकड़ जमीन पर ठेका खेती करवा रही है, जिसकी तरोताजा फसल अमरीका और यूरोप के बाजारों में बेची जाती है। सुनील मित्तल का कहना है कि बिना विदेशी कम्पनियों से साझेदारी किये आज हम इतनी ऊँचाई पर नहीं होते।

वालमार्ट के साझेदार के रूप में भारती ग्रुप सुपर बाजार, मेगामार्ट या डिपार्टमेण्टल स्टोर खोलकर प्रत्यक्ष रूप से खुदरा बिक्री का कारोबार सम्भालेगा क्योंकि वालमार्ट का सीधे इस काम में हाथ डालना गैर कानूनी है। खुदरा बिक्री केन्द्रों की इस पूरी शृंखला और उसके तामझाम को पीछे से सम्भालने के लिए दोनों कम्पनियाँ मिलकर एक नयी कम्पनी बनायेंगी जिसका काम जगह-जगह से उपभोक्ता वस्तुओं की थोक खरीद करना, प्रोसेसिंग, पैकिंग, ढुलाई और बिक्री केन्द्रों तक माल की आपूर्ति करना होगा। वालमार्ट इन्हीं कामों में अपनी महारत और एकाधिकारी प्रभाव के दम पर प्रत्यक्ष खुदरा कारोबार पर भी अपना नियन्त्रण बनाये रखेगी क्योंकि इन सभी कामों में सौ फीसदी विदेशी मालिकाने की छूट है। और कल को जब सरकार की मेहरबानी होगी तो वह सीधे अपनी कम्पनी का बोर्ड लटका कर दुकान भी चलाने लगेगी।

भारत का कुल खुदरा व्यापार 300 अरब डालर, यानी 13,50,000 करोड़ रुपये है और अगले 5 वर्षों में इसके दोगुना हो जाने की सम्भावना है। इसमें छोटे-बड़े किराना दुकान, फड़, खोखा, ठेला, खोमचा, हाट, बाजार, मेला या फेरी वालों का हिस्सा 97 फीसदी है। संगठित क्षेत्र, जिसमें बड़े माल, सुपर बाजार, मेगामार्ट और बडी देशी-विदेशी कम्पनियों के शो रूम और खुदरा दुकानें शामिल हैं जिनका हिस्सा महज 3 फीसदी, यानी 40,000 करोड़ रुपये है। तेजी से फल-फूल रहे खुदरा क्षेत्र में मित्तल, अम्बानी, टाटा, बिड़ला जैसे इजारेदार घरानों की बढ़ती दिलचस्पी को देखते हुए अगले 2-3 वर्षों में ही संगठित बड़े कारोबारियों का हिस्सा बढ़कर 10-15 फीसदी हो जाने की सम्भावना है। हो सकता है, यह हिस्सा और भी बड़ा हो जाये क्योंकि यह अनुमान एक वर्ष पुराना है और पिछले दो महीने के भीतर ही कई बड़े सरमायादारों ने इस क्षेत्र में हजारों करोड़ रुपये की पूँजी लगाने का फैसला किया है। साथ ही विदेशी सरमायादारों से मुकाबला करने के लिए इस बीच कई खुदरा व्यापार कम्पनियों ने आपस में विलय और गठजोड़ के निर्णय भी लिये हैं।

खुदरा बाजार में भारी मुनाफे के लोभ में पिछले कुछ वर्षों से हर छोटे-बड़े शहर में पुराने ढर्रे की खुदरा दुकानों की जगह चमक-दमक से भरे बड़े-बड़े मेगामार्ट और डिपार्टमेण्टल स्टोर खुलने लगे हैं। सुभीक्षा, स्पेंसर, बिग बाजार, विशाल मेगामार्ट, त्रिनेत्र और सुपर रिटेल जैसी संगठित खुदरा कम्पनियों की भारी कमाई को देखते हुए कई अन्य इजारेदार घराने भी इस दौड़ में शामिल हो गये। ऐसे में छोटी पूँजी और अपने परिवार की मेहनत के बल पर रोजी-रोटी कमाने वाले खुदरा व्यापारियों में अफरा-तफरी मचना स्वाभाविक ही था। इन छोटे दुकानदारों को उजाड़ने के लिए अरबो-खरबों की पूँजी लेकर देशी सरमायेदारों का अखाड़े में उतरना ही काफी था। रही-सही कसर पूरी करने के लिए अब अपने देश (अमरीका) में 'बेण्टोविले का दानव' कहलाने वाली वालमार्ट भी अपने खूंखार जबड़े खोले खुदरा दुकानदारों को निगलने के लिए भारत के बाजारों में आ धमकी।

वालमार्ट और भारती के बीच गठजोड़ के बाद भारत के बड़े पूँजीपतियों की सरगर्मी काफी तेज हो गयी। मुकेश अम्बानी पहले भी इस दौड़ में सबसे आगे था जिसने रिलायन्स फ्रेश के नाम से खुदरा दुकानों की श्रृंखला शुरू कर दी थी। अब वह सुभीक्षा, अदानी और लैण्डमार्क जैसी कम्पनियों के अधिग्रहण के प्रयास में लगा है। पेण्टालून रिटेल के किशोर बियानी ने 2007 में 100 नये बिग बाजार खोलने की घोषणा की है। टाटा पहले ही वेस्ट साइड और लैण्डमार्क के नाम से खुदरा बाजार में था। हाल ही में उसने आस्ट्रेलिया की कम्पनी बुलवर्थस् के साथ गठजोड़ करके क्रोमा नाम से खुदरा दुकानों की श्रृंखला शुरू करने का फैसला किया है। बिड़ला ग्रुप ने त्रिनेत्र सुपर रिटेल कम्पनी का अधिग्रहण किया है जिसके 172 सुपर बाजार हैं। दुनिया की कई दूसरी बहुराष्ट्रीय रिटेल कम्पनियाँ जैसे–मेण्ट, मैट्रो, टेस्को और केयरफोर भी भारत में अपने संश्रयकारियों (कोलेबोरेटर्स) की तलाश कर रही हैं।

खुदरा बाजार में इन बड़े मगरमच्छों को उतारने से एक तरफ जहाँ 4 करोड़ लोगों की रोजी-रोटी छिन जाने का खतरा पैदा हो गया है, वहीं मुट्ठी भर ऐसे लोग भी हैं जिनके लिए यह बहुत बड़ी खुशखबरी है। वालमार्ट ने 2005 में भारत से लगभग 2700 करोड़ रुपये की उपभोक्ता वस्तुएँ आयात की थीं। इसीलिए उसके पुराने सप्लायर– लिबर्टी शू कम्पनी, तौलिया बनाने वाली ट्राइडेण्ट, टूथपेस्ट बनाने वाली सेवन गार्ड और बासमती चावल निर्यातक सतपाल ओवरसीज के मालिकान खुशी से फूले नहीं समा रहे हैं कि उनके विदेशी आका अब भारत में भी अपना धन्धा फैलाने आ रहे हैं। लेबर, कर्मचारी और सुरक्षा गार्ड सप्लाई करने का ठेका लेने वाली कम्पनियों की भी चाँदी है। और तो और महानगरों की कुछ निजी शिक्षण संस्थाएँ जो देशी-विदेशी सरमायादारों की जरूरतों के अनुरूप, नये-नये व्यावसायिक पाठ्यक्रम चलाकर मोटी कमाई करती हैं, अभी हाल ही में उन्होंने खुदरा व्यापार मैनेजमेण्ट का पाठ्यक्रम शुरू करने का ऐलान किया है। इन स्वार्थ में अन्धे लोगों को भला छोटे दुकानदारों के विनाश और देश की निर्बाध लूट से क्या लेना-देना!

खुदरा व्यापार में देशी-विदेशी सरमायादारों की घुसपैठ का कितना विनाशकारी परिणाम सामने आयेगा इसे वालमार्ट के उदाहरण से ही समझा जा सकता है। वालमार्ट का सालाना करोबार 14,62,000 करोड़ रु. है जो भारत के कुल खुदरा व्यापार से 1,62,000 करोड़ रु. अधिक है और भारत सरकार के सालाना बजट के ढाई गुने से भी ज्यादा है। दुनिया के 14 देशों में इसके 6200 मेगामार्ट हैं जिसमें 16 लाख लोग काम करते हैं। वालमार्ट के कुल व्यापार और कुल रोजगार के इस अनुपात को देखते हुए यह समझना कठिन नहीं कि बड़े सरमायादार भारत के खुदरा व्यापार में लगे 4 करोड़ लोगों की जगह 15 लाख लोगों से ही काम चला लेंगे और शेष लोगों को सड़कों पर फेंक देंगे। वालमार्ट की इसी नृशंसता के चलते अमरीकियों ने उसका नाम 'बेण्टोविले का दानव' रखा है क्योंकि वहाँ के कई लाख छोटे दुकानदारों को यह निगल चुका है। पहली बात तो यह कि वालमार्ट की तरह एक ही स्थान पर इतने मेल और इतने प्रकार की चीजें रखना किसी छोटे दुकानदार के लिए सम्भव ही नहीं। दूसरे, उस कम्पनी ने ग्राहकों को अपनी ओर खींचने के लिए कुछ समय के लिए कम कीमत, विशेष छूट और मुफ्त उपहार का हथकण्डा भी अपनाया। इस तरह छोटे दुकानदारों के ग्राहक टूट गये और उनकी दुकानें चौपट हो गयीं। वालमार्ट की एक खासियत यह है कि अपने सामानों की कीमत कम रखने के लिए यह आपूर्ति करने वालों से कम से कम कीमत पर सामान खरीदता है जिसकी भरपाई वे अपने मजदूरों का खून निचोड़-निचोड़ कर करते हैं। दूसरी ओर यह अपने कर्मचारियों से बहुत ही कम मजदूरी और खराब सेवा शर्तों पर अधिक से अधिक काम लेने के लिए भी बदनाम है। अक्टूबर 2006 में इसकी फ्लोरिडा शाखा के कर्मचारियों ने बगावत कर दी क्योंकि कम्पनी उन्हें 24 घण्टे शिफ्ट में काम करने को मजबूर करती थी और उनकी ड्यूटी लगाने का काम स्थानीय मैनेजर नहीं बल्कि हेडक्वार्टर में लगा कम्प्यूटर करता था। इन बदनाम हरकतों के चलते न्यूयार्क और लॉस एंजेल्स के स्थानीय लोगों ने इसका लगातार विरोध किया और आज तक वहाँ इसकी कोई शाखा नहीं खुलने दी। इण्डोनेशिया में वालमार्ट द्वारा उजाड़े गये दुकानदारों ने उसके मेगामार्ट पर हमला कर दिया जिसके बाद कम्पनी को वहाँ से अपना बोरिया बिस्तर समेटना पड़ा।

कैलीफोर्निया विश्वविद्यालय में हुए एक शोध के अनुसार वालमार्ट जहाँ भी जाता है वहाँ खुदरा व्यापार में रोजगार के अवसर कम होते हैं और मजदूरों की आय में गिरावट आती है। एक तो वह खुद भी अपने कर्मचारियों को कम वेतन देता है। दूसरे उसकी

शाखा खुलते ही आसपास की दुकानों की बिक्री कम हो जाती है, जिसके चलते वे या तो उजड़ जाते हैं या खुद को टिकाये रखने के लिए अपने कर्मचारियों की छँटनी करते हैं। वे थोड़े लोगों से अधिक काम लेते हैं और उनके वेतन में कटौती करने को भी बाध्य होते हैं।

वालमार्ट अमरीका में निजी क्षेत्र के सबसे ज्यादा लोगों को नौकरी देने वाली कम्पनी है, लेकिन साथ ही यह वहाँ की सबसे कम वेतन पर काम कराने वाली कम्पनी के रूप में भी कुख्यात है। यह कम्पनी अमरीकी साम्राज्यवादी व्यवस्था का दर्पण है जहाँ सकल घरेलू उत्पाद बढ़ाने के बावजूद वहाँ के मेहनतकश लोगों की आमदनी और जीवन स्तर में लगातार गिरावट आ रही है। इसी बात को लेकर पिछले वर्ष 'इण्टरनेशल लेबर राइट फण्ड' नाम की एक संस्था ने वालमार्ट पर मुकदमा दायर कर दिया था। उस पर यह भी आरोप लगाया गया था कि यह कम्पनी अपने लिए माल तैयार करने वाले कई देशों के सप्लायर्स को कम कीमत पर सामान बेचने के लिए मजबूर करती है। इसके चलते वे अपने मजदूरों का भयानक शोषण करते हैं और उनसे गुलामों की तरह काम लेते हैं। भारत में इसके आपूर्तिकर्ता (उदाहरण के लिए लिबर्टी और ट्राइडेण्ट) अपने मजदूरों के साथ कैसा सलूक करते हैं, वह तो हम सब देख ही रहे हैं। आने वाले दिनों में निश्चय ही मजदूरों के ऊपर शोषण-उत्पीड़न का यह शिकंजा और अधिक कसता जायेगा।

भारत में बेरोजगारी का आलम यह है कि काम करने वाली उम्र के 58 फीसदी लोग बेरोजगार हैं। खेती, उद्योग और उत्पादन के अन्य क्षेत्रों में रोजगार के अवसर सिकुड़ते जाने के कारण भारी संख्या में लोगों ने किसी तरह पैसे जुटाकर खुदरा व्यापार करके अपने परिवार के लिए दो रोटी जुटाने का प्रयास किया। रोजगार का सृजन करने में असमर्थ सरकारों ने भी बेरोजगार नौजवानों को स्वरोजगार के लिए बैंकों से कर्ज दिलवाये। इनमें से अधिकांश लोगों के धन्धे चौपट हो गये। जो लोग बचे हैं उनकी स्थिति भी दयनीय ही है। खुदरा व्यापार में लगे 4 करोड़ लोगों में से साढ़े तीन करोड़ से भी अधिक लोगों की आर्थिक स्थिति किसी दिहाड़ी मजदूर से भी बुरी है। ऐसे लोगों को यदि परिवार के भरण-पोषण भर की आमदनी वाला कोई वैकल्पिक रोजगार मिल जाय तो वे उसे तुरन्त स्वीकार कर लेंगे। छोटी से छोटी स्थायी नौकरी भी उनके लिए सपना है। इस नयी अर्थव्यवस्था में जहाँ रोजगार विहीन विकास हो रहा है, भारी पूँजी और स्वचालित तकनीक के बल पर कम से कम लोगों को रोजगार देने की नीति अपनायी जा रही है, वहाँ स्थायी नौकरी का सपना पूरा होना तो सम्भव ही नहीं। उल्टे किसी तरह अपना परिवार चला रहे इन छोटे खुदरा विक्रेताओं को निगलने के लिए बड़े सरमायेदार जीभ लपलपाते हुए बाजार में उतर आये। उम्मीद है कि आनेवाले 5-6 वर्षों में खुदरा व्यापार में संगठित क्षेत्र के 8-10 बड़े सरमायेदारों का बाजार के 20-30 फीसदी हिस्से पर कब्जा होगा। खुदरा बाजार के इतने बड़े हिस्से से आज दो करोड़ से भी अधिक छोटे खुदरा विक्रेताओं के परिवार का गुजारा होता है जिन्हें ये मगरमच्छ एक-एक करके निगल जायेंगे। इस तरह देश को बेरोजगारों, कंगालों और फटेहाल लोगों के देश में तब्दील करने की जो मुहिम पिछले 16 वर्षों से चलायी जा रही है उसे देशी-विदेशी सरमायादारों की यह नयी गिरोहबन्दी तेजी से अंजाम देने में मदद करेगी।

सरकार के मन्त्री देश की जनता को धोखा देने के लिए लगातार झूठ बोल रहे हैं और खुदरा व्यापार में देशी-विदेशी सरमायादारों की घुसपैठ के फायदे गिनवा रहे हैं– इससे किसानों को लाभ होगा, ग्राहकों को सस्ता सामान मिलेगा, लोगों को रोजगार मिलेगा, इत्यादि। देशी सरमायादारों के बयान साफ-साफ यह बताते हैं कि खुदरा व्यापार में उतरने के पीछे उनका मकसद तेजी से मुनाफा बटोरना है क्योंकि इस क्षेत्र में तेजी से विस्तार होने की पूरी सम्भावना है। अब किसकी बात सही मानी जाये– नेताओं की या सरमायादारों की? कोई भी इस बात को आसानी से समझ सकता है कि सरमायादार जो भारी पूँजी लगायेंगे उस पर अरबों रुपये का मुनाफा कहाँ से आयेगा? या तो वे ग्राहकों की जेब काटेंगे या सप्लायर्स को निचोड़ेंगे या अपने कर्मचारियों का खून चूसेंगे। वालमार्ट का पुराना रिकार्ड बताता है कि खुद को डायनासोर की तरह फैलाते जाने के लिए उसने ये तीनों ही हथकण्डे आजमाये हैं। भारत के सरमायादारों का सपना भी उसी के नक्शेकदम पर चलते हुए बेतहाशा मुनाफा बटोरना है।

खुदरा व्यापार में उतर रहे देशी-विदेशी सरमायादारों की प्राथमिकता उत्पादन बढ़ाना और उसका स्तर सुधारना नहीं है। उनकी प्राथमिकता यहाँ रोजगार के अवसर पैदा करना भी नहीं है। उत्पादन

पहले से भी बर्बर तरीकों और मध्ययुगीन परिस्थितियों में जारी रहेगा, बेरोजगारी इसी तरह बढ़ती रहेगी। उनकी निगाह 5 करोड़ उच्च मध्यवर्ग और उससे निचले पायदान पर खड़े 10 करोड़ मध्यमवर्ग की ओर लगी है जिसे रिझाने के लिए वे वितरण और बिक्री की व्यवस्था को अत्याधुनिक और आकर्षक बनाने में लगे हैं। वे मध्यम वर्ग की कुल संख्या, उसकी वास्तविक खरीद क्षमता, उसकी अभिरुचियों और उसकी जरूरतों पर सर्वेक्षण और शोध करवा रहे हैं। उन्हीं की जरूरतों के अनरूप वातानुकूलित माल में सजी-धजी चीजें उपलब्ध कराने और भरपूर मुनाफा बटोरने में उनकी दिलचस्पी है। देश की बहुसंख्यक जनता जो खरीदने की क्षमता न होने के चलते बाजार की चहारदीवारी से बाहर है, वह उनकी कार्यसूची पर नहीं है।

ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने भारत में आने के बाद यहाँ के मुट्ठीभर विश्वास घाती लोगों के साथ दुरभिसन्धि करके षड्यन्त्रों के जरिये देश को गुलाम बनाया था। नयी गुलामी के वर्तमान दौर में वालमार्ट ने अपने उस पुरखे को भी मात दे दी है। भारत में प्रवेश से पहले ही उसने यहाँ की सरकार और सरमायादारों के साथ मिलकर षड्यन्त्रकारी तरीके से अपने अनुकूल कायदे-कानून बनवाये। विदेशी सरमायादारों से दुरभिसन्धि करने वाले आज के मीरजाफरों को उनकी सरकार उसी तरह पद्मभूषण से अलंकृत कर रही है, जिस तरह अंग्रेज सरकार अपने पिट्ठू राजाओं-नवाबों और जागीरदारों को 'रायबहादुर', 'खान बहादुर' की उपाधि दिया करती थी। ईस्ट इण्डिया कम्पनी और मीरजाफरों के गठजोड़ की सेवा और उसकी हिफाजत के लिए यह सरकार अपनी सेना, पुलिस, कोर्ट-कचहरी, प्रचार-माध्यम और प्रशासन तन्त्र के साथ चौकस खड़ी है। ऐसी स्थिति में देश के हर संवेदनशील नागरिक के सामने यह अत्यन्त गम्भीर और विचारणीय प्रश्न मौजूद है कि हम कब तक इन सच्चाइयों से नजर चुराते, हाथ पर हाथ धरे बैठे रहेंगे? ▣

वालमार्ट वापस जाओ!

देश की प्रमुख ट्रेड यूनियनों ने सरकार द्वारा खुदरा बाजार में विदेशी निवेश की छूट दिये जाने और वालमार्ट, केयरफोर और टेस्को जैसी कम्पनियों को भारतीय बाजार में पिछले दरवाजे से प्रवेश देने के खिलाफ कॉपरेटिव स्टोर, खुदरा व्यापारी संघों और छोटे व्यापारियों के साथ मिलकर आन्दोलन छेड़ दिया है।

प्रधानमन्त्री मनमोहन सिंह और सोनिया गाँधी के नाम ज्ञापन में उन्होंने कहा है कि वालमार्ट के भारत के खुदरा बाजार में प्रवेश से बहुत बड़ी संख्या में लोगों के रोजगार छिन जायेंगे क्योंकि भारत में दुनियाभर में सबसे ज्यादा छोटी दुकानें हैं। यहाँ 1.2 करोड़ से ज्यादा छोटी दुकानों में लगभग 4 करोड़ लोगों को रोजगार मिला हुआ है। ये देशी-विदेशी कम्पनियाँ 50% से ज्यादा निवेश खाने के सामानों के खुदरा बाजार में करने जा रही हैं और उसके लिए सीधे ठेका खेती करवायेंगी जिसका भारतीय खेती पर बहुत विनाशकारी प्रभाव पड़ेगा।

खेती और असंगठित क्षेत्र क्रमश: देश के दो सबसे बड़े रोजगार देने वाले क्षेत्र हैं जिन्हें वालमार्ट तबाह कर देगी। अत: "वालमार्ट जैसी दैत्याकार कम्पनियों को भारत के खुदरा बाजार में प्रवेश नहीं मिलना चाहिए जो विदेशों में अपने एकाधिकारी तौर-तरीकों के लिए कुख्यात हैं।"

इस ज्ञापन पर हस्ताक्षर करने वाले संगठनों में सीटू, अखिल भारतीय किसान सभा, ट्रेड यूनियन कांग्रेस, अपना बाजार, कन्फेडरेशन ऑफ ऑल इण्डिया ट्रेडर्स, फेडरेशन ऑफ एशोसिएशन्स ऑफ महाराष्ट्र, बैंगलोर मर्चेण्ट्स चैम्बर, नेशनल कंज्यूमर फेडरेशन, खादी और ग्रामोद्योग आयोग, नेशनल हाकर्स फेडरेशन, मुम्बई हाकर्स यूनियन, हिन्द मजदूर सभा, नेशनल एलायंस फार पीपुल्स मूवमेण्ट, मुम्बई ग्राहक पंचायत, यूथ इन यूनिटी फॉर वॉलण्ट्री एक्शन, स्वदेशी जागरण मंच, कंज्यूमर कॉपरेटिव फोरम (महाराष्ट्र), मनीबेन कारा इंस्टीट्यूट, सुपर बाजार एवं विकास अध्ययन केन्द्र शामिल हैं।

छपते-छपते

22 फरवरी को अमरीकी कम्पनी वालमार्ट का प्रतिनिधि मण्डल खुदारा व्यापार में उतरने की रणनीति को अन्तिम रूप देने के लिए भारत आया। उसी दिन दिल्ली, मुम्बई और बंगलोर सहित देश के कई शहरों में खुदरा व्यापार में विदेशी निवेश के खिलाफ खुदरा व्यापारियों, फेरी-ठेला-खोमचे वालों, व्यापार संगठनों और वामपन्थी संगठनों सहित अन्य कई जनसंगठनों ने जबरदस्त विरोध प्रदर्शन किया। दिल्ली में वाणिज्य मन्त्रालय की तरफ कूच करते प्रदर्शनकारियों को पुलिस ने हिरासत में ले लिया। यह प्रदर्शन इस बात का संकेत है कि भारत में वालमार्ट का पाँव पसारना निरापद नहीं।

कण्डी सड़क आन्दोलन: जल-जंगल-जमीन का सवाल

■ गिरीश

उत्तराखण्ड में स्थित, रामनगर से कालागढ़-कोटद्वार होकर हरिद्वार तक जाने वाली कण्डी सड़क को आम यातायात के लिए खोलने, कार्बेट नेशनल पार्क से लगे इलाकों में फसलों, मवेशियों और गाँववासियों की वन्य जीवों से सुरक्षा करने, वन्य जन्तुओं की रक्षा के नाम पर जनता का उत्पीड़न बन्द करने तथा जंगल से पशुओं के लिए चारा और जलावन की लकड़ी लाने जैसे परम्परागत हक-हकूक की पुनर्बहाली के लिए चल रहा आन्दोलन कई उतार-चढ़ावों के बावजूद अभी भी जारी है।

आजादी से पहले सब-माउण्टेन रोड के नाम से जानी जाने वाली कण्डी सड़क सैकड़ों सालों से कुमाऊँ और गढ़वाल मण्डल को जोड़ने वाला, स्थानीय लोगों, तीर्थयात्रियों और व्यापारियों के लिए सुगम और छोटा मार्ग रहा है। इसके कार्बेट नेशनल पार्क की सीमा से गुजरने वाले कच्चे हिस्से का डामरीकरण कर दिया जाये तो यह सड़क काफी सुविधाजनक हो जायेगी। स्थानीय जनता की लम्बे समय से यह माँग रही है। 2001 में सरकार ने डामरीकरण की योजना को स्वीकृति दे दी। इस योजना को रुकवाने के लिए गैरसरकारी संगठनों और स्वनामधन्य पर्यावरणविदों ने एड़ी-चोटी का पसीना एक कर दिया और इसकी जगह उत्तरप्रदेश से होकर गुजरने वाली एक लम्बी घुमावदार सड़क का वैकल्पिक प्रस्ताव दिया। उनका तर्क था कि इस सड़क के डामरीकरण और यातायात के लिए खोले जाने से पर्यावरण को नुकसान होगा और वन्य जीवों के लिए खतरा पैदा हो जायेगा। लेकिन इस नये प्रस्ताव के पीछे की सच्चाई कुछ और ही है। दरअसल जिन इलाकों से होकर प्रस्तावित नयी सड़क गुजरेगी उसपर बड़े लोगों की जमीनें हैं और पूरी सम्भावना है कि उनकी कीमत सड़क बनाते ही रातोंरात आसमान छूने लगे। उन्हीं के स्वार्थों की पूर्ति के लिए पर्यावरणवादियों और एन.जी.ओ. को कण्डी कड़क निर्माण के खिलाफ खड़ा किया गया। केन्द्र की तत्कालीन राजग सरकार और उत्तराखण्ड की कांग्रेस सरकार ने उनके इस नये प्रस्ताव को तुरन्त मान लिया। वैश्वीकरण के इस दौर में पूँजीपतियों की नग्न और खुली हिमायत करने वाली सरकारों से भला और क्या उम्मीद की जा सकती है। साथ ही उन पर्यावरणविदों और संस्थाओं ने सर्वोच्च न्यायालय से भी पर्यावरण के नुकसान का हवाला देते हुए 146 किमी की पुरानी छोटी सड़क के बजाय 194 किमी लम्बी नयी प्रस्तावित सड़क के पक्ष में फैसला करवा लिया। सर्वोच्च न्यायालय ने इस मामले में वर्षों से संघर्षरत स्थानीय लोगों का पक्ष सुने बिना ही नवम्बर 2005 में पर्यावरणविदों और स्वयंसेवी संगठनों के पक्ष में फैसला दे दिया।

सर्वोच्च न्यायालय के इस फैसले के बाद कण्डी सड़क की माँग को लेकर फिर से आन्दोलन ने जोर पकड़ना शुरू किया। 8 दिसम्बर को आन्दोलनकारी नेताओं ने उत्तराखण्ड के मुख्यमन्त्री से मुलाकात करके इस समस्या से उन्हें अवगत कराया जिसका कोई नतीजा नहीं निकला।

आन्दोलन के नेताओं के अनुसार मुख्यमन्त्री ने उन्हें बताया कि देश-विदेश के बड़े-बड़े लोग इस पार्क में घूमने आते हैं। साथ ही, यह केन्द्र के अधिकार क्षेत्र में आता है। मैं इसमें कुछ नहीं कर सकता।

इस घटना के बाद आन्दोलन में तेजी आयी। कुछ नेताओं की व्यक्तिगत और सीमित कार्रवाइयों की जगह स्थानीय जनसंगठनों और आस-पास के गाँव के लोगों की आन्दोलन में भागेदारी बढ़ने लगी। जुलूस, धरना, कार्बेट पार्क के प्रवेश द्वारों को बन्द करना और आम सभा का सिलसिला लगातार चलता रहा जिसने इस सवाल को लोगों तक ले जाने में मदद की। आन्दोलन अब केवल सड़क निर्माण की माँग तक सीमित नहीं रहा। जैसे-जैसे आन्दोलन में जनता की हिस्सेदारी बढ़ती गयी, वैसे-वैसे जनता की अपनी माँगें भी आन्दोलन में जुड़ती चली गयीं। प्रगतिशील जनपक्षधर संगठनों और व्यक्तियों के प्रयास से कार्बेट पार्क के झरना गेट पर

आयोजित एक जनसभा में पहली बार ग्रामीणों ने जंगल और जमीन से जुड़े सवाल उठाये। गाँव से आये वक्ताओं ने कहा कि जंगल से बाहर आकर जानवर हमारे खेत, हमारी फसलों और हमारे पशुओं को निशाना बना रहे हैं। हमे जंगल से ईंधन की लकड़ी लाने से रोक दिया गया है। हमारे पशु अब जंगल में जाकर घास नहीं चर सकते। जंगल के कर्मचारी उन्हें रोकते हैं और हमारे ऊपर जुर्माना करते हैं। हमें इन बातों को भी आन्दोलन में शामिल करना होगा क्योंकि इस इलाके में जब हमारी जीविका चलाना और यहाँ रहना दूभर हो जायेगा और हम पलायन कर जायेंगे तो कण्डी सड़क के खोले जाने से हमें क्या लाभ होगा? कई प्रगतिशील जनपक्षधर संगठनों के वक्ताओं ने उक्त मुद्दे पर ग्रामीणों की बातों को न्यायसंगत बताते हुए उन्हें आन्दोलन की माँगों में शामिल करने का समर्थन किया।

4 जनवरी 2006 को आन्दोलनकारी नेताओं की बैठक में इस आन्दोलन की माँग को लेकर विवाद खड़ा हुआ। बैठक में एक पक्ष मोटर मार्ग की माँग के साथ-साथ जंगली जानवरों से सुरक्षा और उनके नाम पर ग्रामीण जनता का उत्पीड़न बन्द करने की माँग को शामिल करने का हिमायती था। जबकि दूसरा पक्ष आन्दोलन को सिर्फ सड़क खुलवाने तक सीमित रखना चाहता था। मतभेद गहरा गया और दूसरे पक्ष के नेताओं ने इस बैठक का बहिष्कार कर दिया। आगे चलकर उन्होंने खुद को इस आन्दोलन से अलग कर लिया। बाकी बचे लोगों ने ''रामनगर-कालागढ़ -कोटद्वार मोटर मार्ग संयुक्त संघर्ष समिति'' नामक एक नया संयुक्त मोर्चा तैयार किया और इस आन्दोलन को व्यापक आबादी तक ले जाने तथा प्रभावित गाँवों के निवासियों को इन समस्याओं के प्रति जागरूक करने के लिए सघन कार्यक्रम चलाने का निर्णय लिया। प्रत्येक प्रभावित गाँव से एक या दो व्यक्तियों को प्रतिनिधि के तौर पर संघर्ष समिति में शामिल करने का निर्णय लिया गया।

21 मार्च को करीब 500-600 लोगों ने नैनीताल जाकर कमिश्नर का घेराव किया।

24 अप्रैल को संयुक्त संघर्ष समिति के बैनर तले अभूतपूर्व रूप से 'रामनगर' बन्द किया गया।

23 मई 2006 को करीब 600-700 लोगों ने उत्तराखण्ड की राजधानी देहरादून में गाँधी पार्क से मुख्यमन्त्री निवास तक जुलूस निकाला। आन्दोलनकारी वहाँ ज्ञापन देना चाह रहे थे लेकिन मुख्यमन्त्री अन्त तक आन्दोलनकारियों के बीच नहीं आये। आन्दोलनकारियों ने पेड़ के ऊपर ज्ञापन चिपका दिया और नारे लगाते हुए वापस लौट गये।

इसके बाद 18 से 21 अगस्त 2006 तक क्षेत्रीय वन चौकियों पर लोगों ने एक दिन का धरना दिया और प्रदर्शन किया।

शासन-प्रशासन पर जब इन कार्यक्रमों का कोई प्रभाव नहीं पड़ा तो संघर्ष समिति ने 23 सितम्बर 2006 को नैनीताल में होने वाली कांग्रेसी मुख्यमन्त्रियों की बैठक के दौरान, जिसमें सोनिया गाँधी और मनमोहन सिंह भी आने वाले थे, प्रदर्शन करने का फैसला किया। प्रशासन के डराने-धमकाने के बावजूद भारी संख्या में लोग नैनीताल गये। करीब 150 लोगों को पुलिस ने गिरफ्तार करके जेलों में डाल दिया। लेकिन इन दमनात्मक कार्रवाइयों के बावजूद आन्दोलनकारियों का मनोबल तोड़ा नहीं जा सका। आन्दोलनकारियों ने 5 अक्टूबर 2006 से ग्रामीणों के साथ कार्बेट नेशनल पार्क के खारा गेट को घेर कर पर्यटकों की आवाजाही रोक दी। अब प्रशासन ने आन्दोलन को भीतर से तोड़ने का कुचक्र शुरू कर दिया। रिसोर्ट मालिकों, स्थानीय जिप्सी चालकों, नेचर गाइड आदि को व्यवसाय चौपट होने का भय दिखलाकर आन्दोलन से अलग हुए नेताओं की अगुवाई में रातों-रात ''रोजगार बचाओ संघर्ष समिति'' गठित की गयी। लेकिन आन्दोलनकारियों ने उनके सामने आन्दोलन को समर्थन देने का सवाल खड़ा कर दिया। प्रशासन की कुटिल चालों को नाकाम करते हुए आन्दोलन फिर एकजुट हो गया क्योंकि 'रोजगार बचाओ संघर्ष समिति' ने संयुक्त संघर्ष समिति को अपना समर्थन दे दिया।

प्रशासन के हथकण्डे विफल होते देख प्रदेश के मुख्य सचिव ने आन्दोलनकारियों को वार्ता के लिए देहरादून बुलाया जिसको संघर्ष समिति ने स्वीकार किया। रामनगर में दो दर्जन ट्रैक्टर-ट्रॉलियों, दर्जनों दो पहिया वाहनों के साथ हजारों लोगों की 'वाहन रैली' निकालकर अपनी एकजुटता का प्रदर्शन किया।

इस तरह कई उतार-चढ़ाव के बावजूद आन्दोलन आज भी जारी है। लेकिन सवाल यह है कि सरकार द्वारा व्यक्तिगत बातचीत और प्रशासनिक-शासकीय वार्ताओं तक में सैद्धान्तिक रूप से मोटर मार्ग खोलने और जंगल पर आधारित जीवन को प्रमुखता देने की बात स्वीकारने के बावजूद यह आन्दोलन अभी अपनी सफलता से दूर क्यों है?

84% वन क्षेत्र वाले उत्तराखण्ड राज्य में निरन्तर कड़े होते जा रहे वन-कानूनों, औद्योगिक क्षेत्र 'सिडकुल' और जल-विद्युत परियोजनाओं को लेकर आम जनता में असन्तोष बढ़ता जा रहा है। पूँजीपतियों, नौकरशाहों, कुल मिलाकर ''इण्डिया वालों'' की अय्याशी के अड्डों के रूप में ईको-टूरिज्म, अभ्यारण्य, नेशनल पार्क और बायोस्फीयर रिजर्व के नाम पर आज उत्तराखण्ड के कुल भौगोलिक

क्षेत्रफल का लगभग 22% भूभाग संरक्षित दायरे में आ चुका है जिसमें 6 नेशनल पार्क और करीब इतने ही अभ्यारण्य बनाये गये हैं तथा 18 संरक्षित क्षेत्र अभी प्रस्तावित हैं।

चाहे रामनगर के पास स्थित जिम कार्बेट नेशनल पार्क के इर्द-गिर्द बसे सैकड़ों गाँव और उसकी आबादी हो या अल्मोड़ा जनपद में स्थित विन्सर वन्य जीव विहार या पिथौरागढ़ का एस्कॉर्ट कस्तूरा वन विहार, हर जगह जंगलों पर निर्भर ग्रामीणों के जंगल से जलावन की लकड़ी, पशुओं का चारा, मकान (छप्पर) बनाने की लकड़ी, पशुओं के लिए घास आदि लाने के परम्परागत अधिकारों पर रोक लगा दी गयी है। जंगल-अधिकारियों द्वारा ग्रामीणों की दराँती, कुल्हाड़ी छीनने और उनके उत्पीड़न की घटनाएँ आम हो गयी हैं। जंगली जानवर किसानों की फसल बरबाद कर देते हैं, पालतू पशुओं को घायल कर देते हैं। कितने ही ग्रामीण भी इनके हमले से हताहत हो चुके हैं। ग्रामीण इन वन-जन्तुओं से अपनी आत्मरक्षा भी नहीं कर सकते। वन्य जीव रक्षा के नाम पर सीधे-सरल गाँववासियों का निर्दयतापूर्वक उत्पीड़न किया जा रहा है।

जिम नेशनल पार्क कभी 330 वर्ग किमी में फैला हुआ था, जो अब बढ़कर 13,000 वर्ग किमी में फैल चुका है। योजना इसे 20,000 वर्ग किमी क्षेत्र में फैलाने की है। इसके लिए 1990 के शुरू में सुनियोजित तरीके से कुछ पर्यावरणवादियों को खड़ा किया गया और कुछ एन.जी.ओ. बनाये गये। वन क्षेत्र के समीपवर्ती गाँवों में जाकर इन्होंने गाँव वालों को ईंधन के लिए गैस-सिलिण्डर, छप्पर के लिए टीन, सोलर ऊर्जा आदि का लालच दिया। एक गाँव में 2 सोलर ऊर्जा उपकरण, 12 सिलिण्डर और कुछ चारा काटने की मशीनें आबण्टित की गयीं।

ईको नामक एक नया एन.जी.ओ. बनाया गया जिसने जिम नेशनल पार्क के सीमावर्ती गाँवों में उक्त कार्रवाइयों का बीड़ा उठाया। ग्राम प्रधान को इसका अध्यक्ष बनाया गया और रेंजर को सचिव।

गाँव के ही पाँच व्यक्तियों को उसका सदस्य बनाया गया। सामानों के आबण्टन के दौरान ग्रामीणों से उनके हस्ताक्षर या अँगूठानिशान युक्त सादा स्टाम्प ले लिया गया था। पहले जिन्हें मुफ्त में देने की बात की गयी थी, उन्हीं सामानों की अब कीमत वसूलने की कोशिश हो रही है।

साम, दाम, दण्ड, भेद– यही है शासन की नीति। देश की विपुल प्राकृतिक सम्पदा को अमीरों के लिए आरक्षित करने की मुहिम में जल-जंगल-जमीन अब पूँजीपतियों के खास निशाने पर हैं। वे बहाना चाहे पर्यावरण का बनायें या विकास का, उनका एक मात्र इरादा इन प्राकृतिक संसाधनों पर आम जनता का नैसर्गिक अधिकार खत्म करके उन पर कब्जा करना है।

सरकारों का यही काम रह गया है–नियम कानून बनाकर सभी संसाधनों को जनता के हाथ से छीनना और पूँजीपतियों को सौंप देना और आन्दोलनकारियों का काम है इस मुद्दे को व्यापक जनता में ले जाना। उनके भ्रमों का निवारण करते हुए अपने हक के लिए– जल, जंगल, जमीन के लिए– दीर्घकालिक संघर्ष में उतरने के लिए उन्हें जागृत, गोलबन्द और संगठित करना।

भ्रष्ट राजनीतिक पार्टियों के स्वार्थी नेताओं की अड़ंगेबाजी, प्रशासन के दमनात्मक रुख और आन्दोलनकारियों में अनुभव की कमी के बावजूद संघर्ष के नये-नये तरीके निकालता, अपनी कमियों से सीखता यह आन्दोलन आज भी जारी है।

रामनगर के आस-पास की जनता और जनसंगठनों द्वारा चलाया जा रहा यह आन्दोलन सरकार की नयी गुलामी की नीतियों के खिलाफ देशभर में चल रहे आन्दोलन की एक कड़ी के रूप में ही देखा जा सकता है। इस आन्दोलन की सफलता के लिए आस-पास की व्यापक आबादी को अधिकाधिक संख्या में शामिल करना जरूरी होगा। स्वनामधन्य नेताओं का पिछलग्गूपन छोड़कर जनता ने आन्दोलन में तो सक्रिय हिस्सेदारी शुरू कर दी है लेकिन इतने से ही काम नहीं चलेगा। उसे अपनी समझदारी, पहलकदमी और त्याग भावना को बढ़ाना होगा। निश्चय ही इन कामों में नेताओं और संगठनों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है लेकिन अंतत: यह लड़ाई वहाँ के मेहनतकश गाँववासियों की लड़ाई है और वे ही इसे अंजाम तक पहुँचाने में समर्थ हैं। ▣

स्वयंसेवी संगठन: एक परिचय

व्यवस्था के क्रूर और अमानुषिक चेहरे पर
भलमनसाहत और मानवीयता का लेप चढ़ाते हैं ये।
सर से पाँव तक शस्त्र सज्जित
दुश्मन के आगे
विनय कातर याचना में
निहत्था खड़ा होने का
उपदेश देते हैं।
असन्तोष और आक्रोश से
सुलगते लोगों के मन पर
ये सहनशीलता और धैर्य की
शीतल फुहार छोड़ते हैं।
भीख की झोली
इनका झण्डा है
जिसे ये जुलूस में शामिल
लोगों के हाथों में
थमा देना चाहते हैं।
ये इण्टरनेशनल फकीर हैं
इण्टरनेशनल लुटेरों के सहोदर।

बैंक कर्मियों का आन्दोलनः जरूरत है सीमाओं से आगे जाने की

■ समदर्शी

सार्वजनिक क्षेत्र के सभी बैंकों और निजी क्षेत्र के कुछ बैंकों के लगभग 10 लाख कर्मचारी और अधिकारी अपनी नौ बैंक यूनियनों के साझा मंच यू.एफ.बी.यू. (यूनाईटेड फोरम ऑफ बैंक यूनियन्स) के बैनर तले आर्थिक माँगों से ऊपर उठकर अपने अस्तित्व की लड़ाई लड़ने को मजबूर हुए। मुख्यत: निजीकरण की नीतियों के खिलाफ 27 अक्टूबर 2006 को उनकी एक दिवसीय हड़ताल काफी हद तक सफल रही। हालाँकि इसका सरकार, बैंक मालिक और प्रबन्ध-तन्त्र पर कोई प्रभाव नहीं हुआ।

'90 के दशक के शुरुआत से ही उदारीकरण, वैश्वीकरण, निजीकरण की नीतियों के चलते बैंक यूनियनें वेतन-भत्तों की लड़ाई के साथ-साथ जब-तब अपने अस्तित्व को बचाये रखने के लिए भी आवाज उठाती रही हैं। शुरुआती दौर में एन.बी.एफ.सी. (नॉन बैंकिग फाइनेंशियल कम्पनीज) पर रोक लगाने के लिए वे राष्ट्रव्यापी हड़ताल पर गये थे। सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों में सरकारी हिस्सेदारी को 51% से कम करने की सरकार की मंशा के खिलाफ भी हड़तालें की गयीं। बहुत पहले तो कम्प्यूटरीकरण और मशीनीकरण के खिलाफ भी बैंक कर्मियों ने हड़ताल की थी। तब से अब तक नयी आर्थिक नीतियों के सोलह वर्ष बीत चुके हैं। सरकार लगातार इन नीतियों को आगे बढ़ा रही है। सभी बैंकों में कम्प्यूटरीकरण व अन्य मशीनीकरण भी भारी पैमाने पर लागू किया गया है। कम्प्यूटर, ए.टी.एम., नोट काउण्टिंग मशीन, नोट सॉर्टिंग मशीन, पैकेट-बण्डल स्टिचिंग मशीन, बैंकिंग सॉफ्टवेयर, इण्टरनेट, फैक्स तथा अन्य कई एडवांस तकनीक पर आधारित मशीनों पर इस दौरान सभी बैंको ने कई लाख करोड़ रुपये खर्च कर दिये हैं जो इनके मुनाफे का एक बड़ा हिस्सा है। कहने की जरूरत नहीं कि इस खर्चे का एक बहुत बड़ा भाग सीधे-सीधे विदेशी कम्पनियों को दिया गया है और कुछ हिस्सा देशी बड़े उद्योगपतियों, बड़े अधिकारियों, बड़े नेताओं और दलालों की जेब में भी गया है। वैश्वीकरण का खुला सच यही है-- जनता की गाढ़ी कमाई देशी-विदेशी पूँजीपति मिलकर लूटें और नाम दिया जाय इसे विकास का।

यह एक विचारणीय प्रश्न है कि बैंक यूनियनों ने इन नीतियों का बार-बार विरोध किया, लेकिन इन राष्ट्र-विरोधी व आम जन-विरोधी नीतियों के खिलाफ अपने संघर्षों को क्यों वे दीर्घकालिक संघर्षों के रूप में जारी नहीं रख पाये और क्यों उन्हें हर बार असफलता हाथ लगी? किसी दौर में मशीनीकरण का विरोध करने वाली बैंक-यूनियनें पिछले वेतन-समझौते में खुद ही सरकार को यह अधिकार दे चुकीं हैं कि वह बैंकों में कहीं भी, कभी भी, किसी भी प्रकार का मशीनीकरण लागू कर सकती है। फिर भला इन मशीनों के द्वारा क्या रोजगार का विस्थापन नहीं होगा?

इस हड़ताल (27 अक्टूबर 2006) के सन्दर्भ में भी यू.एफ.बी.यू. की भविष्य निधि के स्थान पर पेंशन सुविधा की एकमात्र आर्थिक माँग के अतिरिक्त शेष सभी माँगें निजीकरण के विरोध में ही हैं। उनकी माँग है कि पिछले एक दशक में व्यावसायिक कार्य तो कई गुना बढ़ गया है लेकिन कर्मचारियों और अधिकारियों की संख्या पहले के मुकाबले लगभग डेढ़-दो लाख तक घट गयी है, इसलिए इसे सीधी भर्ती से पूरा किया जाय। दूसरी माँग है कि बैंकों के बहुत से कार्य सरकार द्वारा प्राइवेट कम्पनियों से करवाये जाने सम्बन्धी आदेश को तुरन्त वापस ले लिया जाय। बैंकों की क्लीयरिंग व्यवस्था का निजीकरण आज सरमायादारों और प्रबन्धकों के निशाने पर है। तीसरी माँग, बैंकों के आपस में विलय सम्बन्धी प्रस्ताव और बैंकों के बोर्ड ऑफ डायरेक्टर्स में पूँजीपतियों की पहुँच बढ़ाने सम्बन्धी कानून की वापसी से सम्बन्धित है।

पिछले कुछ समय से सरकार और न्याय-व्यवस्था के द्वारा ट्रेड-यूनियन अधिकारों के खिलाफ बहुत से फैसले सामने आये हैं। यूनियनों ने इन अधिकारों पर हमले के खिलाफ भी मोर्चा खोला है। बैंकों में मृतक आश्रितों को अनुकम्पा के आधार पर अन्य संस्थानों की ही तरह नौकरी पर रखा जाता रहा है। लेकिन अब यह सुविधा सरकारी आदेश से बन्द कर दी गयी है। इन सभी माँगों पर गम्भीरता से विचार किया जाये कि आखिर इनकी नौबत ही क्यों आयी तो हमारे देश की राजनीतिक व्यवस्था का सच खुलकर सामने आ जाता है। सरकार में चाहे कोई भी राजनीतिक दल हों, चाहे समर्थन अन्दर से हो या बाहर से, ये सभी दल वैश्वीकरण की

नीतियों को इस देश में और इस देश के बैंकों में भी लागू करने पर अपनी सहमति दे चुके हैं। इन्हें लागू करने के तरीके और समय को लेकर इन दलों में कुछ फर्क हो सकता है। फिर भला इन नौ बैंक यूनियनों की पैतृक यूनियनें (विभिन्न राष्ट्रीय ट्रेड यूनियन संघ जैसे– सीटू, एटक, इण्टक, बीएमएस) यू.एफ.बी.यू. को एक सार्थक क्रान्तिकारी संघर्ष के रास्ते पर क्यों कर ले जायेंगी जबकि पैतृक यूनियनों की डोर संसद के अन्दर बैठने वाले राजनीतिक दलों के हाथों में हो। पिछले कई दशकों का बैंक कर्मियों के संघर्षों का इतिहास इसी रोशनी में समझा जा सकता है। एक या दो दिन की हड़ताल की यही सच्चाई है और यही भविष्य भी, जो पिछले सोलह वर्षों से बैंक कर्मियों को बार-बार चेतावनी देता आ रहा है।

जब तक बैंक कर्मी अपने अस्तित्व और अधिकारों के लिए संघर्षों की बागडोर इन राजनीतिक दलों से छीनकर स्वयं अपने हाथों में नहीं ले लेंगे और अपने नेताओं पर लगातार संघर्षों के लिए दबाव नहीं बनायेंगे, तब तक बैंक कर्मियों का अस्तित्व निरन्तर खतरे में बना रहेगा। ऐसा किया जा सकता है और किया भी गया है। इसी वर्ष मई माह में स्टेट बैंक कर्मियों ने, जिनकी यूनियनें (एम.सी.बी.ई. तथा एस.बी.आई.ओ.ए.) किसी भी राजनीतिक दल से सम्बद्ध नहीं हैं, स्वयं पहल करते हुए आठ दिन की हड़ताल के बाद पेंशन सम्बन्धी मुद्दे पर सफलता प्राप्त की थी। यह स्टेट बैंक के आम कर्मचारियों और अधिकारियों का उनके यूनियन नेताओं पर प्रबल दबाव ही था कि वे इस हड़ताल को अनिश्चित काल पर ले गये और सफलता के बाद ही वापस लौटे। हालाँकि इनके नेताओं ने भी सामान्य कर्मचारियों की तरह पुरजोर हिम्मत दिखायी होती तो यह पेंशन समझौता और भी अधिक सम्मानजनक और लाभकारी बन सकता था।

1991 में नयी आर्थिक नीति लागू होने के बाद से पिछले 16 वर्षों के भीतर भारत के बैंकिंग उद्योग में काफी उथल-पुथल और फेर-बदल हुआ है। आज भी इस बात की जी-तोड़ कोशिश हो रही है कि इसे पूरी तरह देशी-विदेशी सरमायादारों की जरूरतों के मुताबिक ढाला जाय, उनकी मुनाफे की हवस पूरी करने का जरिया बना दिया जाये। साथ ही बैंककर्मियों को भी बेहतर तनख्वाहों वाले गुलामों में बदल दिया जाये। उनके अधिकारों को एक-एक कर छीन लिया जाये। इस नयी परिस्थिति में बैंक कर्मी आर्थिक माँगों तक सीमित रहकर अपना अस्तित्व भी कायम नहीं रख पायेंगे, यह बात यूनियन के नेता भी समझते हैं। इसीलिए उन्होंने अपने माँगपत्र में राजनीतिक और नीतिगत मुद्दों को शामिल करना शुरू कर दिया है। लेकिन सार्वजनिक क्षेत्र की प्रधानता के दौर में यूनियनों में जो सुविधापरस्ती आयी है, संघर्षशीलता में जो कमी आयी है, इण्डियन बैंक एसोशियेशन के आलीशान दफ्तर में बैठकर वार्ता की मेज पर अपनी माँगें मनवाने की जो आदत बनी हुई है, उस ढर्रे पर चलकर आज उन्हें कुछ भी नहीं मिलने वाला। वैश्वीकरण, निजीकरण के विरोध और लम्बे संघर्षों के बाद जीत तभी सुनिश्चित हो पायेगी जब आम कर्मचारी अपनी-अपनी यूनियन में सक्रिय होकर साहस के साथ संघर्षों को आगे ले जाने की बात पर डटा रहेगा तथा चन्द नेताओं के पीछे चलने की बजाय अपनी समझदारी और पहलकदमी बढ़ायेगा। तभी ट्रेड-यूनियन आन्दोलन में नयी जान आयेगी और केवल तभी पूँजीवादी राजनीतिक दलों के नियन्त्रण से मुक्त होकर बैंककर्मी ट्रेडयूनियन आन्दोलन को आम मजदूर-कर्मचारी और देश के हित में आगे बढ़ा पायेंगे। यह कार्रवाई देश की अन्य यूनियनों के लिए भी क्रान्तिकारी मिसाल का काम करेगी। यह काम कठिन है और काफी धैर्य व साहस की माँग करता है। लेकिन यही एक मात्र सही रास्ता है। अनुष्ठान की तरह हड़ताल करने मात्र से आज की नयी परिस्थितियों का मुकाबला नहीं किया जा सकता। ▣

मेहनतकशों पर हमला जारी

जे.के. सिंथेटिक्स लिमिटेड के एक कर्मचारी की बर्खास्तगी के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने अपने एक फैसले में कहा है कि **''अगर गैर कानूनी तरीके से बर्खास्त कर्मचारी अदालत के आदेश पर बहाल होता है तो भी वह अपना पिछला वेतन पाने का स्वतः हकदार नहीं हो सकता।''** न्यायालय ने साफ शब्दों में कहा कि इस विवादित अवधि के वेतन को लेकर **''नजरिये''** में पिछले दो दशक में काफी बदलाव आया है। दो न्यायाधीशों की खण्डपीठ ने साफ शब्दों में कहा है कि, **''बाजार नियन्त्रित अर्थव्यवस्था, भूमण्डलीकरण, निजीकरण और आउट सोर्सिंग के दौर में सरकार के नीतिगत फैसलों में आये बदलाव के अनुरूप ही अदालत का यह फैसला है।''** अदालत ने कहा कि वह इस तरह के तमाम फैसलों से मौजूदा माहौल में औद्योगिक सम्बन्धों के मामले में पुराने रुख और नये तेज औद्योगिक विकास के मकसद के बीच एक सन्तुलन कायम करने की कोशिश कर रही है। इस लिहाज से यह धारणा एक गलतफहमी है कि निलम्बित या बर्खास्त कर्मचारी की सेवा बहाली के निर्देश दिये जाते हैं तो सेवा की निरन्तरता और उसके परिणामस्वरूप लाभ मिलने ही चाहिए।

सुप्रीम कोर्ट का यह फैसला न्यायपालिका को आर्थिक नवउपनिवेश-वादी उत्पादन प्रणाली के अनुरूप ढाले जाने का स्पष्ट और ताजा उदाहरण है।

देश के भीतर विदेश बसाने के खिलाफ जनता सड़कों पर

■ उज्ज्वला/तेजपाल

"सिंगूर आज संघर्ष का प्रतीक है। देश के जिस हिस्से में भी कृषि योग्य जमीन जबरन या गैर कानूनी ढंग से अधिग्रहित की जा रही है, उसके विरोध में संघर्ष जरूरी है।" –महाश्वेता देवी

क्या वास्तव में सेज (विशेष आर्थिक क्षेत्र) का यह मॉडल ही, जिसमें बड़े पैमाने पर लोगों का विस्थापन और पीड़ा-व्यथा अन्तर्निहित है, विकास का एकमात्र रास्ता है? यदि पश्चिम बंगाल की सरकार यही सोचती है, तो उसे यह स्वीकारना होगा कि पूरे राज्य में नन्दीग्राम की पुनरावृत्ति इसका लाजिमी नतीजा होगी। –सुमित सरकार

सरकारने खेती और बागवानी के लिए मुझे 6 एकड़ जमीन दी थी। अब वह मेरी और अलीबाग इलाके के अन्य 50 हजार लोगों की जमीनें छीन रही है ताकि उसे इण्डिया के साँड़ों को दे सके।

केन्द्रीय और राज्य सरकारें सबसे बड़ी दलाल बन गयी हैं। –एडमिरल रामदास,
वीर चक्र से सम्मानित
(सेज के खिलाफ 22 गाँवों
की संघर्ष समिति के सदस्य)

विशेष आर्थिक क्षेत्र (एस.इ.जेड.या सेज) के नाम पर साम-दाम-दण्ड-भेद की नीति अपनाकर किसानों की जमीन हड़पने और विरोध करने पर उन्हें पुलिस की लाठी गोली का शिकार बनाने का जो सिलसिला पिछले एक साल से देश के विभिन्न इलाकों में चल पड़ा था, वह पश्चिम बंगाल के सिंगूर और नन्दीग्राम में अपने चरम पर पहुँच गया। जनवरी के पहले हफ्ते में नन्दीग्राम रणक्षेत्र में बदल गया। इण्डोनेशिया की कम्पनी सलेम ग्रुप के लिए 25,000 एकड़ जमीन के अधिग्रहण की अधिसूचना जारी होने की खबर सुनते ही नन्दीग्राम और आस-पास के कई गाँवों की जनता में जबरदस्त आक्रोश भड़क उठा। उन्होंने अपनी जमीन हड़पे जाने के खिलाफ प्रतिरोध शुरू कर दिया। सड़कों को काटकर और एक पुल को उड़ाकर पूरे इलाके की नाकेबन्दी, अधिग्रहण के पक्ष और विपक्ष में परम्परागत हथियारों से लैस जनता का आपस में खूनी संघर्ष! 6-7 जनवरी की पूरी रात बम धमाकों, हिंसक झड़पों और खून-खराबों में गुजरा। गृहयुद्ध जैसी स्थिति। 6 लाशें गिरीं। दर्जनों लोग घायल हुए। पुलिस को इलाके में घुसने नहीं दिया गया। दो दिन बाद इलाके की घेराबन्दी तोड़कर भारी संख्या में पुलिस के जवान गाँवों में घुसे। उसी दिन बंगाल के मुख्यमन्त्री ने पूर्वी मिदनापुर जिला प्रशासन को आदेश दिया कि जमीन अधिग्रहण के लिए जारी अधिसूचना को फाड़ कर रद्दी की टोकरी में फेंक दे।

सिंगूर और नन्दीग्राम ने सत्ता के गलियारों, विभिन्न सरकारी मन्त्रालयों, बुद्धिजीवियों और योजनाकारों के बीच शुरू से ही सेज को लेकर चलने वाले नपुंसक विरोधों और दोस्ताना वाद-विवाद को प्रखरतम रूप में सतह पर ला दिया। इन संघर्षों में पूँजीपतियों और उनकी सरकार को बता दिया है कि उनके मंसूबे शान्तिपूर्ण ढंग से पूरे नहीं हो सकते और उन्हें बैठ कर सोचने के लिए मजबूर कर दिया है।

नन्दीग्राम की घटना के तुरन्त बाद ही नई दिल्ली में नये सेज प्रस्तावों को स्वीकृति देने वाली कमेटी की बैठक प्रधानमन्त्री के आदेश से अनिश्चित काल के लिए रद्द कर दी गयी और सरकार ने सेज पर पुनर्विचार करने की घोषणा की।

आखिर यह सेज है क्या बला? जिसके लिए उत्तरप्रदेश के दादरी से पंजाब के बरनाला होते हुए महाराष्ट्र के रायगढ़,

हरियाणा के गुड़गाँव, उड़ीसा के कलिंगनगर तथा बंगाल के सिंगूर और नन्दीग्राम तक देश के कई इलाकों के लोग सड़कों पर उतर रहे हैं! क्या यह सिर्फ जमीन हड़पने तक सीमित है या इसमें कुछ और भी गड़बड़झाला है? सरकार यदि विकास के लिए ये कदम उठा रही है तो जनता इसका इतना उग्र विरोध क्यों कर रही है और सरकार उनके विरोध का बर्बरतापूर्वक दमन क्यों कर रही है?

विशेष आर्थिक क्षेत्र जिसे अंग्रेजी में स्पेशल इकॉनॉमिक जोन और संक्षेप में सेज कहा जाता है, हमारे देश के शासकों का एक ऐसा इलाका बसाने का फैसला है जहाँ देश-विदेश के पूँजीपतियों को हर तरह की विशेष सहूलियत देकर उद्योग-धन्धे और अन्य व्यवसाय शुरू करने के लिए आकर्षित किया जायेगा। देश भर में फैले पुराने औद्योगिक इलाकों से यह हर मायने में अलग होगा। यहाँ चौबीसों घण्टे बिजली-पानी, बेहतर से बेहतर सड़कें और हर तरह की सुविधायें होंगी, जैसे रहने के लिए आलीशान बंगले, स्कूल, अस्पताल, गोल्फ के मैदान, शॉपिंग माल, टेनिस कोर्ट, स्विमिंग पूल, होटल, रेस्टोरेण्ट और विलासिता के ऐसे-ऐसे साधन उस विशेष क्षेत्र में उपलब्ध होंगे जैसे देश भर में और कहीं नहीं होंगे। मजदूरों के साथ वे चाहे जो भी सुलूक करें, चाहे जितना कम मजदूरी दें, चाहे जितना शोषण करें, उनका कोई कुछ नहीं बिगाड़ पायेगा क्योंकि वहाँ कोई श्रम कानून लागू नहीं होगा।

यह देश के अन्य हिस्सों और आम आबादी से बिल्कुल अलग इलाका बसाने का, देश के भीतर कई छोटे-छोटे विदेशी एनक्लेव बसाने का फैसला है। पहले भी हमारे देश में निर्यात प्रवर्धन क्षेत्र के नाम से ऐसे कुछ विशेष इलाके बसाये गये थे जहाँ निर्यात बढ़ाने के नाम पर उद्योगों को हर तरह की सहूलियत और छूट दी गयी थी। सेज उसी की अगली कड़ी है।

सबसे पहले भाजपा की गठबन्धन सरकार ने 2000 में सेज के बारे में नीतिगत फैसला किया था जिसे अमली जामा पहनाते हुए सोनिया-मनमोहन की सरकार ने 2005 में विशेष आर्थिक क्षेत्र कानून बनाया और फरवरी 2006 में अधिसूचना जारी कर दी। इसके बाद तो जैसे देशी-विदेशी पूँजीपतियों में सेज हथियाने की होड़ लग गयी। उन्होंने देखते-देखते सरकार के सामने सेज स्थापित करने के सैकड़ों प्रस्ताव रख दिये। 2006 के अन्त तक 10 महीने के भीतर-भीतर 237 सेज प्रस्ताव मंजूर कर लिये गये जिसके लिए 1,20,000 हेक्टेयर (3,00,000 एकड़) जमीन चाहिए। इनमें से कुछ जमीनें कब्जायी जा चुकी हैं और कुछ को लेकर अभी मारामारी चल रही है। अभी तक 40 सेज के लिए अधिसूचना जारी हो चुकी है और 15 में काम चालू हो गया है।

2006 के मध्य तक सेज के लिए जमीन दिये जाने को लेकर देश के कई हिस्सों में विवाद शुरू हुआ। हरियाणा, पंजाब और महाराष्ट्र में खास तौर पर रिलायंस कम्पनी को कौड़ियों के भाव जमीन दिये जाने को लेकर सत्ताधारी कांग्रेस पार्टी के भीतर से ही सवाल उठाये गये। अधिकांश मामलों में जहाँ राज्य सरकारों ने कुछ वर्ष पहले ही उद्योग निगमों के लिए किसानों से जमीन अधिग्रहित कर ली थी, उन्हें पुरानी दर पर या उससे भी कम दाम पर पूँजीपतियों को देने का गुपचुप फैसला कर लिया गया। पंजाब सरकार ने लघु उद्योग निगम की 347 एकड़ और उद्योग निगम की 170 एकड़ जमीन वर्षों पुरानी दर से रिलायंस को सौंप दी। इसी तरह ठेका खेती के लिए भी उसने महेन्द्रा, मोनसेण्टो और रिलायंस को कई हजार एकड़ जमीन लीज पर दे दी। जमीन की बन्दरबाँट की कोई इन्तहा नहीं रही। मोहाली में 20 एकड़ जमीन, जिसकी कीमत आज 1000 करोड़ से कम नहीं है, पंजाब सरकार ने मात्र 2 करोड़ में रिलायंस को सौंप दी थी। लेकिन काफी हंगामें के बाद वह सौदा रद्द करना पड़ा। इसी तरह हरियाणा सरकार ने गुड़गाँव में 25,000 एकड़ जमीन रिलायंस को दी। इसमें से 1700 एकड़ जिसे सरकार ने 8500 करोड़ रुपये में किसानों से खरीदा था, केवल 350 करोड़ में लुटा दी। इस मामले का पर्दाफाश भजनलाल के बेटे ने किया जो खुद कांग्रेसी सांसद हैं। महाराष्ट्र, तमिलनाडु, आन्ध्रप्रदेश, कर्नाटक और गुजरात में भी इसी तरह गाजर-मूली के भाव देशी-विदेशी सरमायादारों को जमीन दिये जाने की खबरें लगातार आती रहीं हैं लेकिन कुछ को छोड़कर अधिकांश विरोध अखबारी बयानों तक ही सीमित रहे।

जमीन का अधिग्रहण किये जाने का मामला तब गरमाया जब राज्य सरकारें पूँजीपतियों के हित में सीधे-सीधे जमीन की दलाली (रियल इस्टेट ब्रोकर) करने लगीं। उन्होंने अंग्रेजों के जमाने के भूमि अधिनियम कानून का दुरुपयोग करते हुए, पुलिस की लाठी-गोली के बल पर, नाम मात्र का मुआवजा देकर, किसानों की लहलहाती फसलों को

रौंदते हुए उनकी जमीनों पर कब्जा करना शुरू किया। कलिंगनगर, दादरी, बरनाला, सिंगूर और नन्दीग्राम तक किसानों का जबरदस्त आन्दोलन उठ खड़ा हुआ। किसानों की माँगों पर विचार करना तो दूर उन्हें पुलिस की लाठी-गोली और बर्बर दमन-उत्पीड़न का शिकार बनाया गया। कलिंगनगर के 12 आदिवासी किसानों की पुलिस ने गोली मार कर हत्या कर दी। दादरी में पूरे इलाके को पुलिस छावनी में बदल कर किसान आन्दोलन को कुचल दिया गया। बरनाला और सिंगूर में भी यही हुआ। इस तरह सेज पूरे देश में विकास के नाम पर जमीन हड़पने और विरोध करने पर किसानों का बर्बर दमन-उत्पीड़न करने का पर्याय बन गया।

सेज के नाम पर देशी-विदेशी सरमायादारों को पूँजी लगाने के लिए बुलाने और उन्हें रिझाने के लिए राज्य सरकारों में बढ़-चढ़ कर रियायतें देने की होड़ लग गयी। वे तर्क देने लगे कि यदि हम मुफ्त में या कौड़ियों के मोल जमीन नहीं देंगे तो पूँजीपति राज्य से भाग जायेंगे और किसी दूसरे राज्य में उद्योग लगायेंगे। सरमायादारों के लिए सेज के नाम पर मिलने वाली हजारों एकड़ जमीन सोने की खान के समान है क्योंकि उस जमीन के 75 फीसदी हिस्से पर उन्हें रिहायशी और व्यावसायिक इमारतें बनाने की छूट है। अन्दाजा लगायें कि मोहाली के 20 एकड़ जमीन में से 15 एकड़ जमीन पर शॉपिंग माल, कॉमर्शियल कॉमप्लेक्स और गगन चुम्बी इमारतें बनाकर रिलायंस कम्पनी कितने हजार करोड़ का धन्धा करती? और जब मामला 25,000 एकड़ का हो तब? जमीन की इसी लूट खसोट और बन्दरबाँट को देखते हुए एक पुराने उद्योगपति गोदरेज भी मानने लगे कि जब रियल इस्टेट सोना उगल रहा है, तो कोई उद्योग लगाने और साबुन-फ्रिज बनाने की जहमत क्यों उठाये? उन्होंने मुम्बई के पास एक कालोनी बसाने का काम भी शुरू कर दिया। उद्योग को बढ़ावा देने के नाम पर शुरू किया गया सेज क्या उद्योगों से विमुख होने की प्रवृति को बढ़ावा नहीं दे रहा है?

लेकिन मामला केवल जमीन की बन्दरबाँट तक ही सीमित नहीं है। जमीन अधिग्रहण, विस्थापन, मुआवजा और पुनर्वास के मुद्दे किसानों और खेती पर निर्भर भूमिहीन लोगों की जिन्दगी को तत्काल और सीधे-सीधे प्रभावित करने वाले मुद्दे हैं। यही कारण है कि सेज के लिए जमीन कब्जाने के सवाल पर लोग मरने-मारने पर उतारू हो गये। यह भी सही है कि जमीन की लूट-खसोट के खिलाफ जनता के संघर्षों ने ही सेज के पीछे की साजिशों को सतह पर लाने का काम किया। लेकिन सेज का मामला इससे कहीं ज्यादा गम्भीर है। यह देश पर थोपी जा रही उस नयी आर्थिक गुलामी का, उस आर्थिक नवउपनिवेशवादी उत्पादन प्रणाली का जीता-जागता उदाहरण है जिसमें देशी-विदेशी सरमायादार आपस में गठजोड़ करके मुट्ठीभर लोगों को अपने साथ लेकर, उन्हीं के लिए एक स्वर्ग का निर्माण करना चाहते हैं। शेष 80% आबादी को वे हाशिये पर फेंक देना चाहते हैं, उन्हें गुलामों से भी बदतर हालात में जीने को मजबूर कर रहे हैं। इस नयी उत्पादन प्रणाली का उद्देश्य देश का समग्र और सर्वांगीण विकास करना नहीं है। इस विकास के केन्द्र में इंसान नहीं मुनाफा है, एक अरब से भी अधिक भारतवासी नहीं, बल्कि देशी-विदेशी सरमायादार और उनके साथ खड़े समाज के ऊपरी पायदानों पर स्थित मुट्ठीभर लोग हैं। सारी नीतियाँ, सारी विकास योजनाएँ इसी को ध्यान में रखकर बनायी जा रही हैं– सेज भी इसी का एक अंग है।

सेज का विरोध करने वालों में ऐसे बहुत सारे लोग हैं जो इस व्यवस्था के विरोधी नहीं हैं, बल्कि इसे दीर्घजीवी और मजबूत बनाना चाहते हैं। सरकार और पूँजीपति जब अपने तात्कालिक और क्षुद्र स्वार्थों के चलते ऐसे कदम उठाते हैं जो उनकी व्यवस्था के लिए विनाशकारी हों तो उन्हें सही रास्ते पर लाने के लिए व्यवस्था के भीतर से ही बुद्धिजीवी उनकी आलोचना करते हैं। इन्हीं आलोचनाओं के चलते सेज को लेकर व्यवस्था के भीतर से ही कई सवला उठाये गये। आई.एम.एफ. के मुख्य अर्थशास्त्री रघुराम राजन ने कहा था कि सेज को दी जाने वाली रियायतों के लोभ में पूँजीपति अपने पुराने उद्योगों को ही दूसरी जगहों से उखाड़ कर सेज के भीतर लायेंगे। इससे न तो नया पूँजी निवेश होगा, न उद्योग धन्धे लगेंगे और न ही नये रोजगार पैदा होंगे। उल्टे इसके चलते देश के पिछड़े इलाके और भी अधिक पिछड़ते चले जायेंगे, जबकि देश के कुछ खास इलाकों में ही उद्योग-धन्धे लगेंगे। यह देश में भारी इलाकाई गैर-बराबरी को जन्म देगा जिसके भयावह परिणाम सामने आयेंगे।

वित्तमन्त्री चिदम्बरम जो इस नयी आर्थिक नवउपनिवेशवादी उत्पादन प्रणाली के प्रबल समर्थक और शुरूआती दौर से ही इसके संचालक मण्डल में शामिल रहे हैं, सेज के चलते सरकार को होने वाले राजस्व की हानि का सवाल उठाते हुए इसकी आलोचना करते हैं। 'राष्ट्रीय लोक वित्त एंव नीति संस्थान' द्वारा किये गये एक अध्ययन का हवाला देते हुए उन्होंने कहा कि सेज को आयकर, सीमाशुल्क, आयात-निर्यात तथा अन्य करों में दी जा रही छूट के चलते सरकार को अगले 5 वर्षों में 1,70,000 करोड़ रु. का नुकसान होगा।

भारतीय रिजर्व बैंक के गवर्नर ने सभी बैंकों को यह आदेश दिया कि सेज प्रोजेक्ट को कॉमर्शियल रियल इस्टेट (व्यावसायिक इमारत और स्थायी सम्पत्ति) माना जाय और इन्हें ब्याज दरों में कोई छूट नहीं दी जाय। उनका कहना था कि सेज के भीतर 75 फीसदी जमीन पर गैर उत्पादक रिहायशी इलाके खड़े किये जा रहे हैं जिन्हें उद्योग के नाम पर छूट देने का कोई औचित्य नहीं है। सरमायादारों के बीच भी इस नीति को लेकर विवाद उठा। प्रधानमन्त्री की उपस्थिति में देश के प्रमुख नेताओं, नौकरशाहों और सरमायादारों की बैठक में बजाज और रिलायंस के मालिकों के बीच सेज के मुद्दे पर तीखी नोंक-झोंक हुई थी।

इन विरोधों के बाद उद्योग और वाणिज्य मन्त्रालय ने राज्यों को सुझाव भेजा कि सेज के लिए अधिग्रहित कुल जमीनों में उपजाऊ जमीन 10% से अधिक न हो, सरकार जमीन खरीदने के काम में दखल न दे, 75% के बजाये 65% जमीन पर ही रिहायशी इमारतें बनायी जायें इत्यादि। लेकिन इन गरमागरम बहसों और सुझावों के बावजूद सेज की प्रक्रिया चलती रही और उसी दौरान दर्जनों नये सेज को स्वीकृति भी दी गयी।

सवाल यह है कि एक देश के भीतर कई-कई विदेश क्यों? कुछ खास इलाकों और कुछ खास तरह के उद्योगों को ही बढ़ावा क्यों? जब देश के पिछड़े इलाकों की उपेक्षा करके सारे संसाधनों को विशेष आर्थिक क्षेत्र में सर्वोत्तम सड़कों, बिजली, पानी और अन्य सुविधायें उपलब्ध कराने के लिए झोंक दिया जायेगा, तब पिछड़े इलाकों में उद्योग लगाने कौन जायेगा? देश के भीतर एक छोर पर अमरीका और जापान तथा दूसरे छोर पर इथोपिया और सोमालिया बसाकर क्या इस देश के शासक चैन की नींद सो पायेंगे? शायद यहाँ के शासक वर्ग स्वार्थ में इतने अन्धे हो चुके हैं कि उन्हें अपने दूरगामी भविष्य की भी चिन्ता नहीं। क्या आज की जनता मध्यकाल के लोगों की तरह सन्तोषम् परम् सुखम् का जाप करते हुए राजा-महाराजाओं के महलों की रौनक बनाये रखने के लिए बैल की तरह आँख पर पट्टी बाँध कर खटती रह सकती है? आज जनता की चेतना, उसके सपने, उसकी आशा-आकांक्षा जिस उन्नत धरातल तक पहुँच चुके हैं, उसे देखते हुए कोई भी सहज अनुमान लगा सकता है कि जनता इस गुलामी को अधिक दिनों तक बर्दाश्त नहीं करेगी। कलिंग नगर, दादरी, सिंगूर और नन्दीग्राम के प्रतिरोध संघर्षों का यही सन्देश है। ■

बीच का रास्ता नहीं होता

फ्रेंज काफ्का के उपन्यास मेटामोरफोसिस (कायापलट) का नायक सुबह आँख मलते हुए नींद से जागता है तो देखता क्या है कि वह एक तिलचट्टे में बदल गया है और पीठ के बल जमीन पर पड़ा तड़प रहा है। संसदीय वामपन्थ का कायापलट इसी तरह अचानक रातोंरात नहीं हुआ बल्कि आधी सदी की राजनीतिक यात्रा के दौरान वह धीरे-धीरे इस दशा तक पहुँचा है। लेकिन उसके समर्थकों के एक बड़े हिस्से को सिंगूर और नन्दीग्राम की घटनाओं के बाद कुछ ऐसे ही कायापलट का अहसास हुआ। अचानक उन्हें यकीन ही नहीं आया कि क्या यह वही पार्टी है जिसने बरगा आन्दोलन के तहत किसानों को जमीन बाँटी, गरीबों के हक में लगातार आवाज उठायी और उनके प्रति तमाम दूसरी पार्टियों से ज्यादा वफादार रही। आज उसी पार्टी के कार्यकर्ता पुलिस के जवानों के साथ मिलकर अपनी जमीन छीने जाने के खिलाफ सड़कों पर उतरे लोगों का बर्बरता से दमन कर रहे हैं। और उनकी अपनी पार्टी, उनके अपने नेता? वे तो टाटा और सलेम ग्रुप के पाले में खड़े साम-दाम-दण्ड-भेद की नीति अपना रहे हैं।

संसदीय वामपन्थी पार्टियाँ अब तक विरासत में मिले मजदूरों-किसानों के बीच अपने जनाधार और पूँजीवादी नीतियों के बीच तालमेल बिठाने का भरसक प्रयास करती रही हैं। क्रान्ति से पल्ला झाड़ लेने के बावजूद वे कानूनी दायरे में जनविरोधी नीतियों का भरसक विरोध करती रहीं और छोटे-मोटे सुधारों के जरिये मजदूरों-किसानों की जिन्दगी का बोझ हल्का करने का भी उन्होंने प्रयास किया। लेकिन समय की गति ने आज उन्हें वहाँ पहुँचा दिया जहाँ उनके पास अपनी प्रासंगिकता खो देने या पूरी तरह पूँजीवादी नीतियों को अंगीकार कर लेने के अलावा कोई और चारा नहीं रह गया है। जिस रास्ते पर वे अभी तक चल रही थीं, वह भी दरअसल पूँजीवादी रास्ता ही था--मानवीय चेहरे वाला पूँजीवाद!

लेकिन बीच का रास्ता नहीं होता। सही रास्ता--क्रान्तिकारी रास्ता तो वे बहुत पहले ही छोड़ चुके थे। सिंगूर और नन्दीग्राम की घटनाओं ने उनके पुराने लबादे और मुखौटे को उतारकर उन्हें अपनी असली भूमिका में उतरने के लिए बाध्य कर दिया। अब वे टाटा और सलेम ग्रुप को जमीन देने और देशी-विदेशी पूँजीपतियों की हिफाजत करने की अपनी कार्रवाइयों को उचित ठहराने के लिए फिल्में दिखा रहे हैं, रैलियाँ कर रहे हैं और अखबारों में लेख छपवा रहे हैं।

1757 का लुटेरा क्लाइव

■ के.डी.एल.खान

(प्रधानमन्त्री मनमोहन सिंह ने पिछले साल ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में भाषण देते हुए अंग्रेजों की भूरि-भूरि प्रशंसा की थी। उन्होंने अंग्रेजों द्वारा भारत को गुलाम बनाये जाने के ढेर सारे फायदे गिनवाये थे। नयी गुलामी के इन कर्णधारों की नजर में ब्रिटिश उपनिवेशवादी क्रूरता और बर्बरता की मिसाल नहीं बल्कि आदर्श शासन प्रणाली के प्रवर्तक थे। वे वास्तव में क्या थे यह इतिहास के पन्नों में दर्ज है। प्रस्तुत है उस काले इतिहास का एक पन्ना।)

23 जून को भारत 1757 में हुई प्लासी की लड़ाई की 250वीं वर्षगाँठ मना रहा होगा। शुजाउद्दौला के गद्दार सेना नायक मीरजाफर के अलावा, जो बंगाल का नवाब बनाया गया था, इस युद्ध से सबसे ज्यादा फायदा जिस एक आदमी ने उठाया वह राबर्ट क्लाइव (1725-1774ई.) था।

बंगाल के नवाब के खजाने से उसने कुल मिला कर कितनी लूट की?

इतिहास बताता है कि क्लाइव ने मीरजाफर से 23 लाख 40 हजार रुपये नकद, हर साल 3 लाख रुपये लगान और 880 वर्ग मील की एक रियासत हासिल की। इतनी सारी दौलत क्लाइव को व्यक्तिगत रूप से दी गयी। फोर्ट विलियम के पास की जमीन के इस्तेमाल के एवज में ईस्ट इंडिया कम्पनी नवाब को सालाना 30 हजार पाउण्ड दिया करती थी। नवाब ने यह धनराशि जन्म भर क्लाइव को देते रहने के लिए कहा और कम्पनी ने उसके निर्णय का पालन किया। संक्षेप में, केवल 32 साल की अल्पायु में ही क्लाइव अचानक सबसे धनी अंग्रेज बन गया। उस समय यह दौलत कितनी ज्यादा थी इसका अन्दाजा इस बात से लगाया जा सकता है कि ब्रिटिश अभिजात वर्ग का एक औसत आदमी 800 पाउण्ड की आय होने पर अय्याशी भरा जीवन जी सकता था और उस समय के अभिजात वर्ग के एक आदमी की अधिकतम सम्भव आमदनी लगभग 25 हजार पाउण्ड थी। क्लाइव द्वारा प्लासी की लड़ाई से की गयी यह लूट इंग्लैण्ड के सबसे धनी व्यक्ति की सालाना आमदनी से 10 गुना अधिक थी। यह वही क्लाइव था जिसने 15 साल पहले 70 पाउण्ड सालाना वेतन पर मद्रास में ईस्ट इण्डिया कम्पनी के एक क्लर्क के रूप में नौकरी शुरू की थी।

हाउस ऑफ कॉमन्स लाइब्रेरी के शोधपत्रों के मुताबिक 1750 में एक पाउण्ड की कीमत सन 2005 की कीमत की तुलना में 150 गुना ज्यादा थी। इसका मतलब क्लाइव द्वारा की गयी लूट आज के हिसाब से 3 करोड़ 51 लाख पाउण्ड थी जो 2005 की रुपये की कीमत के हिसाब से लगभग 3 अरब रुपये बैठती है।

लेकिन धूर्त क्लाइव ने यह सुनिश्चित करने के लिए कि ईस्ट इण्डिया कम्पनी या ब्रिटिश सरकार उसके द्वारा बटोरी गयी सम्पत्ति को कभी न हथिया पायें, अधिकांश दौलत को पाउण्ड की जगह अन्य मुद्राओं में जमा किया था।

जब 1760 में वह इंग्लैण्ड लौटा तो उसके पास 2 लाख 30 हजार पाउण्ड की डच हुण्डी, 14 हजार पाउण्ड के कम्पनी की हुण्डी, 30 हजार पाउण्ड के हीरे, 7000 पाउण्ड की एक कम्पनी डायरेक्टर की हुण्डी और 5000 पाउण्ड की बम्बई में कम्पनी की हुण्डी थीं। उसकी पत्नी के गहने "कम से कम" 1 लाख पाउण्ड के आँके गये थे। ब्रिटेन के एक राजनीतिज्ञ और भावी प्रधानमन्त्री हॉरेस वॉलपोल ने इस पर चुटकी लेते हुए कहा था, "अगर कोई भिखारी उससे भीख माँगे तो क्लाइव कहेगा कि 'दोस्त, मेरे पास तुम्हें देने के लिए कोई छोटा हीरा नहीं है।'" वॉलपोल ने आगे बताया कि वापस लौटने के बाद क्लाइव का रहन-सहन का खर्च

बहुत तेजी से बढ़ गया। यह खर्चा दरअसल उसके भारत स्थित संसाधनों के बल पर ही हो रहा था। यह याद रखा जाना चाहिए कि क्लाइव की सम्पत्ति अप्रत्यक्ष तौर पर भारत के किसानों से वसूले गये भारी लगान से आती थी जबकि इन किसानों की आमदनी अंग्रेज किसानों की आमदनी के बहुत छोटे अंश के बराबर थी।

आगे चलकर क्लाइव को बैरन ऑफ प्लासी के खिताब से नवाजा गया। उसने आयरलैण्ड की लिमेरिक और क्लेअर काउण्टियों में जमीनें खरीदीं और लिमेरिक शहर के पास की अपनी जमीन के एक हिस्से का नाम प्लासी रखा। आज तक उसका वही नाम चला आ रहा है और अब उसी जगह लिमेरिक विश्वविद्यालय स्थित है। क्लाइव के वर्तमान वारिसों के पास मौजूद उसका खजाना वेल्स में स्थित पोविस किले में प्रदर्शित है। इससे बड़ा खजाना केवल लन्दन स्थित विक्टोरिया संग्रहालय में है जहाँ बहुमूल्य आभूषण रखे गये हैं। 2005 में क्लाइव के इस खजाने से केवल एक चीज– हीरे, पन्ने, माणिक से सजा रत्न जड़ित जग 20 करोड़ रुपये में बेचा गया।

क्लाइव की बेशुमार दौलत पर ढेर सारी विरोधी प्रतिक्रियाएँ भी सामने आयीं। भारत में उसकी कारगुजारियों की जाँच के लिए एक आयोग का गठन किया गया। इस आयोग के समक्ष क्लाइव का ऐतिहासिक, क्लासिकीय, विस्मयकारी बयान इतिहास का अंग बन चुका है। उसने आयोग को बताया–''एक महान राजकुमार मेरी मर्जी पर निर्भर था, एक समृद्ध शहर मेरी दया का पात्र था, मेरी मुस्कान पर उसके सबसे धनी बैंकर ने महत्व दिया जाना दाँव लगाया करते थे। भारत में वे लोग दरवाजे सिर्फ मेरे लिए खुलें, दूसरे का एक ओर सोना और दूसरी और ज... रखे रहते थे। मैं उनमें टहला करता थ, हैं श्रीमान अध्यक्ष, इस समय मैं खुद हैरान हूँ कि मैं कैसे अपने ऊपर काबू रखे हुए हूँ।''

इस जाँच का अन्त हाउस ऑफ कॉमन्स के इस प्रस्ताव से हुआ कि क्लाइव ने ''अपने देश की महान और प्रशंसनीय सेवा की है।'' उसके खिलाफ भ्रष्टाचार के आरोप खारिज कर दिये गये। लेकिन नियति ऐसे अपराधियों को भी नहीं बख्शती– 22 नवम्बर 1774 को बीमारी की जर्जर हालत में अवसादग्रस्त क्लाइव ने अपना गला काटकर आत्महत्या कर ली। ▣

क्रिस्टोफर कोलम्बस: महान या अत्याचारी

हमारी पाठ्य पुस्तकों में जिस कोलम्बस का अमरीका की खोज करने वाले एक महान दुस्साहसी नाविक के रूप में गुणगान किया जाता है, वह वास्तव में एक नम्बर का लालची और अत्याचारी व्यक्ति था।

स्पेन के एक इतिहासकार ने एक दस्तावेज के हवाले से बताया है कि कोलम्बस ने कैरीबियन देशों और डोमिनिकन गणराज्यों (इण्डीज) में पहले उपनिवेश के वायसराय के रूप में वहाँ के लोगों के नाक-कान काट लेने, महिलाओं को निर्वस्त्र करके सड़कों पर घुमाने और उन्हें गुलाम के रूप में बेचने जैसे पाशविक कारनामे किये थे। उसने भुट्टा चुराने के जुर्म में वहाँ के एक मूल निवासी के नाक-कान काट लिये, उसे लोहे की बेड़ियों में जकड़ दिया और गुलामों की मण्डी में ले जाकर बेच दिया। ऐसे ही नृशंस कुकृत्यों से भरा 48 पृष्ठों का एक दस्तावेज पिछले वर्ष अभिलेखागार में पाया गया।

साम्राज्यवादियों का इतिहास लेखन पक्षपात और पूर्वाग्रह से भरा होता है। वे 1857 के प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम को सिपाही विद्रोह बताते हैं। क्लाइव और वारेन हेस्टिंग्स जैसे डकैतों को कुशल प्रशासक बताते हैं। चंगेज को लुटेरा और सिकन्दर को महान बताते हैं। अपने वर्गीय स्वार्थों के चलते हमारे देश के हुक्मरान भी उन्हीं के नक्शेकदम पर चलते हुए देश को गुलाम बनाने वाले अंग्रेजों की महानता का गुणगान करते हैं जबकि देश की आजादी के लिए प्राण निछावर करने वाले अमर शहीदों और क्रान्तिकारियों को इतिहास में स्थान तक नहीं देते। कोलम्बस की असलियत पर पर्दा डालने के पीछे भी यही साम्राज्यवादी-पूँजीवादी पूर्वाग्रह है।

नौजवान भारत सभा, लाहौर का घोषणापत्र

(शहीद भगतसिंह और भगवतीचरण वोहरा ने नौजवानों और विद्यार्थियों को संगठित करने के प्रयास सन् १९२६ से ही शुरू कर दिये थे। ११-१३ अप्रैल १९२८ को अमृतसर में नौजवान भारत सभा के सम्मेलन के लिए सभा का घोषणापत्र तैयार किया गया, जिसे नीचे दिया गया है। भगतसिंह इस सभा के महासचिव और भगवतीचरण वोहरा प्रचार-सचिव बने।)

नौजवान साथियो,

हमारा देश एक अव्यवस्था की स्थिति से गुजर रहा है। चारों तरफ एक-दूसरे के प्रति अविश्वास और हताशा का साम्राज्य है। देश के बड़े नेताओं ने अपने आदर्श के प्रति आस्था खो दी है और उनमें से अधिकांश को जनता का विश्वास प्राप्त नहीं है। भारत की आजादी के पैरोकारों के पास कोई कार्यक्रम नहीं है और उनमें उत्साह का अभाव है। चारों तरफ अराजकता है। लेकिन किसी राष्ट्र के निर्माण की प्रक्रिया में अराजकता एक अनिवार्य तथा आवश्यक दौर है। ऐसी ही नाजुक घड़ियों में कार्यकर्ताओं की ईमानदारी की परख होती है, उनके चरित्र का निर्माण होता है, वास्तविक कार्यक्रम बनता है, और तब नये उत्साह, नयी आशाएँ, नये विश्वास और नये जोशो-खरोश के साथ काम आरम्भ होता है। इसलिए उसमें मन ओछा करने की कोई बात नहीं है।

हम अपने-आपको एक नये युग के द्वार पर खड़ा पाकर बड़े भाग्यशाली हैं। अंग्रेज नौकरशाही के बड़े पैमाने पर गुणगान करने वाले गीत अब सुनायी नहीं देते। अंग्रेज का हमसे यह ऐतिहासिक प्रश्न है कि "तुम तलवार से प्रशासित होगे या कलम से?" अब ऐसा नहीं रहा कि उसका उत्तर न दिया जाता हो। लार्ड बर्केनहेड के शब्दों में, "हमने भारत को तलवार के सहारे जीता और तलवार के बल से ही हम उसे अपने हाथ में रखेंगे।" इस खरेपन ने अब सब कुछ साफ कर दिया है। जलियाँवाला और मानावाला के अत्याचारों को याद करने के बाद यह उद्धृत करना कि "अच्छी सरकार स्वशासन का स्थान नहीं ले सकती", बेहूदगी ही कही जायेगी। यह बात तो स्वतः स्पष्ट है।

भारत में अंग्रेजी हुकूमत की दी हुई सुख-सम्पदाओं के बारे में भी दो शब्द लीजिए। भारत के उद्योग-धन्धों के पतन और नाश के बारे में बतौर गवाही क्या रमेशचन्द्र दत्त, विलियम डिगवी और दादा भाई नौरोजी के सारे ग्रन्थों को उद्धृत करने की आवश्यकता होगी? क्या इस बात को साबित करने के लिए कोई प्रमाण जुटाना पड़ेगा कि अपनी उपजाऊ भूमि तथा खानों के बावजूद आज भारत सबसे गरीब देशों में से एक है, कि भारत जो अपनी महान सभ्यता पर गर्व कर सकता था आज बहुत पिछड़ा हुआ देश है, जहाँ साक्षरता का अनुपात केवल पाँच प्रतिशत है? क्या लोग यह नहीं जानते कि भारत में सबसे अधिक लोग मरते हैं और यहाँ बच्चों की मौत का अनुपात दुनिया में सबसे ऊँचा है? प्लेग, हैजा, इन्फ्लुएंजा तथा इसी प्रकार की अन्य महामारियाँ आये दिन की व्याधियाँ बनती जा रही हैं? क्या बार-बार यह सुनना की हम स्वशासन के योग्य नहीं हैं, एक अपमानजनक बात नहीं है? क्या यह तौहीन की बात नहीं है कि गुरू गोविन्दसिंह, शिवाजी और हरीसिंह जैसे शूरवीरों के बाद भी हमसे कहा जाये कि हममें अपनी रक्षा करने की क्षमता नहीं है? खेद है कि हमने अपने वाणिज्य और व्यवसाय को उसकी शैशवावस्था में ही कुचले जाते नहीं देखा? जब बाबा गुरुदत्त सिंह ने 1941 में गुरु नानक स्टीमशिप चालू करने का पहला प्रयास किया था तो दूर देश कनाडा में और भारत आते समय उनके साथ अमानवीय व्यवहार किया गया और अन्त में बज-बज के बन्दरगाह पर उन साहसी मुसाफिरों का गोलियों से खूनी स्वागत किया गया। और भी क्या कुछ नहीं किया गया? क्या हमने यह सब नहीं देखा? उस भारत में जहाँ एक द्रोपदी के सम्मान की रक्षा में महाभारत जैसा महायुद्ध लड़ा गया था,

वहाँ 1919 में दर्जनों द्रोपदियों को बेइज्जत किया गया, उनके नंगे चेहरों पर थूका गया। क्या हमने यह सब नहीं देखा? फिर भी हम मौजूदा व्यवस्था से सन्तुष्ट हैं। क्या यह जीने योग्य जिन्दगी है?

क्या हमें यह महसूस करने के लिए कि हम गुलाम हैं और हमें आजाद होना चाहिए, किसी दैवी ज्ञान या आकाशवाणी की आवश्यकता है? क्या हम अवसर की प्रतीक्षा करेंगे या किसी अज्ञात की प्रतीक्षा करेंगे कि हमें महसूस कराये कि हम दलित लोग हैं? क्या हम इन्तजार में बैठे रहेंगे कि कोई दैवी सहायता आ जाये या फिर कोई जादू हो जाये कि हम आजाद हो जायें? क्या हम आजादी के बुनियादी सिद्धान्तों से अनभिज्ञ हैं? "जिन्हें आजाद होना है उन्हें स्वयं चोट करनी पड़ेगी।" नौजवानो जागो, उठो, हम काफी देर सो चुके ।

हमने केवल नौजवानों से ही अपील की है क्योंकि नौजवान बहादुर होते हैं, उदार एवं भावुक होते हैं, क्योंकि नौजवान भीषण अमानवीय यन्त्रणाओं को मुस्कुराते हुए बर्दाश्त कर लेते हैं और बगैर किसी प्रकार की हिचकिचाहट के मौत का सामना करते हैं, क्योंकि मानव-प्रगति का सम्पूर्ण इतिहास नौजवान आदमियों तथा औरतों के खून से लिखा है, क्योंकि सुधार हमेशा नौजवानों की शक्ति, साहस, आत्मबलिदान और भावात्मक विश्वास के बल पर ही प्राप्त हुए हैं-- ऐसे नौजवानों के बल पर जो भय से परिचित नहीं हैं और जो सोचने के बजाय अनुभव कहीं अधिक करते हैं।

क्या यह जापान के नौजवान नहीं थे जिन्होंने पोर्ट आर्थर तक पहुँचने के लिए सूखा रास्ता बनाने के उद्देश्य से अपने आपको सैकड़ों की तादाद में खाइयों में झोंक दिया था? और जापान आज विश्व के सबसे आगे बढ़े हुए देशों में से एक है। क्या यह पोलैण्ड के नौजवान नहीं थे जिन्होंने पिछली पूरी शताब्दीभर बार-बार संघर्ष किये, पराजित हुए और फिर बहादुरी के साथ लड़े? और आज एक आजाद पोलैण्ड हमारे सामने है। इटली को आस्ट्रिया के जुए से किसने आजाद किया था? तरुण इटली ने!

तरुण तुर्कों ने जो कमाल दिखलाया, क्या आप उसे जानते हैं? चीन के नौजवान जो कर रहे हैं, उसे क्या आप रोज समाचार-पत्रों में नहीं पढ़ते हैं? क्या यह रूस के नौजवान नहीं थे जिन्होंने रूसियों के उद्धार के लिए अपनी जानें कुर्बान कर दी थीं? पिछली शताब्दीभर लगातार केवल समाजवादी पर्चे बाँटने के अपराध में सैकड़ों-हजारों की संख्या में उन्हें साइबेरिया में जलावतन किया गया था. दोस्तोवस्की जैसे लोगों को सिर्फ इसलिए जेलों में बन्द किया गया कि वे समाजवादी डिबेटिंग (बहस-मुबाहसा चलानेवाली)सोसाइटी के सदस्य थे। बार-बार उन्होंने दमन के तूफान का सामना किया, लेकिन उन्होंने साहस नहीं खोया! यह संघर्षरत नौजवान थे। और सब जगह नौजवान ही निडर होकर बगैर किसी हिचकिचाहट के और बगैर लम्बी-चौड़ी उम्मीदें बाँधे लड़ सकते हैं। और आज हम महान रूस में विश्व के मुक्तिदाता के दर्शन कर सकते हैं।

जबकि हम भारतवासी, हम क्या रहे हैं? पीपल की एक डाल टूटते ही हिन्दुओं की धार्मिक भावनाएँ चोटिल हो उठती हैं! बुतों को तोड़ने वाले मुसलमानों के ताजिये नामक कागज के बुत का कोना फटते ही अल्लाह का प्रकोप जाग उठता है और फिर वह 'नापाक' हिन्दुओं के खून से कम किसी वस्तु से सन्तुष्ट नहीं होता! मनुष्य को पशुओं से अधिक महत्व दिया जाना चाहिए, लेकिन यहाँ भारत में वे लोग पवित्र पशु के नाम पर एक-दूसरे का सर फोड़ते हैं।

हमारे बीच और बहुत से लोग हैं जो अपने आलसोपन को अन्तरराष्ट्रीयतावाद की निरर्थक बकवास के पीछे छिपाते हैं। जब उनसे अपने देश की सेवा करने को कहा जाता है तो वे कहते हैं, "श्रीमान्जी, हम लोग जगत-बन्धु हैं और सार्वभौमिक भाईचारे में विश्वास करते हैं। हमें अंग्रेजों से नहीं झगड़ना चाहिए। वे हमारे भाई हैं।" क्या खूब विचार है, क्या खूबसूरत शब्दावली है! लेकिन वे उसके उलझाव को नहीं पकड़ पाते। सार्वभौमिक भाईचारे के सिद्धान्त की माँग है कि मनुष्य द्वारा मनुष्य का और राष्ट्र द्वारा राष्ट्र का शोषण असम्भव बना दिया जाये, सबको बगैर किसी भेदभाव के समान अवसर प्रदान किये जायें। भारत में ब्रिटिश शासन इन सब बातों का ठीक उल्टा है और हम उससे किसी प्रकार का सरोकार नहीं रखेंगे।

अब दो शब्द समाज-सेवा के बारे में। बहुत से नेक मनुष्य सोचते हैं कि समाज-सेवा (उन संकुचित अर्थों में जिनमें हमारे देश में इस शब्द को प्रयोग किया जाता है और समझा जाता है) हमारी सभी बीमारियों का इलाज है और देश सेवा का सबसे अच्छा तरीका है। इस प्रकार हम देखते हैं कि बहुत से ईमानदार नौजवान सारी जिन्दगी गरीबों में अनाज बाँटकर या बीमारों की सेवा करके ही सन्तुष्ट हो जाते हैं। यह अच्छे और आत्मत्यागी लोग हैं लेकिन वे यह समझ पाने में असमर्थ हैं कि भारत में भूख और बीमारी की समस्या को खैरात के माध्यम से हल नहीं किया जा सकता।

धार्मिक अन्धविश्वास और कट्टरपन हमारी प्रगति में बहुत बड़े बाधक हैं। वे हमारे रास्ते के रोड़े साबित हुए हैं और हमें उनसे हर हालत में छुटकारा पा लेना चाहिए। "जो चीज आजाद विचारों को बर्दाश्त नहीं कर सकती उसे समाप्त हो जाना चाहिए।" इसी प्रकार की और भी बहुत सी कमजोरियाँ हैं जिन पर हमें विजय पानी है। हिन्दुओं का दकियानूसीपन और कट्टरपन, मुसलमानों की धर्मान्धता तथा दूसरे देशों के प्रति लगाव और आम तौर पर सभी सम्प्रदायों के लोगों का संकुचित दृष्टिकोण आदि बातों का विदेशी शत्रु हमेशा लाभ उठाता है। इस काम के लिए सभी समुदायों के क्रान्तिकारी उत्साह वाले नौजवानों की आवश्यकता है।

हमने कुछ भी हासिल नहीं किया और हम किसी भी उपलब्धि के लिए भी त्याग करने को तैयार नहीं हैं। सम्भावित उपलब्धि में किस सम्प्रदाय का क्या हिस्सा होगा, यह तय करने में हमारे नेता आपस में झगड़ रहे हैं। महज अपनी बुजदिली को और आत्मत्याग के अभाव को छिपाने के लिए वे असली समस्या पर पर्दा डालकर नकली समस्याएँ खड़ी कर रहे हैं। ये आरामतलब राजनीतिज्ञ हड्डियों के उन मुट्ठीभर टुकड़ों पर आँखें गड़ाये बैठे हैं जिन्हें, जैसा उनका विश्वास है, सशक्त शासकगण उनके सामने फेंक सकते हैं। यह बहुत ही अपमानजनक बात है। जो लोग आजादी की लड़ाई में बढ़कर आते हैं वे बैठकर यह तय नहीं कर सकते कि इतने त्याग के बाद उनकी कामयाबी होगी और उसमें उनका इतना हिस्सा सुनिश्चित रहना चाहिए। इस प्रकार के लोग कभी भी किसी प्रकार का त्याग नहीं करते। हमें ऐसे लोगों की आवश्यकता है जो बगैर किसी हिचकिचाहट के लड़ने को तैयार हों और बगैर सम्मान के, बगैर आँसू बहाने वालों के और बगैर प्रशस्तिगान के मृत्यु का आलिंगन करने को तैयार हों। इस प्रकार के उत्साह के अभाव में हम दो मोर्चों वाले उस महान युद्ध को, जिसे हमें लड़ना है, नहीं लड़ सकेंगे– दो मोर्चों वाला, क्योंकि हमें एक तरफ अन्दरूनी शत्रु से लड़ना है और दूसरी तरफ बाहरी दुश्मन से। हमारी असली लड़ाई स्वयं अपनी अयोग्यताओं के खिलाफ है। हमारा शत्रु और कुछ हमारे अपने लोग निजी स्वार्थ के लिए उनका फायदा उठाते हैं।

नौजवान पंजाबियो, दूसरे प्रान्तों के युवक अपने क्षेत्रों में जी-तोड़ परिश्रम कर रहे हैं। नौजवान बंगालियों ने 3 फरवरी को जिस जागृति तथा संगठन क्षमता का परिचय दिया उससे हमें सबक लेना चाहिए। अपनी तमाम कुर्बानियों के बावजूद हमारे पंजाब को राजनैतिक तौर पर पिछड़ा हुआ प्रान्त कहा जाता है। क्यों? क्योंकि सैनिक उपजाति होने के बावजूद हम संगठित एवं अनुशासित नहीं हैं। हमें तक्षशिला विश्वविद्यालय पर गर्व है, लेकिन आज हमारे पास संस्कृति का अभाव है और संस्कृति के लिए उच्चकोटि का साहित्य चाहिए, जिसकी संरचना सुविकसित भाषा के अभाव में नहीं हो सकती। दुख की बात है कि आज हमारे पास उनमें से कुछ भी नहीं है।

देश के सामने उपस्थित उपरोक्त प्रश्नों का समाधान तलाश करने के साथ-साथ हमें अपनी जनता को आने वाले महान संघर्ष के लिए भी तैयार करना पड़ेगा। हमारी राजनैतिक लड़ाई 1857 के स्वतन्त्रता संग्राम के ठीक बाद से ही आरम्भ हो गयी थी। वह कई दौरों से होकर गुजर चुकी है। बीसवीं शताब्दी के आरम्भ से अंग्रेज नौकरशाही ने भारत के प्रति एक नयी नीति अपनायी है। वे हमारे देश के पूँजीपति तथा निम्नपूँजीपति वर्ग को सहूलियतें देकर उन्हें अपनी तरफ मिला रहे हैं। दोनों का हित एक हो रहा है। भारत में ब्रिटिश पूँजी के अधिकाधिक प्रवेश का अनिवार्यत: यही परिणाम होगा। निकट भविष्य में बहुत शीघ्र हम उस वर्ग को तथा उसके नेताओं को विदेशी शासकों के साथ जाते देखेंगे। कोई गोलमेज कान्फ्रेंस या इसी प्रकार की और कोई संस्था द्वारा दोनों के बीच समझौता हो जायेगा। तब उनमें शेर और लोमड़ी के बच्चे का रिश्ता नहीं रह जायेगा। समस्त भारतीय जनता के आने वाले महान संघर्ष के भय से आजादी के इन तथाकथित पैरोकारों की कतारों की दूरी बगैर किसी समझौते के कम हो जायेगी।

देश को तैयार करने के भावी कार्यक्रम का शुभारम्भ इस आदर्श वाक्य से होगा– "क्रान्ति जनता द्वारा, जनता के हित में।" दूसरे शब्दों में, 98 प्रतिशत के लिए स्वराज। स्वराज जनता द्वारा प्राप्त ही नहीं, बल्कि जनता के लिए भी। यह एक बहुत कठिन काम है। यद्यपि हमारे नेताओं ने बहुत से सुझाव दिये हैं लेकिन जनता को जगाने के लिए कोई योजना पेश करके उस पर अमल करने का किसी ने भी साहस नहीं किया। विस्तार में गये बगैर हम यह दावे से कह सकते हैं कि अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए रूसी नवयुवकों की भाँति हमारे हजारों मेधावी नौजवानों को अपना बहुमूल्य जीवन गाँवों में बिताना पड़ेगा और लोगों को समझाना पड़ेगा कि भारतीय क्रान्ति वास्तव में क्या होगी। उन्हें समझाना पड़ेगा कि आने वाली क्रान्ति का मतलब केवल मालिकों की तब्दीली नहीं होगा। उसका अर्थ होगा नयी व्यवस्था का जन्म–एक नयी

राजसत्ता। यह एक दिन या एक वर्ष का काम नहीं है। कई दशकों का अद्वितीय आत्मबलिदान ही जनता को उस महान कार्य के लिए तत्पर कर सकेगा और इस कार्य को केवल क्रान्तिकारी युवक ही पूरा कर सकेंगे। क्रान्तिकारी से लामुहाला एक बम और पिस्तौल वाले आदमी से अभिप्राय नहीं है।

युवकों के सामने जो काम है, वह काफी कठिन है और उनके साधन बहुत थोड़े हैं। उनके मार्ग में बहुत सी बाधाएँ भी आ सकती हैं। लेकिन थोड़े किन्तु निष्ठावान व्यक्तियों की लगन उन पर विजय पा सकती है। युवकों को आगे आना चाहिए। उनके सामने जो कठिन एवं बाधाओं से भरा हुआ मार्ग है, और उन्हें जो महान कार्य सम्पन्न करना है, उसे समझना होगा। उन्हें अपने दिल में यह बात रख लेनी चाहिए कि "सफलता मात्र एक संयोग है, जबकि बलिदान एक नियम है।" उनके जीवन अनवरत असफताओं के जीवन हो सकते हैं– गुरु गोविन्दसिंह को आजीवन जिन नारकीय परिस्थितियों का सामना करना पड़ा था, हो सकता है उससे भी अधिक नारकीय परिस्थितियों का सामना करना पड़े। फिर भी उन्हें यह कहकर कि अरे, यह सब तो भ्रम था, पश्चाताप नहीं करना होगा।

नौजवान दोस्तो, इतनी बड़ी लड़ाई में अपने आपको अकेला पाकर हताश मत होना। अपनी शक्ति को पहचानो। अपने ऊपर भरोसा करो। सफलता आपकी है। धनहीन, निस्सहाय एवं साधनहीन अवस्था में भाग्य आजमाने के लिए अपने पुत्र को घर से बाहर भेजते समय जेम्स गैरीबाल्डी की महान जननी ने उससे जो शब्द कहे थे (उन्हें)याद रखो। उसने कहा, "दस में से नौ बार एक नौजवान के साथ जो सबसे अच्छी घटना हो सकती है वह यह है कि उसे जहाज की छत पर से समुद्र में फेंक दिया जाये ताकि वह तैरकर या डूबकर स्वयं अपना रास्ता तय करे।" प्रणाम है उस माँ को जिसने ये शब्द कहे और प्रणाम है उन लोगों को जो इन शब्दों पर अमल करेंगे।

इटैलियन पुनरुत्थान के प्रसिद्ध विद्वान मैजिनी ने एक बार कहा था, "सभी महान राष्ट्रीय आन्दोलनों का शुभारम्भ जनता के अविख्यात या अजाने, गैर प्रभावशाली व्यक्तियों से होता है, जिनके पास समय और बाधओं की परवाह न करने वाले विश्वास तथा इच्छा-शक्ति के अलावा और कुछ नहीं होता।" जीवन की नौका को लंगर उठाने दो। उसे सागर की लहरों पर तैरने दो और फिर–

लंगर ठहरे हुए छिछले पानी में पड़ता है।
विस्तृत और आश्चर्यजनक सागर पर
विश्वास करो
जहाँ ज्वार हर समय ताजा रहता है
और शक्तिशाली धाराएँ स्वतन्त्र होती हैं
वहाँ अनायास, ऐ नौजवान कोलम्बस
सत्य का तुम्हारा नया विश्व हो सकता है।

मत हिचको, अवतार के सिद्धान्त को लेकर अपना दिमाग परेशान मत करो और उसे अपने आपको हतोत्साहित मत करने दो। हर व्यक्ति महान हो सकता है, बशर्ते कि वह प्रयास करे। अपने शहीदों को मत भूलो। करतारसिंह एक नौजवान था, फिर भी बीस वर्ष से कम की आयु में ही देश की सेवा के लिए आगे बढ़कर मुस्कराते हुए वन्देमातरम के नारे के साथ वह फाँसी के तख्ते पर गया। भाई बालमुकुन्द और अवधबिहारी दोनों ने ही जब ध्येय के लिए जीवन दिया तो वे नौजवान थे। वे तुम्हारे में से ही थे। तुम्हें भी वैसा ही ईमानदार देशभक्त और वैसा ही दिल से आजादी को प्यार करने वाला बनने का प्रयास करना चाहिए, जैसे कि वे लोग थे। सब्र और होशो-हवास मत खोओ, साहस और आशा मत छोड़ो। स्थिरता और दृढ़ता को स्वभाव के रूप में अपनाओ।

नौजवानों को चाहिए कि वे स्वतन्त्रतापूर्वक, गम्भीरता से, शान्ति और सब्र के साथ सोचें। उन्हें चाहिए कि वे भारतीय स्वतन्त्रता के आदर्श को अपने जीवन के एकमात्र लक्ष्य के रूप में अपनायें। उन्हें अपने पैरों पर खड़े होना चाहिए। उन्हें अपने आपको बाहरी प्रभावों से दूर रहकर संगठित करना चाहिए। उन्हें चाहिए कि मक्कार और बेईमान लोगों के हाथों में न खेलें, जिनके साथ उनकी कोई समानता नहीं है और जो हर नाजुक मौके पर आदर्श का परित्याग कर देते हैं। उन्हें चाहिए कि संजीदगी और ईमानदारी के साथ "सेवा, त्याग, बलिदान" को अनुकरणीय वाक्य के रूप में अपना मार्गदर्शक बनायें। याद रखिए कि "राष्ट्रनिर्माण के लिए हजारों अज्ञात स्त्री-पुरुषों के बलिदान की आवश्यकता होती है जो अपने आराम व हितों के मुकाबले, तथा अपने एवं अपने प्रियजनों के प्राणों के मुकाबले देश की अधिक चिन्ता करते हैं।"

वन्देमातरम!

भगवतीचारण वोहरा बी.ए.

प्रचार मन्त्री नौजवान भारत सभा द्वारा अरोड़ वंश प्रेस, लाहौर से मुद्रित एवं प्रकाशित।

ठीक है कि
सत्ता का भत्ता खाया,
आतताइयों के भाषणों पर
सिर हिलाया,
मक्कारी की।
लेकिन नब्बे में भी मैंने
मार्क्सवाद का दामन नहीं छोड़ा।

–देवी प्रसाद मिश्र

जन-जन का चेहरा एक

■ गजानन माधव मुक्तिबोध

चाहे जिस देश, प्रान्त, पुर का हो
जन-जन का चेहरा एक!

एशिया की, यूरोप की, अमरीका की
गलियों की धूप एक।
कष्ट-दुख सन्ताप की,
चेहरों पर पड़ी हुई झुर्रियों का रूप एक!

जोश में यों ताकत से बँधी हुई
मुट्ठियों का एक लक्ष्य!
पृथ्वी के गोल चारों ओर के धरातल पर
है जनता का दल एक, एक पक्ष।

जलता हुआ लाल कि भयानक सितारा एक,
उद्दीपित उसका विकराल-सा इशारा एक।
गंगा में, इरावती में, मिनाम में
अपार अकुलाती हुई,
नील नदी, अमेजन, मिसौरी में वेदना से गाती हुई,
बहती-बहाती हुई जिन्दगी की धारा एक;
प्यार का इशारा एक, क्रोध का दुधारा एक।

पृथ्वी का प्रसार
अपनी सेनाओं से किये हुए गिरफ्तार,
गहरी काली छायाएँ पसारकर,
खड़े हुए शत्रु का काले-से पहाड़ पर
काला-काला दुर्ग एक।

आशामयी लाल-लाल किरणों से अन्धकार
चीरता-सा मित्र का स्वर्ग एक;
जन-जन का मित्र एक।

विराट् प्रकाश एक, क्रान्ति की ज्वाला एक,
धड़कते वक्षों में है सत्य का उजाला एक,
लाख-लाख पैरों की मोच में है वेदना का तार एक,
हिये में हिम्मत का सितारा एक।

चाहे जिस देश, प्रान्त, पुर का हो
जन-जन का चेहरा एक!

एशिया के, यूरोप के, अमरीका के
भिन्न-भिन्न वास स्थान एक;
भौगोलिक, ऐतिहासिक बन्धनों के बावजूद,
सभी ओर हिन्दुस्तान, सभी ओर हिन्दुस्तान।

सभी ओर बहनें हैं, सभी ओर भाई हैं।
सभी ओर कन्हैया ने गायें चरायी हैं
जिन्दगी की मस्ती का अकुलाता भोर एक;
बंसी की धुन सभी ओर एक।

दानव दुरात्मा एक,
मानव की आत्मा एक।
शोषक और खूनी और चोर एक।
जन-जन के शीर्ष पर,
शोषण का खड्ग अति घोर एक।

दुनिया के हिस्सों में चारों ओर
जन-जन का युद्ध एक,
मस्तक की महिमा
व अन्तर की ऊष्मा
से उठती है ज्वाला अति क्रुद्ध एक।

संग्राम का घोष एक,
जीवन संतोष एक।
क्रान्ति का, निर्माण का, विजय का सेहरा एक,

चाहे जिस देश, प्रान्त, पुर का हो
जन-जन का चेहरा एक!